गोपाल श्याम

श्री भागवत-दर्शन

भागवती कथा

(खण्ड ३८)

★

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्विता ।
कृता वै प्रभुदत्तेन माला 'भागवती कथा' ॥

लेखक

श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी

प्रकाशक

संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर

(झूसी) प्रयाग

संशोधित मूल्य

तृतीय संस्करण
१००० प्रति] आश्विन कृष्णा [illegible] अक्टूबर १९७२ [मूल्य २) रुपया

मुद्रक-वंशीधर शर्मा, भागवत प्रेस, ८५२ मुट्ठीगंज, प्रयाग ।

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

।। श्रीहरि ।।

जग-जाल से बचने का उपाय

[भूमिका]

तव परि ये चरन्त्यखिलसत्त्वनिकेततया,
त उत पदाऽऽक्रमन्त्यविगणय्य शिरो निऋतेः।
परिवयसे पशूनिव गिरा विबुधानपि तां–
स्त्वयि कृतसौहृदाः खलु पुनन्ति न ये विमुखाः ।।*

(श्रीभा० १० स्क० ८७ अ० २७ श्लो०)

छप्पय

दाम नाम अरु काम जगत के जे ई बन्धन।
समुझें सुख फँसि जात करें पुनि पाछें क्रन्दन ।।
पड़ित मूरख जीव सबहिँ इनिमाहिँ भुलाने।
जे जगकी तजि रीझ रमापति रूप रिझाने ।।
ते ई जगमहँ धन्य हैं, प्रभु पै नित बलि जात हैं।
स्वयं तरें तारें सबनि, जग के बन्ध नसात हैं ।।

---

* श्रुतियां भगवान् की स्तुति करती हुई कहती हैं—"हे नाथ ! जो पुरुष आपको अखिल जीवों का आश्रय स्थान समझकर सेवते हैं, वे मृत्यु को कुछ भी न समझकर उसके सिर पर पैर रख देत हैं। जो आप से विमुख हैं, वे चाहें कितने भी भारी पडित क्यों न हो, उन्हें आप कर्मों को कहने वाली श्रुतियों के चक्कर मे फसाकर पशुओं की तरह बांध देते हैं, वे स्वय ही बंधे हैं, फिर दूसरों का बन्धन क्या खोल सकेंगे? किन्तु जिन्होंने आप मे सुहृद्भाव स्थापित कर लिया है, वे तीनों लोकों को पावन बना देते हैं।"

आज से बहुत पहिले की बात है, जब मैं श्रीवृन्दावन धाम-मे रामबाग मे ठहरा हुआ था। उन्हीं दिनों एक बंगालिनी माई मेरे समीप आयी। आनदजी ने मुझे उनका परिचय कराया कि—"इनका नाम है 'गोपालेर माँ' गोपालजी की माता। इनके गोपालजी बड़े सुन्दर हैं। इनसे बोलते चालते हैं और इनके हाथ से प्रसाद भी पाते हैं। ये उन्हे अपना पुत्र मानती हैं।" यह सुनकर मैं उनके गोपालजी के दर्शन करने गया। उनसे गोपाल जी बातें करते थे या नहीं, उनके हाथ से प्रसाद पाते थे या नहीं, इसे तो वे जानें उनका काम जाने, किन्तु मुझे वह लड्डू-गोपाल भगवान् की मूर्ति बड़ी ही सुन्दर लगी। लिखते-लिखते अब भी मेरे नेत्रों के सम्मुख वह मनमोहिनी मूर्ति नृत्य करती-सी प्रतीत होती है। मूर्ति बड़ी थी, वह संभवतया अष्टधातु की बनी थी। छोटे बच्चे जैसे हाथ पैर से किढ़रिते हैं वैसी ही वह मूर्ति थी। एक हाथ मे लड्डू था दूसरा भूमि पर पैरों के सदृश रखा था। उनके श्रीअङ्ग पर बड़ी सावधानी से नीला रङ्ग किया गया था। श्रीअङ्ग की नीलकान्ति चमचम चमकती थी। मूर्तियों में आभा तीन ही कारणों से आती है। अर्चक की उत्कट श्रद्धाभावना से, बनाने वाले की चतुरता से, और अतुल वैभव के साथ सेवा-पूजा-करने से। उस काषाय वस्त्रधारिणी माता के पास अतुल वैभव तो नहीं था, किन्तु उसमे शेष दोनों बातें थीं। किसी सुयोग्य निर्माता के द्वारा वह निर्मित थी और माता जी बड़ी श्रद्धा से- अत्यन्त भाव से--उनकी सेवा पूजा करती थीं। भाँति-भाँति का शृङ्गार करके उन्हे सजाया गया था। फिर वैसी ही मूर्ति मैंने कलकत्ते मे चामड़िया सेठों के यहाँ देखी। मेरी इच्छा हुई मैं भी अपनी पूजा में वैसी ही लड्डू-गोपालजी की मूर्ति रखूँ। फिर मैं हिचक गया, एक तो मैं बहुधन्धी हूँ, उनको समय से खिला पिला न सकूँगा। दूसरे न जाने किन-किन के मन

को वे बिगाड़ेंगे, इसलिये मुझे वे प्राप्त भी न हुए। मैंने उद्योग भी न किया। मदरास से एक छोटे-से-मुन्मुना-से चाँदी के लड्डू गोपाल आये हैं। वे बड़े सीधे सादे हैं, दिन भर भूखे बैठे रहते हैं। दोपहर में दो तीन बजे एक बार साग पात खाकर निर्वाह कर लेते हैं। फिर भी वह मूर्ति मुझे भूली नहीं।

एक दिन अभी दस बीस दिन की ही बात है, मैं त्रिवेणीजी में नौका में बैठा पूजा कर रहा था, कि वैसी ही मूर्ति को गोदी में लिये हुए एक माता सगम स्नान करा रही थीं। वे अपने पुत्र की भाँति उन्हें गोद में लिये हुए थीं, उनकी आकृति प्रकृति से ऐसा प्रतीत हुआ, मानों वे किसी सम्पन्न घर की महिला हैं। सम्भवतया बाल विधवा होंगी और अपना कोई पुत्र न होने से इन गोपालजी को ही पुत्र मान लिया होगा। माता को तब बहुत प्रसन्नता होती है, जब कोई उनके बच्चे को प्यार करे उसे कुछ खाने खेलने की वस्तु दे।

जिनको उन माताजी ने पुत्र बनाया था, उन्होंने मुझे भी कुछ आकर्षित किया था। सहसा बीच सगम में एक माता की गोदी में उन्हें देखकर मैं चौंक पड़ा। पूजा बन्द करके मैंने उन्हें पास आने को कहा। वे तो छोटे थे माँ की गोदी मे थे, कैसे मेरे पास आते। मेरी दाढ़ी मूँछे और रूखे रूखे खिचड़ी बालों को देखकर डरते भी होंगे, इसलिये मैंने उनकी माता को ही बुलाया। माता उस अपने लाडले पूत को गोदी म लिये हुए आयीं। मैंने एक गुलाब का फूल उनके हाथ में दिया। इच्छा हुई उन्हें गोदी में ले लूँ, किन्तु वे और उनकी माता दोनों ही भीगे थे। माता ने आवश्यकता से अधिक उन्हें गोता लगा दिये थे। माता काँप रही थीं। वे कुछ काल अपने बच्चे को लिये हुए मेरे पास खड़ी रहीं, फिर फूल को पाकर और यह जानकर, कि ये मेरे बच्चे को प्यार करते हैं, मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न होती हुई चली गयीं।

अब आप सोचिये, जैसे और संसारी माताओं को पुत्र का बन्धन है, वैसे ही इन माता को भी है। इनकी सेवा पूजा हो, इसकी उन्हें चिन्ता है। धन जुटाती हैं, भाँति-भाँति की वस्तुओं को मँगाती हैं, किन्तु जिसकी वे चिन्ता करती हैं वह नित्य है। उन्हें विश्वास है मैं भले ही मर जाऊँ मेरा बेटा कभी भी न मरेगा। मैं इसे भले ही प्यार न करूँ यह मुझे अवश्य प्यार करेगा। जब वे गोपाल पर इतना विश्वास रखती हैं, तो गोपाल का भी तो कुछ कर्तव्य है। वह धनिकों की भाँति पाषाण हृदय कृतघ्न और स्वार्थी तो है नहीं। औरों के लिये हो भी किन्तु जो उसे पुत्र कहकर प्यार करती है लाड लडाती है उसके प्रति तो वह इतना निष्ठुर हो ही नहीं सकता। वह स्वयं अमर है तो अपनी माँ को भी अमर बना देगा, उसकी माँ उसे प्यार करती है तो उसे उससे प्यार करने को विवश होना ही होगा। इसलिये जिस माता ने गोपालजी को अपना पुत्र बना लिया है, उसकी बन्धन मुक्ति में तो कोई सन्देह नहीं। उसका जगत् का जाल छिन्न भिन्न हो ही जायगा।

अब आप सोचें-जगत् का जाल कहते किसे हैं ? काम के लिये मिथुन बनने की इच्छा और उस मिथुन सुख को स्थायी रखने के लिये दाम की इच्छा, इनके द्वारा हमारा नाम भी हो यह भावना। मनुष्य दाम चाहता है काम के लिये और काम भोग से नाम चाहता है। काम कहते हैं-समस्त इन्द्रियों के सुख की अभिलाषा को। रूप का सुख, रस का सुख, गन्ध का सुख, शब्द का सुख और स्पर्श का सुख। ये सब परस्पर में स्त्रियों को पुरुषों से, पुरुषों को स्त्रियों से मिलते हैं, इसलिये विवाह करने का सबकी स्वाभाविक रुचि होती है। विवाह बन्धन हुआ मानों संसार चक्र आरम्भ हुआ। विवाह करके आज तक आत्यन्तिक सुख तो किसी को हुआ नहीं। मेरे पास तो बहुत लोग

आते हैं, किसी ने नहीं कहा—"हम अत्यन्त सुखी हैं।" फिर भी मनुष्य विवाह करने को अत्यन्त उत्सुक रहता है, यही भगवान् का माया है। खाने को चाहें घर में अन्न न हो, किन्तु विवाह अवश्य हो। मेरे पास विद्यालय विश्वविद्यालय से ऊबकर बहुत से विद्यार्थी आते हैं, कोई कहते हैं—"हमें योग सिखा दें, कोई कहते हैं हमें अपनी सेवा म रख लें।" मैं तो ऐसे युवकों को देखते देखते उनकी नाडी पहिचानने लगा हूँ, कह देता हूँ, विवाह करके तब मेरे पास आना।

अभी मुझे एक श्रीमद्भागवत सप्ताह के सम्बन्ध से कुछ देर के लिये कानपुर जाना पडा। मुझे बडी शीघ्रता थी, मेरे पुराण पाठ का त्रिवेणी स्नान का नागा न होने पावे। उसी समय सेठ पद्मपति जी सिंहानिया के दिव्य भवन (कमला स्ट्रीट) को देखने भी बडी शीघ्रता में गये। प० गजानन्दजी जिनसे मैंने बाबूजी का सम्बन्ध स्थापित कर लिया है मुझे दिखाने ले गये। ऐसा सुन्दर समृद्धिशाली विस्तृत सुसज्जित भवन मैंने अपने जीवन में कभी नहीं देखा। वहाँ के तीन चार प्रहरी हमारे साथ लगे रहे और बडे मनोयोग से उन्होंने हमे सभी वस्तुएँ दिखाने का प्रयत्न किया। यदि सावधानी से सब वस्तुओं को देखते तब तो कई दिनों का काम था। हम ऐसे ही चक्कर लगा आये। उसमें भाग्यशाली ही लोग आकर ठहरते होंगे, किन्तु मुझसे कोई वहाँ दो चार घटे भी ठहरने को कहे तो मैं नहीं रह सकता। उसकी किवाडों पर जो एक विशेष प्रकार का रङ्ग किया गया था, उसकी उत्कट गध से मेरे सिर मे पीडा हो रही थी और मैं नाक बन्द किये हुए ही घूमा। वहाँ के सरोवर को देखकर बडी प्रसन्नता हुई। पडितजी ने बताया एशिया में ऐसे एक या दो ही सरोवर और हैं। अस्तु, देख दाखकर अब हमें अपने कृपालु प्रहरियो से विदा होना था, जिन्होंने बडे उत्साह से हमें सब दिखाया था।

चलते समय मैंने एक छोटे-से सुन्दर-से प्रहरी से कहा—"देखो हम बहुत बड़े महात्मा हैं। हम सब कुछ कर सकते हैं, सब कुछ दे सकते हैं। तुम्हारे सेठ साहब भी हमें मानते हैं, तुम हमसे जो चाहो सो माँग लो। हम अपने आशीर्वाद से तुम्हें सब कुछ देने में समर्थ हैं।"

यह सुनकर वह चुप रहा। मैंने कहा—"तुम जितना चाहो धन माँग लो, पुत्र माँग लो, भवन माँग लो, ऐश्वर्य माँग लो। बोलो, बोलो, शीघ्र बोलो हमें जाना है।"

फिर भी वह चुप ही रहा। मैंने कहा—"अच्छा, पुत्र चाहते हो ?"

उसने फिर भी कुछ नहीं कहा। मैंने कहा—"तुम्हारा विवाह हुआ ?"

उसने कहा—"जी, नहीं हुआ।"

मैंने कहा—"तो क्या बहू चाहते हो ?"

उसने कहा—"जी हाँ।"

मैंने कहा—"अच्छा, जाओ तुम्हारा विवाह हो जायगा।"

हमारे साथ तीन चार प्रहरी थे। आज सबको ही वरदान देने की मुझे जुझ सवार हुई। दूसरे से पूछा—"बोलो तुम क्या चाहते हो ?"

उसने कहा—"साब ! मैं ब्याह ही चाहता हूँ।"

मैंने कहा—"अच्छा, जा तेरा भी हो जायगा।"

तीसरे से पूछा—"तू क्या चाहता है भैया !"

उसने कहा—"मैं भी साब ! वही चाहता हूँ।"

यह सुनकर हमारे जितने साथी थे सब खिलखिलाकर हँस पड़े। मैंने कहा—"भैया ! तू तो इतना बड़ा हो गया है, अभी तेरा विवाह नहीं हुआ ?"

उसने कहा—"साव ! हुआ तो था, किन्तु उसे सर्प ने काट लिया मर गयी।"

मैंने कहा—"अच्छा, जा तेरा भी हो जायगा।"

इस प्रकार वरदान देकर हम तो चले आये। अब यह तो हमें पता नहीं उन विचारों का घर बसा या नहीं, किन्तु इससे मैं इसी निर्णय पर पहुँचा, कि ससार बन्धन में फँसने की जीवों की स्वाभाविक रुचि होती है। वह बिना किसी से प्रेम किये रह नहीं सकता।

हमारे "वैद्य रामनारायणजी" जब आये थे, तब उनका एक बारह तेरह वर्ष का पुत्र भी उनके साथ था। वह "भागवती कथा" का इतना प्रेमी है, कि एक दिन में एक खण्ड को समाप्त करके तब विश्राम लेता है। उसने अपने पिता से पूछा—"ब्रह्मचारीजी इतना लिखते ही जाते हैं, लिखते ही जाते हैं, ये कहाँ से इतना लिखते हैं ?"

उसके पिता ने कहा—"पुराण-मडप में नित्य पुराणों की कथाएँ होती हैं, उन्हें ही सुन सुनकर लिखते हैं।"

उनका कहना कुछ अशों में सत्य है, कथाएँ तो पुराणों की ही रहती हैं, किन्तु अधिक लिखने का मसाला तो मुझे इस ससार के अध्ययन से मिलता है। ससार में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं जिससे कुछ न कुछ शिक्षा न ली जा सके। विशेषकर पठितों की अपेक्षा अपठितों से हमें शिक्षा अधिक मिलती है। मैं प्रायः अवसर आने पर सभी से ऐसे प्रश्न करता हूँ और कभी कभी मुझे एक धुन सी सवार होती है। बहुत दिन की बात है, तब कानपुर में स्वामी एकरसानन्द की अध्यक्षता में एक सकीर्तन महोत्सव हुआ था। उसमें हम भी गये थे और सरसैया घाट पर ही ठहरे थे। एक मल्लाह के लड़के से हमने कहा—"हमें पार

पहुँचा दे। उसने पार पहुँचा दिया।" मैंने कहा—"हम बड़े भारी महात्मा हैं तू जो चाहे सो माँग ले।"

उसने मेरे कान मे बड़ी दीनता से कहा—"महाराज! मुझे चार रुपये की आवश्यकता है। चार रुपये दिला दीजिये।"

चार रुपये उसे दिला दिये गये। वह और भी जो माँगता। दिला दिया जाता। मेरा विश्वास है वह बड़ा होता, विवाह योग्य होता, तो अवश्य ही विवाह का वर माँगता, और विवाह हो गया होता तो पुत्र का वरदान माँगता। अब कहने चला ही हूँ, तो लगे हाथों एक पुत्र के वरदान की भी बात शीघ्रता के साथ सुना दूँ।

एक बार हम झरिया गये थे। जहाँ कोयले निकाले जाते हैं, ऐसे एक कोयलों की खान के स्वामी बीरम बाबू के यहाँ ठहरे। उनके छोटे भाई करमसी बाबू हमे कोयलों की खान दिखाने ले गये। इससे पहिले हमने कभी कोयलों की खाने नहीं देखी थीं। हम अनुमान भी नहीं कर सकते थे, कि इतने नीचे भी आदमी काम कर सकता है। भूमि से सैकड़ों हाथ नीचे कोयले खोदे जा रहे थे। वायु भी यन्त्रों द्वारा ही नीचे पहुँचायी जाती थी। वहाँ श्रमिक लोग अत्यन्त श्रम के साथ कोयले काट रहे थे। उनके कपड़े और शरीर ही काले नहीं हो जाते हैं, उनका थूक भी काला निकलता है, और मल मूत्र भी सुनते हैं काला हो जाता है। मनुष्य भी ऐसा जीवन बिता सकता है, यह हमने वहाँ देखा। हमारे तो वहाँ कुछ देर में प्राण तड़फड़ाने लगे। स्वाँस रुकने लगी। एक बड़ा हृष्ट-पुष्ट कुली उन पत्थर के कोयलों को काट रहा था। सम्पूर्ण शरीर पसीने से लथपथ था। मैंने उसे रोककर कहा—"देखो, हम बहुत बड़े महात्मा हैं। तुम्हारे ये बाबू साहब भी हमारे भक्त हैं। हम सब कुछ दे सकते हैं, माँगो तुम क्या माँगते हो?"

उसने कहा—"मुझे एक पुत्र दीजिये।"

इतना सुनते ही हमारे समस्त साथी खिलखिलाकर हँस पड़े, और उनमें से एक बोला—"तू तो कोयले काटता है, पुत्र का क्या करेगा लेकर।"

दूसरा बोला—"वह भी कोयले काटेगा।"

एक दूसरे कुली से भी यही बात कही—"उसने कुछ केवल पैसे ही माँगे।"

इन सब उद्धरणों का यही अभिप्राय है, कि समस्त जीव काम और दाम की दाम-रस्सी मे बँधे हुए हैं। मूर्ख ही नहीं अच्छे-अच्छे पण्डित, हम जैसे जटाधारी, लटाधारी, मठाधारी, त्यागी, सन्यासी इसी चक्कर में हैं। बहुतों से मेरा परिचय है बड़ा सुन्दर उपदेश देते हैं, बड़े से बड़े धनिक उनका आदर करते हैं। बहुत से उनके शिष्य भी हैं, किन्तु इन दाम काम और नाम के ही समस्त प्रयत्न हैं। कोई कपड़े का व्यापार कर रहा है, कोई औषधि का कोई न्याय कराने का और कोई उपदेश देने का। 'स्वात्मानन्द पदप्रवेशकलन शेपाः वणिक्वृत्तयः" इस ससार बन्धन से छूटने का प्रयत्न कोई विरले ही करते हैं। वह तभी होगा जब भगवान् को अपना सुहृद् समझकर उन्हीं के निमित्त समस्त चेष्टाएँ की जायँ। जब तक ससार मे सुखानुभूति होगी, तब तक गोपालजी प्यारे नहीं लगेंगे। जब संसार के पदार्थों से मन हट जाय, यह अनुभव होने लगे, कि इनमें सुख नहीं तब गोपालजी में चित्त लगेगा।

काम की और अर्थ की भावना स्वाभाविक है, प्राणीमात्र में है, बिना सिखाये पढ़ाये आ जाती है, इसीलिये हमारे यहाँ काम-शास्त्र और अर्थ शास्त्र पर मुनियों ने विशद विचार किया है। काम को श्रीकृष्ण का पुत्र बताया है और लक्ष्मी (अर्थ) को भगवान् की पत्नी, और स्वयं भगवान् को धर्मस्वरूप कहा है।

धर्म से विहीन अर्थ और काम विनाश की ओर ले जाते हैं। आज संसार में इतनी अशान्ति क्यों है ? लोग अर्थ को चाहते हैं। स्वच्छन्द काम-सुख भोगने के इच्छुक हैं, किन्तु धर्म को त्यागकर यह सब चाहते हैं, इसीलिये वे अधिकाधिक संसार में जकड़ते जाते हैं। यह युग का धर्म है, कलियुग में धर्म का एक ही पाद तो रह गया है। अन्य युगों में भी लोग अर्थ सञ्चय करते थे, कामोपभोग करते थे, किन्तु धर्मपूर्वक करते थे। श्रुति तो कहती हैं अपुत्रो की गति ही नहीं, इसलिये जिन्हें विवाह की इच्छा भी नहीं होती थी, वे भी धर्मपालन के लिये विवाह करते थे। जरत्कारु मुनि की विवाह करने की इच्छा नहीं थी, किन्तु पितरों के कहने से उन्होंने अपनी इच्छा के विरुद्ध विवाह किया और आस्तीक मुनि के गर्भ में आते ही स्त्री को छोड़कर चले गये। पांडवों ने राज्य लाभ लोभवश नहीं किया था। राज्य-सुखों के उपभोग के लिये महाभारत नहीं किया था, क्षत्रिय का धर्म-पालन करने को युद्ध किया था। न धर्मराज की युद्ध करने की इच्छा थी न अन्य भाइयों की ही, किन्तु धर्मपालन के लिये करना पड़ा, और अन्त में उस राज्य को छोड़कर हिमालय में गलने चले गये। पत्नी करो, किन्तु धर्मपत्नी करो, अर्थोपार्जन करो किन्तु धर्म के लिये करो, किन्तु कामी लोभी इन बातों को सुनते नहीं हम साधारण लोगों की बात तो पृथक् रही, व्यासजी स्वयं कहते हैं—"मैं हाथ उठाकर उच्च स्वर से रो-रोकर कहता हूँ, कि धर्म से काम और अर्थ की प्राप्ति होती है, उस धर्म का सेवन तुम क्यों नहीं करते, किन्तु मेरी कोई सुनता ही नहीं।"

धर्मपूर्वक सेवन किये हुए काम और अर्थ भी यश श्री और स्वर्ग को ही देते हैं। इनसे आत्यन्तिकी शान्ति नहीं मिलती। आत्यन्तिकी शांति तो श्रीकृष्ण से कोई न कोई सम्बन्ध स्थापित करके उन्हें लाड़ लड़ाने में-रिझाने में मिलती है। श्रीकृष्ण हमारे

हैं यह भावना हो जाय और उन्हीं के लिये सब काम किये जायँ तो बेडा पार हैं।

नन्दरानी के कोई पुत्र नहीं था। बुढापा आ गया। वे पुत्र चाहती थीं, अन्त में पुत्र मिला। पुत्र भी ऐसा वेसा नहीं साक्षात् परमात्मा ही पुत्र बनकर आ गया। उसी ने माता को पुत्र सुख दिया। किसी ने उन्हें सखा बनाया, किसी ने कांत सम्बन्ध स्थापित किया और किसी ने उन्हे शत्रु माना। श्रीकृष्ण को जिसने जा बनाया वही वे बन गये और उन सबको परमानद सुख की प्राप्ति करायी। पूतना ने कहा—"मेरे पूत नहीं है। श्रीकृष्ण तू ही मेरा पूत बन जा। मैं तुझे विप पिलाऊँगी।" श्रीकृष्ण ने कहा—"मैं तैयार हूँ, विप पीलूँगा तुझे माता की गति दे दूँगा।" ऐसा ही उन्होंने किया। श्रीकृष्ण की पत्थर की धातु की मिट्टी की कैसी भी मूर्ति बनाकर उनसे प्यार करें। न मूर्ति बनावें घर में बच्चे तो सभी के हैं, उनमे ही श्रीकृष्ण की भावना करके उन्हे खिलावें। सेवा वैसी ही करें केवल भाव बदल दें। श्रीवल्लभाचार्य जी के पुत्र श्रीविट्ठलनाथ जी के सात पुत्र हुए। वे सबमें ही पाँच वर्प तक भगवद्भावना करते थे। उसी भाव से उन्हे खिलाते पिलाते। यह कैसी सुखद उपासना है। श्रीकृष्ण को जो तिलभर प्यार करता है, वे उससे पहाड़ के सदृश प्यार करते हैं। श्रीकृष्ण की लीला चिन्तन ही जग जाल से छूटने की औषधि है। श्रीकृष्ण से जिसका सम्बन्ध जुड जाता है, उसका जगत् से सम्बन्ध आप ही टूट जाता है। श्रीकृष्ण से सम्बन्ध जोडना सहज नहीं। मर्त्यधर्मा प्राणी अमर्त्य से स्वय सम्बन्ध जोड ही कैसे सकता है, जब तक वे न चाहें। जिसको वे वरण कर लें, जिसे वे अपना लें वही उनसे सम्बन्ध जोड सकता है। हे कृपानाथ! हम पर भी कृपा करो, इन कागद, स्याही, चित्र, साँचे, छपाई आदि से हटाकर मुझे अपना लो। हे श्यामसुन्दर!

तुम्हारी बाँसुरी तो नित्य है, वह तो निरन्तर बजती रहती है, उसकी ध्वनि हमें सुना दो। तुम्हारे नूपुर तो नित्य चिन्मय हैं, उनकी झङ्कार को हमारे कर्ण कुहरों में भी प्रवेश होने दो। तुम तो नित्य ही माखन की चोरी करते हो, एक लौंदा चुपके से हमारी ओर भी सरका दो। तुम तो नित्य ही गोरस का दान लेते हो उसमें से कुछ हमें भी पिला दो, हे नदनन्दन ! हे यशुमति-जीवन धन ! हे सखाओं के सर्वस्व ! हे व्रजवनिताओं के प्राण ! हे राधा-रमण ! हे माखनचोर ! कठोरता मत धारण करो। मेरे घर है न द्वार है, कोई भी अपना कहने को मेरा नहीं है। तुम ही अपना लो तुम्हीं अपना कुछ बना लो इस जग जाल से तुम्हीं छुडा लो, हे मेरे मदन मोहन !

छप्पय

हे नँदनन्दन ! यशुमति सुत ! अब तो अपनाओ।
भटक्यो जग में बहुत दयित ! अब मत भटकाओ ॥
मेरे नहिँ पितु मातु सखा सम्बन्धी प्यारे।
भयो तिरस्कृत फिरूँ तिहारे आयो द्वारे ॥
अब भरमाओ नहिँ अधिक, अपनाओ मम कर गहो।
तू मेरो जिह लगत है, अपने श्रीमुख से कहो ॥

सङ्कीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर झूसी (प्रयाग)
मार्गशीष – कृ०१२–२००७ वि० } प्रभु

—:—

राम-श्याम का नाम-करण

[८६५]

गर्गः पुरोहितो राजन् ! यदूनां सुमहातपाः ।
व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः ।।*

(श्रीभा० १० स्क० ८ अ० १ श्लोक)

छप्पय

एक दिवस वसुदेव पुरोहित गर्ग बुलाये ।
करि पूजा सत्कार विनययुत वचन सुनाये ।।
बोले—गुरुवर ! आज आप गोकुल कूँ जावें ।
तहँ द्वै बालक बसहिँ नाम तिनके धरि आवें ।।
शौरि वचन सुनि गर्ग मुनि, अति ही आनन्दित भये ।
पोथी पत्रा बाँधिके, तुरत नन्द ब्रजमहँ गये ।।

समस्त हित के कामों में जो आगे रहता है, वही पुरोहित कहलाता है । वेद को मानने वाले वर्णाश्रमियों का कार्य पुरोहित के बिना चलता नहीं । यही नहीं, एक प्राचीन परिपाटी है कि अपने पुरोहित के कुल मे कोई रहे, तो यजमान को तब तक दूसरे पुरोहित से धार्मिक कृत्य न कराने चाहिये । महाराज मरुत्त और देवगुरु बृहस्पति के सम्वाद से यह बात स्पष्ट हो जाती है ।

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! यादवों के कुल पुरोहित अत्यन्त महा तपस्वी श्रीगर्गजी थे । वे वसुदेवजी की प्रेरणा से नन्दजी के व्रज में गये ।"

अपने कुल पुरोहित की सन्तान योग्य न भी हो, तब भी यजमान को उसे मानना चाहिये। अपना अयोग्य पुत्र हो तो कोई उसे छोड़ थोड़े ही देता है। यजमान और पुरोहित का सम्बन्ध भी कौटुम्बिक सम्बन्ध है। वैदिक कर्मों पर से आस्था उठ जाने से अब यह प्रथा उठती जाती है। काल का प्रभाव है, युग का धर्म है, किसी का कुछ दोष नहीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! वसुदेवजी का शरीर तो मथुरा जी में रहता था, किन्तु मन नन्दजी के गोकुल में ही पड़ा रहता था। वे दिन गिनते रहते थे, कि मेरा बच्चा आज के दिन का हुआ। जिस दिन दश दिन हुए उसी दिन सोचा—"बच्चे का नाम-करण होना चाहिए, किन्तु तब बड़े उपद्रव हो रहे थे, वसुदेवजी चुप हो गये, तब उन्होंने सोचा—"अब तो नाम-करण होना ही चाहिये। कैसे हो, मेरे बच्चे का नाम-करण मेरे ही पुरोहित के द्वारा हो, इसी सोच विचार में वे पड़े थे कि उन्हें एक दिन मार्ग में महामुनि गर्गजी मिले। वसुदेवजी ने बड़ी श्रद्धाभक्ति के सहित मुनि की चरण-वन्दना की और बोले—"भगवन्! आपके तो अब दर्शन ही नहीं होते। सब स्वजनों ने हमें छोड़ ही दिया, आप भी छोड़ देंगे तो हम कैसे जीवित रह सकते हैं?"

गर्गजी ने कहा—"वसुदेवजी! आप कैसी बात कह रहे हैं? आप सब परिस्थति जानते हैं, मुझ से क्या कहलाते हैं। आज-कल मिलने जुलने में न जाने कोई क्या अर्थ निकाले। सर्वत्र तो गुप्तचर घूम रहे हैं।"

वसुदेवजी ने कहा—"हाँ, महाराज! यह तो सत्य है, अच्छा कल किसी समय कृपा करें।"

गर्गजी ने इधर-उधर देखकर धीरे से कहा—"अच्छा मैं कल रात्रि में आऊँगा।"

वसुदेवजी ने विनय के स्वर में कहा—"महाराज ! भूल न हो।"

दृढता के स्वर में गर्गजी ने कहा—"भूल कैसे होगी राजन् ! मैं अवश्य आऊँगा।"

यह कहकर गर्गजी चले गये, वसुदेवजी अपने घर लौट आये। दूसरे दिन रात्रि में अकेले ही गर्गजी पधारे। वसुदेवजी ने विधिपूर्वक उनकी पूजा की और हाथ जोडकर बोले—"प्रभो ! आप तो सर्वज्ञ हैं, ज्योतिष शास्त्र के प्रणेता ही हैं आपको विदित ही होगा मेरी पत्नी रोहिणी नन्दजी के ब्रज में रहती है, उसका एक बच्चा है, नन्दजी का भी एक बच्चा है, इन दोनों के आप नाम करण संस्कार कर आवें।"

गर्गजी ने कहा—"राजन् ! जाने में तो मुझे कोई आपत्ति नहीं, किन्तु ब्रज में मेरे जाते ही हल्ला मच जायगा। कंस के गुप्तचर सर्वत्र घूमते रहते हैं। नन्दजी के यहाँ धूम धड़ाका उत्सव होगा, तो सर्वत्र हल्ला मच जायगा। कंस मुझसे पूँछ सकता है, आप क्यों गये ? आप पर भी संदेह कर सकता है। इससे हम लोगों पर एक नवीन विपत्ति आ जायगी।"

इस पर वसुदेवजी ने कहा—"अब महाराज ! इसे तो आप विचार लें। यजमान के समस्त कर्म कुल पुरोहित के ही अधीन हैं। यजमान के परिवार का कुल पुरोहित भी एक अङ्ग है। पुरोहित के घर में कोई न रहे तो उसका श्राद्ध यजमान कर सकता है और उसे वह श्राद्धान्न तथा तर्पण का जल मिलता है। इसी प्रकार यजमान के घर कोई न रहे तो उसका श्राद्धादि पुरोहित कर सकता है, यजमान पुरोहित का ऐसा घनिष्ट सम्बन्ध है। आप जैसे सर्वज्ञ पुरोहित सम्पत्ति विपत्ति दोनों में ही यजमान का साथ देते हैं। आपके बिना बच्चों का नाम करण कौन कर सकता है ?"

महामुनि गर्ग ने कहा—"यह तो मैं सब जानता हूँ। मेरे मन में तो आपके प्रति बड़ा प्रेम है। अच्छी बात है, मैं कल जाऊँगा। आप किसी से इस विषय की चर्चा न करें।"

वसुदेव जी ने कहा—"मुझे क्या पड़ी है, किसी से कहने की। आप सावधान रहें, नन्दजी को समझा दें।"

गर्गजी ने यह सब स्वीकार किया। वे वसुदेवजी से विदा हुए रात्रि में अपने घर में विश्राम किया। रात्रि भर सोचते रहे—"मेरा बड़ा भाग्य है, जो भगवान् के कल दर्शन होंगे, उनके नाम-करण का सौभाग्य मुझे प्राप्त होगा। उनका क्या नाम-करण करना। उनके तो अनेक नाम हैं। इसी व्याज से उनके दर्शन मुझे हो जायँगे। इन्हीं विचारों में रात्रि के तीन पहर बीत गये। रात्रि में ही कमण्डलु लेकर धोती दुपट्टा बगल में दबाकर यमुना जी के गोकुल घाट की ओर चल दिये। कोई पूछेगा, तो कह देंगे, आज इधर ही स्नान शौच के लिये जाना है, किन्तु रात्रि में किसी ने उन्हें देखा नहीं, वे यमुना पार करके सूर्योदय के पूर्व ही नन्दजी के गोकुल में पहुँच गये।

गोष्ठ की गौओं को ग्वाले चराने को ले गये थे। दश पाँच दिन के बहुत से गौओं के बच्चे गोष्ठ में इधर से उधर फुदक रहे थे, नन्दजी अरुणोदय में ही स्नान करके गोष्ठ के एक भाग में शालग्राम भगवान् की पूजा कर रहे थे, कि उन्हें सहसा सामने से आते हुए महामुनि गर्ग दिखायी दिये। उन्हें देखते ही नन्दजी अत्यन्त प्रसन्न होकर उठ खड़े हुए। आज उनके हर्ष का ठिकाना नहीं था। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि स्वयं भगवान् विष्णु ही विप्र का रूप रखकर उन्हें कृतार्थ करने आये हैं जिन शालग्राम भगवान् का पूजन कर रहा था, वे ही साक्षात् सजीव होकर गर्ग बन गये हैं। अत्यन्त भक्ति भाव तथा नम्रता के सहित हाथ जोड़कर मुनि को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और बैठने के लिये सुन्दर

आसन दिया। भगवान् की पूजा की जो सामग्री थी, उसी से विधिपूर्वक विष्णु बुद्धि से उनका पूजन किया।

महामुनि गर्ग ने स्वस्थ चित्त से बैठकर नन्दजी की की हुई शास्त्रीय पूजा को शास्त्रीय विधि से स्वीकार किया। तब नन्दजी अत्यन्त मधुर वाणी से मुनि की प्रशंसा करते हुए कहने लगे—"भगवान्! आज मैं धन्य हुआ, कृतार्थ हुआ, जो आपकी सेवा का सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ। आप तो आप्तकाम हैं, आपकी सेवा हम कर ही क्या सकते हैं और आपको हमारी सेवा की अपेक्षा भी नहीं, आप जो हम जैसे दीन चित्त गृहस्थियों के घरों को अपनी पदरज से पधार कर पावन बनाते हैं, इसमें आपका अपना कोई निजी स्वार्थ तो होता नहीं। हम इन गृहस्थियों के झंझटों को सहते-सहते दीन चित्त कृपण हो जाते हैं, हम जैसे शोक सन्तप्तों को शान्ति मार्ग बताने, हमारा कल्याण करने ही आप विचरण करते रहते हैं।"

गर्गजी ने कहा—"अजी, नन्दजी! ये तो आपके शिष्टाचार के वचन हैं, हम लोग किस योग्य हैं, तुम धन्य हो जो नारायण की भक्ति से यहीं वैकुण्ठ का सुख भोग रहे हो।"

नन्दजी ने विनीत भाव से कहा—"महाराज! ऐसे वचन आपको नहीं कहने चाहिए, बिना पढ़ा लिखा साधारण ब्राह्मण भी पूजनीय होता है, तिसमें आप तो सर्वज्ञ हैं। जो इन्द्रियों से परे अतीन्द्रिय ज्ञान है जिसके द्वारा लोग भूत भविष्य का वृत्तांत प्रत्यक्ष जान सकते हैं, आपने उस ज्योतिष शास्त्र की रचना की है। आप समस्त ब्रह्मवादियों में श्रेष्ठ हैं। आपके चरणों में मेरी प्रार्थना है।"

गर्गजी ने कहा—"हाँ, कहिये गोपेन्द्र! मैं आपका कौन-सा कार्य कर सकता हूँ।"

नन्दजी ने कहा—"मेरे ये दो बालक हैं, इनमें एक तो लग-

भग पन्द्रह महीने का हो गया एक आज सौ दिन का हुआ है, इन दोनो के अभी नाम करण सस्कार नहीं हुए हैं। आप इनके नाम रख दें।"

गर्गजी ने कहा—"भैया ! नाम तो तुम्हारे कुल पुरोहित ही रखेंगे। जो जिस कुल का गुरु होता है, वही उनके सस्कार करा सकता है। मैं तुम्हारा गुरु हूँ नहीं।"

नन्दजी ने दृढता के स्वर मे कहा—"महाराज ! ब्राह्मण तो माता के उदर से ही गुरु बनकर उत्पन्न होता है, वह किसी व्यक्ति विशेष का गुरु नहीं होता, अपितु वह तो जन्म से ही सबका गुरु होता है। इस न्याय से आप भी मेरे गुरु हैं। आप इनका नाम करण सस्कार कराव।"

गर्गजी ने कहा—"मुझे सस्कार कराने मे तो कोई आपत्ति है नहीं, किन्तु बुद्धिमान् पुरुष को आगे पीछे की सभी बातें विचार लेनी चाहिये सभी जानते हैं, मैं यादवों का कुल पुरोहित हूँ, मैं सदा से पृथ्वी पर यदुकुलाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हूँ, यदि मैं तुम्हारे पुत्र का सस्कार कराऊँ, तो सभी लोग तुम्हारे पुत्र को देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुआ ही समझेंगे। अभी तक तो लोगों को सदेह ही है, कस को तो तुम जानते ही हो, वह कैसा दुष्ट बुद्धि है, आज कल वह सदा सशक रहता है, प्रत्येक घटना में वह रहस्य खोजता है। यह बात सभी जानते हैं, वसुदेवजी की और आपकी प्रगाढ मित्रता है, कस से भी यह बात अविदित नहीं है। देवर्षि के कथन को मानकर वह यह भी जानता है कि देवकी की आठवीं सन्तान कभी भी कन्या नहीं हो सकती। मैं आपके पुत्र का नाम करण करूँगा, क्षण भर मे उत्सव होगा, हल्ला मच जायगा। फिर कस को इस बात मे रच मात्र भी सदेह न रहेगा, कि यह देवकी का आठवाँ पुत्र है। आप पर भी आपत्ति आवेगी और वसुदेवजी पर भी। वह फिर आपके बच्चों को मार डालेगा।

गौओं को छीन लेगा और आपको राज्य से बाहर कर देगा। मेरे सस्कार कराने से इतने अनर्थों की सम्भावना हो सकती है।"

नन्दजी ने कहा—"महाराज ! हमे हल्ला-गुल्ला करने से क्या काम। हम बहुत विस्तार भी नहीं चाहते। मैं किसी को बुलाऊँगा भी नहीं। आपके आगमन की बात किसी को बताऊँगा भी नहीं घर में इस सस्कार को कराऊँगा भी नहीं। यहीं दोनों बच्चों की माताओ को बच्चों सहित बुलाये लेता हूँ, आप साधारण रीति से स्वस्तिवाचन पूर्वक उनका द्विजाति सस्कार मात्र कर दें। उत्सव हमें करना होगा, तो पीछे कर लेंगे।"

गर्गजी ने कहा—"फिर भी किसी को भी तो बुलावेंगे। जहाँ बात चार कान से छे कान होती है वहीं फैल जाता है।"

नन्दजी ने कहा—"मैं जानूँ आप जाने और मैं सेवकों को भी नहीं बताऊँगा। आज आप सस्कार करें। यहीं भगवान् की रसोई बनावें। प्रसाद पाकर रात्रि में चले जायँ, नौका का प्रबन्ध है ही। रात्रि मे मथुरा पहुँच जायँगे। कौन जान सकता है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! गर्गजी को यही तो अभीष्ट था, इसी निमित्त तो वे आये ही थे, जब नन्दजी ने अपने आप ही सब बातें गुप्त रखना स्वीकार किया, तो उन्होने नाम करण सस्कार कराने की स्वीकृति दे दी। नन्दजी ने अपनी पूजा की सामग्री बटोरी और भीतर घर में नन्दरानी तथा रोहिणीजी को नाम करण के लिये तैयार होने के लिये कहने गये। भीतर जाकर उन्होने एकान्त मे दोनों को समझाया, यह सुनकर दोनो मातायें प्रसन्नतापूर्वक तयारियाँ करने लगीं।"

—

भग पन्द्रह महीने का हो गया एक आज सौ दिन का हुआ है, इन दोनों के अभी नाम करण सस्कार नहीं हुए हैं। आप इनके नाम रख दें।"

गर्गजी ने कहा—"भैया ! नाम तो तुम्हारे कुल पुरोहित ही रखेंगे। जो जिस कुल का गुरु होता है, वही उनके सस्कार करा सकता है। मैं तुम्हारा गुरु हूँ नहीं।"

नन्दजी ने दृढता के स्वर मे कहा—"महाराज ! ब्राह्मण तो *माता के उदर से ही गुरु बनकर उत्पन्न होता है,* वह किसी व्यक्ति विशेष का गुरु नहीं होता, अपितु वह तो जन्म से ही सबका गुरु होता है। इस न्याय से आप भी मेरे गुरु हैं। आप इनका नाम करण सस्कार करावे।"

गर्गजी ने कहा—"मुझे सस्कार कराने मे तो कोई आपत्ति है नहीं, किन्तु बुद्धिमान् पुरुष को आगे पीछे की सभी बातें विचार लेनी चाहिये सभी जानते हैं, मैं यादवों का कुल पुरोहित हूँ, मैं सदा से पृथ्वी पर यदुकुलाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हूँ, यदि मैं तुम्हारे पुत्र का सस्कार कराऊँ, तो सभी लोग तुम्हारे पुत्र को देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुआ ही समझेंगे। अभी तक तो लोगों को सदेह ही है, कस को तो तुम जानते ही हो, वह कैसा दुष्ट बुद्धि है, आज कल वह सदा सशक रहता है, प्रत्येक घटना में वह रहस्य खोजता है। यह बात सभी जानते हैं, वसुदेवजी की और आपकी प्रगाढ मित्रता है, कस से भी यह बात अविदित नहीं है। *देववाणी के कथन को मानकर* वह यह भी जानता है कि देवकी की आठवीं सन्तान कभी भी कन्या नहीं हो सकती। मैं आपके पुत्र का नाम करण करूँगा, ब्रज भर में उत्सव होगा, हल्ला मच जायगा। फिर कस को इस बात मे रच मात्र भी सदेह न रहेगा, कि यह देवकी का आठवाँ पुत्र है। आप पर भी आपत्ति आवेगी और वसुदेवजी पर भी। वह फिर आपके बच्चों को मार डालेगा।

गौओं को छीन लेगा और आपको राज्य से बाहर कर देगा। मेरे सस्कार कराने से इतने अनर्थों की सम्भावना हो सकती है।"

नन्दजी ने कहा—"महाराज ! हमे हल्ला-गुल्ला करने से क्या काम। हम बहुत विस्तार भी नहीं चाहते। मैं किसी को बुलाऊँगा भी नहीं। आपके आगमन की बात किसी को बताऊँगा भी नहीं घर में इस सस्कार को कराऊँगा भी नहीं। यहीं दोनों बच्चा की माताओं को बच्चों सहित बुलाये लेता हूँ, आप साधारण रीति से स्वस्तिवाचन पूर्वक उनका द्विजाति सस्कार मात्र कर दें। उत्सव हमें करना होगा, तो पीछे कर लेंगे।"

गर्गजी ने कहा—"फिर भी किसी को भी तो बुलावेंगे। जहाँ बात चार कान स छे कान होती है वही फेल जाता है।"

नन्दजी ने कहा—"मैं जानूँ आप जाने और मैं सेवकों को भी नहीं बताऊँगा। आज आप सस्कार करें। यहीं भगवान् की रसोई बनावें। प्रसाद पाकर रात्रि में चले जायँ, नौका का प्रबन्ध है ही। रात्रि म मथुरा पहुँच जायँगे। कौन जान सकता है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! गर्गजी को यही तो अभीष्ट था, इसी निमित्त तो वे आये ही थे, जब नन्दजी ने अपने आप ही सब बातें गुप्त रखना स्वीकार किया, तो उन्होंने नाम करण सस्कार करान की स्वीकृति दे दी। नन्दजी ने अपनी पूजा की सामग्री बटोरी और भीतर घर मे नन्दरानी तथा रोहिणीजी को नाम करण के लिये तैयार होने के लिये कहने गये। भीतर जाकर उन्होंने एकान्त मे दोनों को समझ या, यह सुनकर दोनों मातायें प्रसन्नतापूर्वक तैयारियाँ करने लगीं।"

छप्पय

नन्द निहारे गर्ग विष्णु सम पूजा कीन्हीं ।
करि पूजा स्वीकार हरषि मुनि आशिष दीन्हीं ॥
नाम-करण संस्कार सुतनि को कीजै मुनिवर ।
मुनि समझाये नन्द न मेरो करिबो हितकर ॥
बोले व्रजपति जाति कुल, के जन नहिं बुलवाऊँगो ।
गुप्त भावतैं गोष्ठमहँ, नाम-करण कराऊँगो ॥

कनुआ-बलुआ

[८६६]

एवं सम्प्रार्थितो विप्रः स्वचिकीर्षितमेव तत् ।
चकार नामकरणं गूढो रहसि बालयोः ॥*
(श्री भा० १० स्क० ८ अ० ११ श्लो०)

छप्पय

श्याम रोहिणी लिये रामकूँ मैया यशुमति ।
बोले मुनिवर गर्ग रोहिणीसुत जिहि ब्रजपति ॥
संकर्षण, बलराम नामतें बोले जावें ।
जे जसुमति सुत वासुदेव हरि कृष्ण कहावें ॥
नारायण सम तनय तव, ब्रजकी रक्षा करिहें ।
हनि सुर द्रोही असुर कुल, भूमि-भार-भय हरिहें ॥

नाम दो प्रकार के होते हैं, एक राशिका लग्नका-नाम दूसरा घर में बोलने का प्यार का नाम, प्यार का नाम बिगडकर आधा बोला जाता है, जैसे भोलादत्त है तो भुल्लो, मूलचन्द्र है, तो मुल्लो, रामदत्त है तो रम्मू शम्भूदत्त है तो शम्भू । इस आधे और बिगडे हुये नाम में जो प्यार भरा है, वह अनेक उपाधियों से विभूषित शिष्टाचार युक्त सम्बोधन में कहाँ मिलेगा । एक पंडित नाथू-

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! महामुनि गर्गजी को तो नाम करण संस्कार करना ही था, जब नन्दजी ने ही इस प्रकार प्रार्थना की तो उन्होंने एकान्त में छिपकर बालकों का नाम-करण संस्कार किया ।"

रामजी थे, वृद्ध थे। उनकी माँ लगभग सौ वर्ष की थीं। पंडित जी बड़े प्रतिष्ठित थे, सब लोग उनका अत्यधिक सम्मान करते थे। उनकी माता मर गयीं वे बालकों की भाँति फूट फूटकर रोने लगे। लोगों ने समझाया—"पंडितजी। आप इतने बुद्धिमान् हैं, माताजी का समय था जिसने जन्म धारण किया है, उसे एक दिन मरना ही है। आपको इतना शोक शोभा नहीं देता।"

पंडितजी ने आँसू पोंछते हुए रोते रोते कहा—"भाई! ये सब बातें तो मैं जानता हूँ, माताजी का समय था मेरा भी समय समीप ही है, मरना सभी को है। मुझे माताजी की मृत्यु पर सोच नहीं। अच्छा है वे दुःख से छूटीं। मुझे तो सोच इस बात का है, कि अब मुझसे कोई "नत्थू" कहने वाला नहीं रहा। "नत्थू" शब्द में जितना प्रेम भरा था, उतना मेरे नाम के आगे पीछे जितनी उपाधियाँ लगती हैं. उनमें कहाँ है और वह शब्द माताजी के मुख से ही मधुर लगता था। दूसरा कोई कहे तो उसमें अपमान का भान होने लगेगा।"

बात यह है कि शब्दों में कुछ नहीं है। सब बात भावों के ही ऊपर निर्भर है। भाव ही भाव के शब्दों का कुछ से कुछ अर्थ बना देते हैं। वैसे कोई गाली दे तो मरने मारने को तैयार हो जायँ, उन्हीं गालियों को ससुराल में साली सरहजें दें, तो वे मिश्री से भी मीठी और दालमोंठ से भी नमकीन प्रतीत होंगी।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! नन्दजी ने घर में जाकर यशोदा-मैया के कान में कुछ कहा। सुनते ही मैया रोहिणीजी के समीप दौड़ी गयीं। रोहिणीजी ने सुनकर प्रसन्नता प्रकट की। दोनों ने बच्चों को नहलाया। रोहिणीजी ने श्रीकृष्ण को उबटन लगाकर स्नान कराया, मोटा मोटा काजर लगाकर माथे पर दीठ न लगे इसलिये दिठौन लगाया। हाथों के कड़ूलों को स्वच्छ किया। पैर के घुँघुरूदार कड़ूलों को खटाई से धोया, कठुला बघनखा आदि

कंठ में पहिनाये। पीली झंगुरिया पहिनायी, गोटादार चिपकती टोपी पहिनायी, भाल पर गोरोचन का तिलक दिया, काली काली घुँघराली लटों को तेल डालकर सम्हाला और बड़े ही स्नेह के साथ गोद में लेकर मुख चूमा। इस प्रकार बालक का शृङ्गार करके माता ने स्वयं भी अपना शृङ्गार किया। इसी प्रकार बलरामजी का यशोदा मैया ने शृङ्गार किया। दोनों ही शृङ्गार करके भली-भाँति सज-धज कर बच्चों को गोदी में लेकर पिछले द्वार से बिना किसी से कहे गोष्ठ में चली गयीं।

गर्गजी वहाँ सब सामग्री सजाये बैठे ही थे। नन्दजी ने भी पुनः स्नान करके देवता और पितरों का पूजन तर्पण किया। तब तक दोनों लालों को गोद में लिये हुए अपनी नूपुर, कंकण, और किंकिणी आदि आभूषणों की ध्वनि से गोकुल को मुखरित करती हुई रोहिणीजी और यशोदाजी आ पहुँचीं। छोटे लालजी के अंग पर रेशमी पीत वस्त्र शोभित हो रहे थे और बड़े लालजी का श्रीअङ्ग नीले रेशमी वस्त्रों से विभूति था। उस गौर-श्याम की मनमोहिनी जोड़ी को देखते ही मुनिवर गर्ग के सम्पूर्ण अङ्गों में एक प्रकार की विद्युत्-सी दौड़ गयी। वे किसी अव्यक्त शक्ति की प्रेरणा से इच्छा के बिना भी सहसा अपने आसन से उठकर खड़े हो गये, उनके पलक गिरते नहीं थे, वे बार बार सोचते— "इन्हें मैया की गोदी से छीनकर हृदय से चिपटा लूँ, नेत्रों में बिठा लूँ, सिर पर चढ़ा लूँ, इनके चरणों को अन्तःकरण में छिपा लूँ, इस पर वे अनेक प्रकार की तर्कना करते रहे, किन्तु हाथ आगे बढ़ते नहीं थे, इतने में ही श्याम गौर दोनों बालकों को माताओं ने आकर मुनि के चरणों में डाल दिया। चरणों में पड़े दोनों शिशु ऐसे दीखते थे मानों मुनि के पाद-पद्मों में गौर और नील दो खिले कमल माताओं ने चढ़ाये हों। श्याम मुट्ठी बाँधे सिर को इधर करते हुए हाथ हिला रहे थे, मानों कह रहे

थे, अब तुम्हे माया स्पर्श नहीं कर सकती। दोनों बालक मूर्तिमान् सौंदर्य माधुर्य के समान, आनन्द और उल्लास के समान, सच्चिदानन्द आनन्द घन विग्रहों के समान, तथा मूर्तिमान भाग्य के समान मुनिवर को दिखायी दिये। उन्होंने दोनों बच्चों के सिरों पर हाथ रखते हुए कहा—"स्वस्त्यस्तु, कल्याणमस्तु" वे तो कल्याण के स्वरूप ही हैं। माताओं ने भी मुनि के चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया, मुनि ने आशीर्वाद दिया। दोनों बच्चों को माताओं ने गोद में ले लिया।

व्रजराज ने यशोदा मैया से कहा था—"गर्गजी बड़े भारी ज्योतिषी हैं, ये भूत भविष्य तथा वर्तमान तीनों कालों की बातों को जानते हैं।" यशोदाजी ने सोचा—"देखें, ये कैसे त्रिकालज्ञ है, इसीलिए उन्होंने गौर बालक को ले लिया और श्याम को रोहिणी जी को दे दिया। सर्वज्ञ होंगे, तो बता ही देंगे. यह किनका पुत्र है इसी भाव से दोनों माताएँ बच्चों को बदल कर गोद में लिये खड़ी रहीं। मुनि ने जब आज्ञा दी, तब दोनों चौक के ऊपर बिछे पटरों पर बैठ गयीं। मुनि ने संक्षेप में संकल्प-पूर्वक दीपक कलश शंख घंटा तथा गणेशजी का पूजन कराया, तदनंतर नवग्रह षोडश भाँति का पंचदेवों का पूजन कराके पञ्चाङ्ग खोला। रोहिणीजी श्रीकृष्ण को लिये हुए पहिले बैठीं उनके पश्चात् यशोदाजी बलराम को लिये बैठी थीं। नियमानुसार प्रथम उन्हें पहिले बैठी हुई रोहिणी जी की गोदी के बालक का नाम रखना चाहिये था, किन्तु वे तो सर्वज्ञ थे, समझ गये बड़े लालजी तो यशोदाजी की गोदी में हैं। पहिले बड़े लालजी का ही नाम रखकर तब छोटे का रखें। इसीलिये गौर बालक की ओर उँगली उठाकर बोले—"यह जो यशोदा रानी की गोदी में रोहिणीजी का पुत्र है, यह अपने गुणों से स्वजनों को रमावेगा। इसलिये इसका एक नाम तो 'राम' होगा, राम कई हो गये हैं। एक परशु को रखने वाले

परशुराम, एक दशरथ के पुत्र दाशरथी राम, इन सबके पीछे विशेषण लगाने से इनका पृथक्-पृथक् बोध होता है। इनके शरीर मे बल बहुत अधिक होगा, अतः ये 'बलराम' कहलावेंगे। भद्र स्वरूप होने से बलभद्र और बडे भाई होने से बलदाऊ जी भी कहेंगे। ये यादवों और गोपो मे विग्रह होने पर मेल करावेंगे इसलिये इन्हे 'संकर्षण' भी लोग कहेगे। मुख्य इनका नाम रहा 'बलराम'।

यह सुनकर यशोदा मैया ने रहस्य भरी दृष्टि से रोहिणीजी की ओर देखा नेत्रों ही नेत्रों उन्होंने बता दिया, जैसा मुनि के सम्बन्ध में सुना था, ये तो वैसे ही निकले। मेरी गोद में होते हुए भी गौर बालक को इन्होंने बता दिया।

तदनन्तर रोहिणीजी की गोद में झपकियाँ लेते हुए लालजी की ओर देखकर नंदजी से महामुनि गर्ग बोले—"ब्रजराज! यह तुम्हारा सुत प्रत्येक युग में उत्पन्न होता है। सतयुग में यह श्वेत वर्ण का होता है, त्रेता मे इसका रंग रक्त हो जाता है, द्वापर में पीत वर्ण का होता है, अब कलियुग के आदि में कृष्ण वर्ण का प्रकट हुआ है। वर्ण के अनुसार ही इसका नाम 'कृष्ण' होगा। पहिले कभी यह वसुदेव का भी पुत्र हुआ था, इसलिये इसे लोग वासुदेव कहने लगें, तो तुम बुरा मत मानना। गुण और कर्मों के अनुसार तुम्हारे पुत्र के और भी सहस्रों नाम हैं। उन्हें ज्योतिष और तपस्या के प्रभाव से मैं तो जानता हूँ, दूसरे लोग उन्हें नहीं जानते हैं।"

नन्दजी ने कहा—"महाराज! इसके ग्रह लग्न देखकर बता दें, इसका भाग्य कैसा होगा। इसके कारण हमारे कुल की वृद्धि होगी या नहीं?"

यह सुनकर हँसते हुए गर्गजी बोले—"अजी, नन्दजी! आप इसके ग्रह लग्नों की क्या बात पूछते हैं, यह बालक कल्याण

प्रावन करता हुआ समस्त गोपों और गौओं को आनन्दित करेगा। इनके सहारे आप विपत्तियों के सागर से सुगमतापूर्वक पार हो जायँगे।"

नन्दजी ने कहा—"महाराज! इसका शत्रु स्थान कैसा है? शत्रु तो इसे बाधा नहीं पहुँचावेंगे।"

गर्गजी हँसे और बोले—"मैंने ज्योतिष की बड़ी प्रसिद्ध पुस्तक गर्ग संहिता बनायी है, उसके अनुसार मैं पिछले अगले जन्मों की बातें बताता हूँ। देखिये, पूर्व काल में अराजकता के समय डाकुओं और लुटेरों से पीडित प्रजा की तथा साधुजनों की रक्षा की थी, तब इसके भुजबल से रक्षित होकर साधुजनों ने डाकुओं पर विजय प्राप्त की। इसको शत्रुओं से भय होने की बात तो दूर रही, जो इससे प्रेम भी करेंगे, वे भी शत्रुओं से निर्भय हो जायँगे उन्हें भी कोई दबा नहीं सकते। आप जानते ही हैं असुर कितने बली हैं देवता तो समर में उनके सम्मुख खड़े भी नहीं हो सकते, किन्तु भगवान् विष्णु द्वारा सुरक्षित होने से असुर उनका बाल भी बाँका नहीं कर सकते। गोपराज! विशेष क्या कहूँ, हम तो यहाँ कहते हैं कि तुम्हारे लालजी गुण कीर्ति और प्रभाव में साक्षात् श्रीमन्नारायण के ही समान होंगे, तुम सावधानी से इनकी रक्षा करना।"

हाथ जोडकर नन्दजी ने कहा—"महाराज! रक्षा करने कराने वाला मैं कौन हूँ, आपके आशीर्वाद से ही रक्षा होगी। जब आपका वरदहस्त इनके शिरो पर पड़ गया है, तो इनके मंगल में क्या सन्देह है। महाराज! आपने इनका टेवा बना लिया हो तो मैं साथ ही ग्रहों का फल भी सुनना चाहता हूँ।"

गर्गजी बोले—"विशेष फल तो जब मैं बड़ी जन्मपत्री बनाऊँगा, तब सुनाऊँगा। इस समय तो साधारण रीति से आपके पुत्र के ग्रहों का उल्लेख मात्र करे देता हूँ। वैसे सभी शुभ ग्रह

उच्च के पड़े हैं, भाद्र कृष्ण अष्टमी बुधवार को अर्धरात्रि के समय आपके लाल का जन्म हुआ है। इस सम्वत्सर का नाम सरस विभावन है। सरस सम्वत्सर मे होने से यह साँवरा सलौना सुकुमार सुत सबको सरसावेगा, निश्व ब्रह्माण्ड को रस में डुबावेगा। जन्म रोहिणी नक्षत्र है, यह अत्यन्त शुभ है, अष्टमी तिथि बुधवार सब मङ्गलमय ही है, लग्न वृष है, इससे यह सबसे श्रेष्ठ होगा। तन स्थानों मे उच्च के चन्द्रमा हैं, जिससे इसे शारीरिक सुख सदा मिलेगा। वृष से चौथे स्थान अर्थात् सिंह राशि सूर्य हैं इसका फल यह है कि यह सम्पूर्ण भूमण्डल को अपने भुजबल से जीत लेगा पञ्चम स्थान पर कन्या के बुध हैं इसका फल यह होगा, कि पुत्रों की कमी न होगी नित्य ही पुत्र पैदा होंगे। इतने पुत्र होंगे कि बाबा, दादी को सबके नाम भी न याद रहेंगे।

छठे स्थान पर तुला राशि पर शुक्र और शनि दोनों साथ ही साथ बैठे हैं, इसका फल यह है, कि यह अपने शत्रुओं को बीन-बीन कर मारेगा। पृथ्वी पर एक भी इसका शत्रु शेष न रहेगा। सातवें स्थान पर राहु हैं, ये कुछ गड़बड़ हैं इसका फल यह होगा कि इसके बहुएँ बहुत होंगी ऊँच नीच सभी श्रेणी की बहुओं से महल भरे रहेंगे। मकर राशि पर भाग्य स्थान मे मङ्गल हैं इनका फल यह होगा कि सदा इसका मङ्गल ही-मङ्गल होगा, निरन्तर ऐश्वर्य बढ़ता रहेगा। मीन राशि पर लाभ के स्थान में बृहस्पति हैं। इसका फल तो कुछ कहना ही नहीं सदा अष्टसिद्धि नवो निधि तुम्हारे लाल के सम्मुख हाथ जोड़े खड़ी रहेगी। कर्क स्थान मे मेष के शनिश्चर हैं इसका फल यह है, कि इसका वर्ण कृष्ण होगा। घन के सदृश श्याम शरीर होगा। संक्षेप में यही इसके ग्रहों का फल है।"

नन्दजी यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होने मणि मुक्ता सुवर्ण रत्न तथा बहुत से वस्त्राभूषण गर्गजी को दक्षिणा में दिये।

गौएँ भी दीं और कहा—"महाराज ! दक्षिण की वस्तुओं को यहीं छोड़ जायँ, अब के अब हम मथुरा आवेंगे, आपके घर पहुँचा आवेंगे। आप यह न सोचें—"कि ब्याज भाड़ा दक्षिणा, पीछे पड़े तो कछुना।" आपकी दक्षिणा पहुँच जायगी।"

यह सुनकर गर्गजी हँस पड़े। मैया यशोदा और रोहिणीजी प्रणाम करके चल दीं। रोहिणीजी ने पूछा—"मैंने तो सुना नहीं, क्या-क्या नाम रखे दोनों के ?"

यशोदाजी ने कहा—"बड़े का नाम 'बलराम' और छोटे का नाम 'कृष्ण' यही तो बताये थे और जाने पण्डितजी क्या-क्या गीत गाते रहे, वे सब तो मेरी समझ में आये नहीं।"

रोहिणीजी ने कहा—"ये नाम कुछ भारी हैं मेरी जीभ तो लौटेगी नहीं, इसलिये बड़े को तो मैं 'बलुआ-बलुआ' कहकर पुकारा करूँगी और छोटे को 'कनुआ-कनुआ' कहकर। कहो रानी दोनों नाम ठीक हैं न ?"

यशोदा मैया बोलीं—"हाँ, ये नाम तो मुझे भी सीधे लगते हैं। 'कृष्ण कृष्ण' कैसा टेढ़ा नाम है तीन बार जीभ मोड़नी पड़ती है 'कनुआ' सीधा नाम है 'बलुआ' भी अच्छा है। आज से इन दोनों को 'कनुआ-बलुआ' के ही नाम से हम बुलाया करेंगी।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जिनको यज्ञों में बड़े आदर से बुलाते हैं, सस्वर वेद मन्त्रों से शुद्धता के साथ स्तुति करने पर भी जो नहीं आते, वे ही माता के 'कनुआ-बलुआ' इन शब्दों को सुनकर ललक उठते हैं।"

इस प्रकार नाम-करण संस्कार करके महामुनि गर्ग तो सूर्यास्त होने के अनन्तर चुपके-से अपना टाट कमण्डलु उठाकर मथुरा की ओर चल दिये और नन्द बाबा उनके चरणों में प्रणाम करके घर लौट आये। अब श्याम और बलराम गोकुल में

माताओं के समीप रहकर शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति बढ़ने लगे। अब वे गोदी को छोड़कर घुटुओं के बल रेंगने भी लगे।"

छप्पय

मैया पूछे घरयो नाम का मुनि छोरनिको।
जसुमति बोली नाम कृष्ण—बलराम ललनिको॥
भारी है कछु नाम कहें हम कनुआ—बलुआ।
उत्सव भयो न कछु पठाओ घर—घर हलुआ॥
हरि कनुआ—बलुआ बने, गोकुलमहँ बढ़िबे लगे।
कछुक दिवस महँ रेंगिकैं, घुटुअन बल चलिबे लगे॥

राम-श्याम की बाल-लीला

[८६७]

तावङ्घ्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपन्तौ,
घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु ।
तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकम्, -
मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरन्ति मात्रोः ॥*

(श्री भा० १० स्क० ८ अ० २२ श्लो०)

छप्पय

बन्दर बालक सरिस हाथ पाँइनि बल किरिरें ।
इत उत भोरे बने नन्द—आँगन महँ बिहरें ॥
घिसिरि-घिसिरके कबहुँ गोष्ठ में घुटुअनि जावें ।
गोशाला की कीच चलत निज तन लपटावें ॥
पग नूपुर कटि कर्धनी, चलिवे महँ रुनु-झुनु बजहिँ ।
शब्द सुनत इत उत लखत, हिय हुलसत किलकत भजहिँ ॥

संसार में बहुत-सी वस्तुएँ सुन्दर बताई हैं, उन सब सुन्दर

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! श्रीराम और श्याम दोनों अपने चरणों को घसीटते हुए गोशाला की कीच मे घिसिरते थे। चलते समय उनके नूपुरो तथा कर्धनी आदि के सुन्दर शब्द होते जाते थे। उस शब्द से वे अत्यन्त ही प्रसन्न होकर लोकवत् लीला का अनुसरण करते। कभी किसी के साथ चले जाते, फिर मुग्ध और भयभीत होकर माता के समीप लौट आते।"

वस्तुओं में अबोध शिशु की भोरी चितवन उसकी सरस, निश्चल, स्वाभाविक क्रीड़ा, उसकी उठन-बैठन, बोलन, चितवन सभी बाल चेष्टाएँ परम सुन्दर हैं। कौन ऐसा हृदय हीन होगा, जो भोरे बालक को देखकर प्रसन्न न होता हो। बालक चाहे जिसका हो वही बड़ा प्यारा लगता है। इसका एक कारण है जिस गभीरता और शील-संकोच को हम सर्वश्रेष्ठ समझकर गुम्म बने रहते हैं लोगों के सम्मुख खुलकर हँस नहीं सकते,इससे भीतर सम्मानित प्रतिष्ठित सर्वत्रपूजित बनने की हमारी वासना भरी हुई है। बालक को तो कोई वासना नहीं, वह तो सरल निश्छल है, जब चित्त चाहता है खिल खिलाकर हँस पड़ता है, जब चाहता है रो जाता है, क्षण भर में रोना बन्द करके हँसने लगता है। जिससे जो चाहे उचित अनुचित कह दे, उसके यहाँ उचित-अनुचित का भेद ही नहीं, इसीलिये सभी बच्चों के मुख से तोतली वाणी सुनकर हँस जाते हैं, उसकी किसी भी बात का बुरा नहीं मानते। वह जब चाहता है, स्त्रियों में दौड़ जाता है, जब चाहे पुरुषों में आ जाता है, उसके मन में स्त्री-पुरुष का भेदभाव नहीं जब चाहे नङ्गा हो जाता है, समाज के बन्धनों को उसने स्वीकार ही नहीं किया, इसलिये उस पर वे लागू भी नहीं। उसे न लज्जा है न संकोच है और न समाज के मानापमान का भय है। खेलना उसका व्यापार है, वह अपनी प्रकृति वालों के साथ खेलता है। जो उस पर बड़प्पन का प्रभाव जमाना चाहता है उसके पास वह फटकता भी नहीं। इसीलिये बड़े लोग बच्चों को खिलाते समय स्वयं बच्चे बन जाते हैं, उसके साथ वैसे ही बालकों की-सी बातें करने लगते हैं। बच्चे दाढ़ी वालों से बहुत डरते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि दाढ़ी मूँछ जितनी ही बड़ी होगी उतना ही इनमें अभिमान भरा होगा। जब उन्हें यह निश्चय हो जाय, कि दाढ़ी मूँछों में भी इसका बालकपन अभी स्थिर है, तो फिर बच्चे दाढ़ी को खिलौना

कर उससे खेलने लगते हैं। बच्चे सदा बिना दाढ़ी मूँछ वाले माताओं में रहते हैं, सहसा दाढ़ी को देखकर डर जाते हैं। नित्य देखते-देखते उनका भय दूर हो जाता है। बालक में छल छिद्र नहीं होता, इसीलिये वह सर्वप्रिय होता है। यदि भगवान ही बालक का वेष बनाकर विहरने लगें-क्रीड़ा करने लगें-तब तो पूछना ही क्या ? सोने में सुगन्धित हो जाती है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! कुछ काल के अनन्तर भगवान् पलकिया और माता की गोद को छोड़कर अपने पावन पदों से पृथ्वी को पवित्रतम बनाने लगे। उन्होंने पृथ्वी पर पदार्पण किया पृथ्वी ने देखा ये आये तो मेरा भार उतारने के लिये हैं और पड़े रहते हैं पलकिया पर। वहाँ क्षीरसागर में शेष शैया पर पड़े रहते थे यहाँ आकर पलकिया पर पड़ गये। अपने चरण कमलों से मुझे पावन तो बनाया ही नहीं। लेटते भी हैं तो माता की गोद में। जो माता की गोद में लेटा है उससे उसकी प्रिया को प्रसन्नता कैसे होगी। माता की गोदी को छोड़कर मेरे वक्षःस्थल पर अपने चरणों को रखें तब मेरे रोम-रोम खिलेंगे। अब तक तो भगवान् संकोच के कारण नेत्र बन्द किये रहते थे। भूख लगी तो माता के स्तनों को लिया, दूध पिया फिर सो गये। अब जब नेत्रों को खोलकर इधर-उधर देखने लगे तब सैनो-ही सैनों में भू देवी ने सकेत किया—"कब तक माता की गोद में ही विहार करते रहोगे, कुछ मेरी भी सुधि लोगे। पहिले तो मुझे सूअर बन कर पाताल से उठा लाये थे, अब देखते हुए भी आँखें बन्द किये हुए हो। यह कोई अच्छी बात है क्या ?"

भगवान् सोचा—"अरे भाई ! हम तो माता के स्नेह मे अपने वचन को भी भूल गये। अच्छा कोई बात नहीं। प्रातः का भूला सायंकाल तक घर लौट आवे तो वह भूला नहीं कहा जाता अब चलो माता की गोदी से उतरकर पृथ्वी को पावन बनावें।"

इसके वक्षःस्थल पर पाद प्रसार करके इसे प्रसन्नता प्रदान करें। यह सोचकर वे माता की गोद से बल पूर्वक उतरना चाहते थे किन्तु माता से अधिक बलवान् थोड़े ही हैं। माता इन्हें कसकर पकड़ लेती हैं, तब ये रोने लगते हैं। गोपियाँ बोलीं—"रानी! अब बच्चे को पृथ्वी पर चलने फिरने दे, सदा गोदी में चिपकाये रहेगी।"

मैया कहती—"यह बड़ा ऊधमी है कहीं इधर उधर चला जायगा तो चोट फेंट लग जायगा।"

गोपियाँ कहतीं—'चोट फेंट काहे को लगेगी, सब बच्चे चलते ही हैं, तुम देखती रहना।"

रोहिणीजी ने भी आग्रह किया, सबके कहने से नँदरानी ने खुली भूमि पर बच्चे को छोड़ दिया। पृथ्वी उद्धार की याद आ गई, अतः हाथ और पैर दोनों से ही चलने लगे। हाथों की हथेलियों को आगे टेककर घुटुना के बल अब वे बन्दर की भाँति शनैः-शनैः रेंगने लगे। यह देखकर सभी गोपियाँ ताली बजा बजाकर हँसने लगीं। माता पुकारतीं—"कनुआ!" तो आप मुड़कर माता की ओर देखने लगते। माता को बड़ी प्रसन्नता होती अब यह समझने लगा है। मानों पहिले ये कुछ समझते ही नहीं थे। आप रेंगते रेंगते आगे बढ़ जाते। पीछे से झट जाकर माता गोदी में उठा लेती और बार बार मुख चूमतीं। मेरा लाल चलने लगा। देखो कितनी दूर आ गया है। अब आप स्पष्ट स्वर में माँ भी कहने लगे। माता सिखाती—देख ये तेरे बाबा हैं, ये ताई हैं, ये बूआ हैं। किसी शब्द को तो आधा बोल लेते किसी का उच्चारण न कर सकने के कारण माता के मुख की ही ओर देखते रह जाते। गोपियों ने कहा—"देखो नँदरानी, लालजी को जितने आभूषण पहिनाओ सब बजते हों, आभूषणों के शब्दों से बच्चे को चलने में बड़ा उत्साह मिलता है।" माता ने तुरन्त हाथ और पैरों के

कठूलों मे छोटे-छोटे घुँघुरू डलवा दिये। कटि में जो किंकिणी पहिनायीं उसमें भी बजने वाले घुँघुरू पड़े थे। उन्हें पहिनकर श्याम राम जब चलते तो ऐसा लगता मानों—बालकृष्ण के रिंगण नृत्य पर श्रंग वाद्य बजा रहे हों, आभूषणों की ध्वनि सुनकर दोनों लाल चौंक पड़ते, वे निर्णय ही न कर सकते कि यह ध्वनि कहाँ से आ रही है। चलते-चलते नूपुरों की सुमधुर ध्वनि सुनकर किलकारियाँ मारने लगते। अब तो द्वार तक जाने लगे। एक दिन वे खिसकते खिसकते द्वार की देहली से नीचे आ गये। कोई ब्रह्मज्ञानी वृद्ध महात्मा उधर से जा रहे थे। वे व्रज में आये तो भगवान् के दर्शनों को ही थे, किन्तु उन्हे दर्शनों का सौभाग्य अभी तक प्राप्त नहीं हुआ था। लालजी ने सफेद दाढी दूर से देखी, तो समझे बाबा हैं। आप शीघ्रता से पैरों को घसीटते हुए, नन्हें-नन्हें नूपुरों को बजाते हुए उनके पीछे पीछे चले। इससे यह सिद्ध किया कि मुझे खोजने की इच्छा से जो किसी प्रकार व्रज में आ जाता है, उसके मैं चुपके से पीछे लग जाता हूँ। कुछ दूर व्रज की उस परम पावन वीथी की रज में अपने अंगों को घसीटते हुए चले। उन दिव्य नूपुरों की सुमधुर ध्वनि सुनकर सन्त ने पीछे फिर कर देखा। देखते ही वे समझ गये, ये ही साकार ब्रह्म हैं, वेद प्रतिपादित परब्रह्म ने ही यह बालक का रूप बनाया है, वे ठिठक गये और चन्द्रमुख पर बिथुरी हुई छोटी-छोटी घुँघराली लटों मे अपने मन को खो बैठे।

बालकृष्ण ने देखा—"ये तो मेरे बाबा नहीं हैं। तो वहाँ से डरकर भयभीत होकर भागे। चरण कहीं पड रहे हैं कर कहीं। काँप रहे हैं, वे छिपने के उपक्रम में अधीर हो रहे थे। 'भक्त को देखकर भगवान् भागे क्यों जी ?'" अजी! भगवान् दो ही काम तो जानते हैं, भागना और छिपाना। छिपने मे इन्हें बडा आनंद आता है, इसीलिये सदा छिपे रहते हैं। किसी के सम्मुख प्रकट

भी होते हैं, फिर छिप जाते हैं। रुलाकर भाग जाते हैं, रुलाने में इन्हें बडा रस आता है। लडखडाते पैरों से द्वार पर चले किन्तु देहली को लाँघ न सके। वहीं खडे खडे रोने लगे। देहली को लाँघने के लिये सहायता की प्रार्थना करने लगे। तब वे ब्रह्मज्ञानी महात्मा हँस पडे और सोचने लगे—"देखो, आज ब्रह्म को भी सहायता की आवश्यकता पड रही है, जिनके नाम से इतने बडे अगाध ससार सागर को लोग बात की बात में लाँघ जाते हैं, वही आज देहली लाँघने के लिये रो रहा है, माता की प्रार्थना कर रहा है। इतने में ही मैया दौडकर द्वार पर आ जाती हैं, लाल के हाथ पेरों को काँपते देखकर तुरन्त बच्चे को गोदी मे उठा लेती हैं, मुख चूमती हैं और उसी समय बढई को बुलाकर द्वार की चौखट निकलवा देती हैं, बच्चों को सरकने में, लाँघने मे कष्ट न हो। भगवान् ने वात्सल्य की कैसी सरस धारा नन्द भवन मे बहा रखी है। अब आप सरकते-सरकते गोष्ठ में भी एक दिन पहुँच गये। वहाँ गौओ के मूत्र की बहुत-सी कीच हो रही थी, उसमें आप जाकर लोटने लगे। हाथ से कीच को थप थपाने लगे, इधर-उधर उछालने लगे कीच में लोटने मे बडा आनन्द आ रहा था। इतने मे ही मैया पहुँच गयीं। दौडकर कहने लगीं—"कनुआ! तू तो बडा भारी उपद्रवी है, सब कपडे कीच मे सान लिये मैंने कितने परिश्रम से तो तैल उबटन लगा- तुझे स्नान कराया था। नयी झगुलिया पहिनायी थी, मोटा मोटा काजल लगाया था। लटूरियाओं को तेल डालकर सम्हाल कर काढकर सुन्दर बनाया था। तैंने मेरा सब परिश्रम मिट्टी में मिला दिया। सब गुड गोबर कर दिया। यह कहकर माँ बडे स्नेह से लालजी को उठा लायीं और घर आकर पुनः स्नान कराया, वस्त्र बदले और बडे सावधानी से लाल की देख देख को बैठ गयीं, किन्तु कब तक ऐसी बैठी रहतीं, घर का काम धन्धा

भी तो देखना था। लल्ला का अन्न प्रासन संस्कार भी हो गया है। छ महीने के अधिक से लालजी हो गये हैं। अन्न प्रासन के दिन माता ने बड़ा भारी उत्सव मनाया था। व्रज भर के गोप गोपिकाओं को निमंत्रण दिया था। षड्रस भोजन बनाकर सबको तृप्त करके लालजी के मुख में सब वस्तुएँ छुआयी थीं खीर चटायी थी। अब लालजी खीर चाटने लगे हैं, मिट्टी पूड़ी रोटी को भी मुख में देने से निगल जाते हैं। साग मुख में देते हैं तो थूक देते हैं, मिश्री को चाटने लगते हैं। मक्खन के लोंदा को लेकर मुख में पोत लेते हैं, भूमि को मक्खन से लेप देते हैं। माता अब बड़े प्रेम से लालजी के लिये विविध प्रकार की वस्तुएँ बनाती हैं, जहाँ माता की तनिक भी आँख बची कि आप, खिसकते हुए गोष्ठ में पहुँच जाते हैं और गो मूत्र तथा गोबर के कीच में लोट जाते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार भगवान् प्राकृत बालकों की सी लीला करके नन्द यशोदा तथा अन्य गोपी गोपों को सुख देने लगे।"

छप्पय

समुझि नन्द लखि वृद्ध सङ्ग ताके लग जावें।
जब मुरि देखे पुरुष मातु के ढिँक भगि आवें॥
अम्मा बब्बा मधुर तोतली बोली बोलें।
गोबर अरु गो-मूत्र पङ्कमहँ विहरत डोलें॥
जब देखो तब गोष्ठ महँ, चपलता अद्भुत करें
गौअनि के पैरनि परें, मैया अति मन महँ डरें

—○—

पङ्काङ्गरागानुलिप्त राम-श्याम

[८६८]

तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्नुवन्त्यौ,
पङ्काङ्गरागरुचिरावुपगुह्य दोर्भ्याम् ।
दत्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य,
मुग्धस्मिताल्पदशनं ययतुः प्रमोदम् ॥*

(श्री भा० १० स्क० ८ अ० २३ श्लोक)

छप्पय

करि उबटन अन्हवाइ मातु झँगुरी पहिनावें ।
गोरोचन को तिलक डिठौना भाल लगावें ॥
इत उत दीठि बचाइ गोष्ठमहँ लाला जावें ।
बछरा, गोबर, घास कीचतें दुन्द मचावें ।
मातु उठावत हरि तुरत, पुनि पुनि चूँमति मधुर मुख ।
छातीतें चिपटाइकें, हिय महँ पावें परम सुख ॥

चचलता करते हुए बच्चों को जो स्नेहभरित हृदय से वरजते हैं और उनके भोरेपन पर रीझकर वार-वार मुख चूमते हैं, वे माता पिता कितने बडभागी हैं । बालकों की प्रत्येक लीला में सुख

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं "राजन ! माताएं कीचड में खेलते अपने बालकों को क्रीडा करते देखकर स्नेह के वशीभूत हो जाती, उनके स्तनों में दूध भर आता और वे पङ्क रूपी अङ्गराग से अनुलिप्त होने के कारण रुचिर प्रतीत होने वाले अपने बालकों को दोनों हाथों से उठाकर गोदी में लेकर हृदय से चिपटा लेतीं, फिर दुग्ध पान करातीं । दूध पीते समय उनकी मधुर मधुर मुस्कान तथा नन्ही नन्ही दन्तावली से युक्त उनके मुख कमल को निहार कर अत्यन्त ही आनन्द में निमग्न हो जातीं ।"

है, सरसता है, सरलता है। भोलापन है, आकर्षण है। बालक जो करते हैं, सहज स्वभाव से करते हैं, वे जो भी करें उसी में एक प्रकार का अद्भुत सुख होता है। उनकी प्रत्येक चेष्टा में विनोद है, सहृदय माताओं का हृदय बालकों की चंचलता से खिल उठता है, जो बालक जितना ही अधिक चंचल होगा, उतना ही अधिक अपनी चचलता से माता-पिता को सुख पहुँचावेगा। चचलता ही तो बालकपन की शोभा है। यही तो बालकों का स्वरूप है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! बलदाऊ के सहित श्याम सुन्दर ने अपने बाल्यकाल की चचलतापूर्ण क्रीडाओं से ब्रजवासियों को जो सुख दिया, वह अन्य किसी भी बड़े से बडे लोक मे दुर्लभ है। उन क्रीडाओं ने उसी समय ब्रजवासियों को सुखी नहीं किया, अब भी जो उनका स्मरण करते हैं, वे सुखी होते हैं और आगे भी अनन्त काल पर्यन्त उन चरित्रों को स्मरण कर-करके सुख का अनुभव करते रहेंगे। श्रीकृष्ण की बाल लीलाएँ ही तो वात्सल्य रस के उपासकों के जीवन का आधार हैं वात्सल्य भाव में भावित भावुक भक्त उन्हीं के स्मरण से तो निर्भय होकर इस भवसागर को बात की बात में तर जाते हैं। और अनन्त कालपर्यन्त उस सुख का अनुभव करते रहते हैं।

श्याम और बलराम ने अब गौशाला देख ली, उन्होंने निधि पा ली। जब भी उन्हें दाँव मिलता तुरन्त खिसकते हुए किढरते गौशाला में आ जाते, हाथ पैरों से बछड़ों की भाँति चल-चलकर गौओं के नीचे चले जाते,मानों ये भी छोटे बछरे हैं। गौएँ सूँघतीं और अपने स्वामी को पहिचानकर प्रमुदित होतीं घर में लालजी को न पाकर माता दौडी आतीं। गौओं के नीचे लालजी को देखकर वे कहतीं—"हाय! यह कनुआ बडा चञ्चल है, बलुआ बेटा तो सीधा सादा है। यह कनुआ ही बड़ा ऊधमी है। गौ के

नीचे बैठा है, गौ लात मार दे, खुर रख दे या सींग ही चला दे तो क्या हो जाय। इसे तनिक डर भी नहीं लगता। मरखनी गौएँ हैं। पशुओं को क्या पता यह कौन है ? यह कहकर कीच मे सने श्याम को माता उठा लेतीं और उनके गालो पर प्यार की थपकियाँ देती हुई कहती—"कनुआ! तू बडा ऊधम मचाने लगा है, गोद मे लेती हूँ, तो गोद मे नहीं रहता। छोडती हूँ तो, तू दुन्द मचाता है, बडा नटखट है तू ? तनिक आँखों से ओमल हुआ कि तू यहाँ दौड आता है तुझे डर नहीं। पशुओं से खेला जाता है ?' श्यामसुन्दर माता की ऐसी बातें सुनकर भोरेपन से माता की ओर देखने लगते और उसकी नथ को पकड लेते। कठ के हार को खींचने लगते। मानों कह रहे हों—"अम्मा ? मैं तो पशुपालक हूँ न ? गोपाल को गौएँ पहिचानती हैं। मैं तो उनके कठ का हार हूँ मेरे हाथ में तो उनकी नाथ है मैं उनका नाथ हूँ। जैसे तेरी नाक में यह नथ है वैसे ही मैं भी उनकी नाक की नकेल हूँ, मेरे सकेत से वे सब काम करती हैं।"

माता बालक की क्रीडा देखकर हँस जातीं अपने स्तनों से चूते हुए दूध को पिलातीं। पुनः न्हिला धुलाकर दूसरे वस्त्र पहिनातीं। दिन भर दोनों माताएँ बालकों की रेख देख में सदा लगी रहतीं। एक दिन मैया यशोदा न श्यामसुन्दर को सुन्दर उबटन लगाकर गरम जल से अत्यन्त ही मनोयोग के साथ स्नान कराया स्नान कराके शरीर को सुन्दर स्वच्छ वस्त्र से पोंछा। उस समय श्याम का सुचिक्कण परम कोमल सुन्दर शरीर नवनीत की नील मणि के सदृश अत्यन्त ही सुहावना लग रहा था। उस स्निग्ध श्रीअग के स्पर्श मात्र स माता क अगों में वात्सल्य के कारण रोमाञ्च हो रहे थे, वे लालजी की रूप माधुरी का पान करते-करते अघाती ही नहीं थीं। अत्यन्त सुन्दर पीतवर्ण के रेशमी वस्त्र पहिनाये। आँखो में मोटा मोटा काजल लगाया, तिलक

दिठौना से भाल को सजाया। कारी-कारी प्यारी सटकारी लालजी की लटों को इतर फुलेल से स्निग्ध करके उन्हें काढ़कर सुन्दर किया। फिर उनकी शोभा को निहारने लगीं। माता का मन भरता ही नहीं था। चाहती थीं लाल को आँखों में बिठा लूँ, हृदय की कोठरी मे छिपा लूँ।

अब लालजी माता की गोदी में न रह सके। शृङ्गार हो गया, पेट भर के दूध पी लिया, अब माता की गोद में क्या काम ? स्वार्थी ही जो ठहरे, जिससे अपना स्वार्थ नहीं उनकी ओर देखने भी नहीं बात भी नहीं करते। अपना प्रयोजन होता है, तो बलपूर्वक गोदी- में चढ़ जाते हैं। माता ने देखा बच्चा खेलने के लिये तुरा रहा है, उन्होंने लालजी को भूमि पर छोड़ दिया। अब तो ये पजों और घुटनों के बल दौड़ने भी लगे हैं। इधर से उधर आँगन में घूमने लगे। माता ने झँगरी को समेटकर पीठ के पीछे एक गाँठ बाँध दी। जिससे वस्त्र मैला न हो, अग में धूलि न लगे, किन्तु ये तो धूलि को ही अपना सर्वस्व समझते थे। बड़े आनन्द के साथ धूलि में खेलने लगे। इतने में ही कोई गोपी किसी काम से आ गयी, माता उससे बातें करने लगीं कुछ वस्तु देने भीतर गयीं, त्यों ही लालजी द्वार से निकलकर गोष्ठ में पहुँच गये। वहाँ गोमूत्र का गड्ढा था, उसमें कीच भर रही थी, आपने समझा यह क्षीरसागर है, तुरन्त उसमे घुस गये और इधर से उधर लोटने लगे उस पावन पङ्क मे विहार करने में विहारी को बड़ा आनन्द आ रहा था। रेशमी वस्त्र कीच मे सन गये, सम्पूर्ण अङ्ग कीच में सन गया, और वे दोनो हाथो से कीच को फटफटा रहे थे और छोटे छोटे नन्हे नन्हे दाँतो को निकालकर हँस रहे थे। कीच में हाथ फटफटाने से छोटी-छोटी कीच की बिन्दुएँ कपोलों पर पड रहीं थीं, वे ऐसी लगतीं थीं मानों-चन्द्र के ऊपर नीलमणि का चूर्ण बिखरा हुआ हो। इतने मे ही मैया

मीरत से बाहर आयीं। उनका शरीर भीतर अवश्य चला गया था किन्तु मन तो उनमें ही निरन्तर अटका था। आते ही उन्होंने आँगनमें चारों ओर देखा लालजी का पता ही नहीं। वे समझ गयीं ऊधमी आँख बचाकर गोष्ठ में चला गयाहै। वे दौडी दौडी खिरक मे आयीं वहाँ देखती हैं लालजी कीच में लेट रहे हैं और हँस रहे हैं माता यह देखकर अपनी हँसी न रोक सकीं। बनावटी क्रोध प्रदर्शित करती हुई बोलीं—"कनुआ! तू बडा उधमी हो गया है। देख मैंने कितने प्रेम से तुझे न्हिलाया था, फिर सब शरीर कीच मे सान लिया। मुझे ऐसा लगता है तू पहिले जन्म मे सूअर रहा होगा, इसीलिये तेरी कीच में लोटने की टेंव नही गयी।

माता को सूअर कहते देखकर श्यामसुन्दर चकित-चकित दृष्टि से जननी की ओर निहारने लगे। माता ने कीच मे सने हुए लाल को उठाया। अपने अचल से मुख पोंछा। फिर जाकर वस्त्र बदले अग से कीच धोयी और दूध पिलाकर सुलाने लगी। वेद जिनकी अनेक प्रकार से भाँति-भाँति की उपमाओं द्वारा स्तुति करते हैं माता उनको 'सूअर' कहकर पुकारती हैं इस गाली से जितने वे प्रसन्न होते हैं,उतने वेदों की स्तुति से प्रसन्न नहीं होते।

एक दिन आप गौओं के जल पीने की नाद मे चढ गये और गौओं के जूठे जल मे घुसकर उसे उलीचने लगे। माता ने अपने लाल की करतूत को देखा और बोलीं—"कनुआ तू अवश्य ही पूर्व जन्म मे या तो कच्छ होगा या मच्छ, तभी तुझे जल विहार इतना प्रिय है, सब कपडे भिगो लिये। चल तो सही अब तुझे बाँधकर रखूँगी। यह कहकर माता लालजी को ले गयीं।

एक दिन अपने सब मुख मे धूलि लपेटकर घुटुओं से दौड़ रहे थे, माता ने जाकर पकड़ा तो माता की ओर खुरं खुरं करने लगे। *माता ने कहा—तू तो सिंह की भाँति दहाडता है, तू* ही पूर्व जन्म मे सिंह रहा होगा।" कभी किसी गोपी

वस्तु देखते तो उसे ही माँगने लगते । तब माता कहती—"हाय! दारी के ! अभी से तू भीख माँगने लगा । अहीर गोप कहीं भीख माँगा करते हैं, अवश्य ही तू किसी जन्म में वामन रहा होगा । एक दिन माता के साग बनाने के हँसिया को लेकर समीप में रखी हुई मूलियों को काटने लगे । तब माता बोलीं—"अरे, कनुआ-कनुआ, क्या कर रहा है, अभी से काटना-पीटना सीख लिया । मालूम होता है पूर्व जन्म में कोई निर्दयी काटने वाला ब्राह्मण रहा होगा । कभी गोपों के बाणों को उठाकर फेंकते उन्हें मुख में दबाते, उन पर हाथ फेरते । तब माता कहतीं—"बिना बताये ही तू बाणों को फेंकने लगा, अवश्य ही तू पूर्व जन्म में मृगया प्रेमी कोई क्षत्रिय रहा होगा । इस प्रकार लालजी जो भी करते माता उसी पर कुछ न कुछ अनुमान लगाकर कह देतीं । लालजी अब कुछ बोलने भी लगे, जिस वस्तु को पाते उसे ही मुख में ले लेते । माता कहतीं—"तू तो सर्वभक्षी है रे । न जाने तेरे पेट में क्या-क्या भरा है, भला धनुष बाण पत्थर के बटखरे हँसिया ये वस्तुएँ खाने की हैं क्या ? तेरे जो हाथ पड़ता है मुख में ही ले जाता है ।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार माताओं को घुटुअन चलकर सुख देते हुए श्याम और बलराम कुछ दिन ब्रज में विहार करते रहे । अब वे पैरों से चलने का प्रयत्न करने लगे ।"

छप्पय

चंचलता कूँ निरखि मातु खीजें हरषावें ।
कच्छ मच्छ बाराह कबहुँ बटु विप्र बतावें ॥
पाँ पाँ पैरोंं चलें खाइँ अब माखन रोटी ।
करें मातु तें रारि रोष महँ पकरें चोटी ॥
मधुर मधुर बतियाँ करें, ब्रजवासिनि के मन हरें ।
रसिया गावें नाचि कें, नित नूतन लीला करें ॥

गोवत्सविहारी राम-श्याम

[८६६]

यह्यङ्गनादर्शनीयकुमारलीला—
वन्तर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः ।
वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ
प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहा जहृषुर्हसन्त्यः ॥*
(श्री भा० १० स्क० ८ अ० २४ श्लोक)

छप्पय

बछरनि की गहि पूँछ लटकिके इत उत जावें ।
गैया मैया मैंसि चमरिया कहि कहि गावें ॥
पकरैं गैयनि सींग कूदकि ऊपर चढ़ि जावें ।
ता ता थैया करें लुगाइनि नाच दिखावें ॥
कण्ठ मधुर स्वर मन हरन, बाल सुलभ कूजत कलित ।
होहिँ मुदित मन मातु अरु, गोपी लखि लीला ललित ॥

जिस जाति के बालक होते हैं, उसी जाति के प्रायः खेल खेलते हैं। माता पिता अबोध बालकों को लिए हुए उचित

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! जब राम श्याम कुछ बड़े हुए तब ब्रजांगनाओं के लिये दर्शनीय कुमार लीलायें को करने लगे। बछड़ों की पूँछ पकड़कर लटकने लगे, बछड़े उन्हें इधर से उधर खींचने लगें। उस समय गोपियाँ अपने-अपने घरों से बाहर निकल आतीं और हँसती हुई आनन्द में विभोर हो जाती।"

अनुचित अनेक प्रकार की बातें करते हैं। वे सोचते हैं—"बचा तो कुछ समझता नहीं, किन्तु यह भ्रममात्र है। बच्चा सब कुछ समझता है माता-पिता जो करते हैं. उनके संस्कार चल चित्रों की भाँति उसके हृदय-पटल पर अङ्कित होते जाते हैं, जब वह बोलने लगता है, तब उन सब भावों को खेल में अनजान में व्यक्त करता है, बड़ा होने पर उनका अर्थ समझता है। गाँवों में छोटे छोटे बच्चों को खेलते देखते हैं। अबोध लड़की लड़के साथ खेलते हैं मिट्टी का खेत बनाते हैं, बालू का घर बनाते हैं, चूल्हा, चौका, चक्की, बर्तन सभी वस्तुएँ गीली चिकनी मिट्टी की बनाते हैं, बैल, ऊँट, घोड़े, भी उसी चिकनी मिट्टी के बना लेते हैं। एक लड़की घूँघट मारकर बहू बन जाती है, मिट्टी की रोटी पोती है एक बालक दुलहा बन जाता है। खेत से हर लेकर आता है घर में रोटी तैयार न होने पर बहू से डाँटकर कहता है, रोटी क्यों नहीं बनायी। इस पर उसे मारता है। ये बातें उसने घर में ही सीखीं किसी ने सिखायीं नहीं बहू बनने वाली चाहे अपनी बहिन ही हो, बालकों को पता ही नहीं होता है, बहू क्या दुलहा क्या किन्तु जो देखते हैं उसका चित्र अपने आप खिंच जाता है उसे ही प्रकट करते हैं। बनियों के बच्चे दुकानदारी के खेल खेलते हैं। क्षत्रियों के लड़के राजाओं के से खेल खेलते हैं। गोपों के लड़के गौओं के खेल खेलते हैं। सामने जो होगा उसी से खेला जायगा। यह संसार भी एक क्रीड़ा-स्थली है ज्ञानी भी इसमें खेलता है और स्वयं भगवान् भी बालक बनकर खेलते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! श्रीकृष्ण की बाललीला अति ही मधुर और अनुराग राग से रञ्जित है इसका वर्णन कौन कर सकता है। श्रीकृष्ण घुटुअन चलते विविध भाँति की लीला करके ब्रजवासियों को परम आनंदित करने लगे। अब माता लालजी की

उँगली पकड़कर चरणों के बल चलना सिखाने लगीं। चरणों में बजते नूपुर रुनुझुनु शब्द करते हैं माता उनके हाथों को पकड़ कर कहती हैं—'देखो ? अब हमारे लालजी चलने लगे—"पाँ-पाँ पैयाँ, पाँ पाँ पैया। गुरुजी की डरियाँ, गुरु की डरिया। भगि जा हौआ भागि जा हौआ। कनुआ-चलुआ--कनुआ-चलुआ।" ऐसे कहकर दोनों को चलाती हैं। बलदेवजी बड़े हो गये हैं, अतः उँगली के सहारे ही चले जाते हैं आगे निकल जाते हैं। ये ठहरे छोटे, छोटे आगे कैसे बढ़ सकते हैं। बड़े आगे बढ़ने ही नहीं देते। इस पर श्याम रो पड़ते हैं। झट माता गोदी में उठाकर घनश्याम को आगे कर देती हैं और ताली बजाकर कहती हैं—"कनुआ आगे निकल गया, मेरा कनुआ बढ़ गया।" तब आप प्रसन्न हो जाते हैं। चार डग चलते हैं, फिर डगमगा कर गिर जाते हैं। माता कहती हैं—"अरे चींटी मर गयी।" तब आप रोना भूलकर मैया से पूछने लगते हैं—"मैया! कहा चींटी मरी।" फिर माँ गोद मे उठा लेती हैं। अब आपको चलने में बड़ा आनन्द आता है। कोई गोपी उँगली नहीं पकड़ती तो आप भीत पकड़कर ही खड़े हो जाते हैं। तब माँ गोद में भरकर कहती हैं—"अरे! कनुआ तो खड़ा हो गया। चल भैया! मुझे छू तो ले।"

तब आप माँ को छूने दौड़ते हैं, बीच मे ही लड़खड़ाकर गिरने लगते हैं, तो माता दौड़कर गोदी में उठा लेती हैं। मुख चूमती हैं और कहती हैं—"दूध पी ले तू पेट भर के। तब तू झट चलने लगेगा।" आप कहते हैं—'माँ! बहुत-सा दूध पीऊँगा।" तब माँ मिश्री पड़ा दूध पिलाती हैं। आप फिर डग-मग-डगमग करते हुए चलते हैं। गोपियाँ ताली बजाती हैं।

अरुणोदय के समय मैया उन्हें शैया पर ही छोड़कर दधि मथने लगती हैं। आँख खुलते ही वे शैया पर मैया को ढूँढ़ते हैं।

दधि मन्थन की घर्र मर्र घर्र मर्र की ध्वनि सुनकर अपने आप पाटी पकडकर शेया से नीचे उतर आते हैं और पीछे से मैया से लिपट जाते हैं। रोते रोते कहते हैं—"मुझे भूख लगी है।"

मैया कहती हैं—"अरे! दारीके, अभी मुँह तो धो ले। दिन तो निकलने दे।" परन्तु आपके लिये तो कभी रात्रि है ही नहीं। अँधेरे का नाम नहीं, नित्य प्रकाश है, मुँह तो वह धोवे जो अशुचि हो। नित्य शुचि के लिये बाह्य शौच की क्या आवश्यता वे अड जाते हैं। माता माखन की एक छोटी सी गोली बनाकर हाथपर रख देती हैं। झट उसे मुख में डालकर फिर माँगने लगते हैं। माँ छींके से एक पूडी उतार लेती हैं, उसके ऊपर टटक-मक्खन ल्हेस देती हैं, ऊपर से तनिक-सा नमक बुरक देती हैं। श्यामसुन्दर सूग्गे की तरह छोटे छोटे दाँतों से पूडी को कतर कतरकर खाते हैं। खाकर फिर माँ की गोदी में सो जाते हैं। दही बिलोकर माँ उठती हैं। शौचादि से निवृत्त कराकर पुनः पाँ पाँ पैया चलाती हैं। अब आप बिना किसी की सहायता के बलदेव जी के सहित गोष्ठ में भी चले जाते हैं। वहाँ बछड़ों से खेलते हैं। एक दिन बलदेवजी ने एक बछडे की पूँछ पकडी। लडकों का स्वभाव होता है, एक को कोई काम करते देखकर दूसरा उससे होड लगाता है। जब बलदाऊजी ने पूँछ पकडी है, तो मैं उनसे पीछे क्यों रहूँ। श्याम ने भी एक बछडे की पूँछ पकडी। वह बछडा श्याम की ही भाँति चञ्चल था, पूँछ पकडते ही उसने कुलाँच मारी उछलकर वह इधर से उधर दौड़ने लगा। श्याम भोरे ही जो ठहरे। डर गये, कसकर पूँछ पकड ली, अब वह इन्हें लिये हुए इधर से उधर दौडने लगा, ये बन्दर के बच्चे की भाँति पूँछ में चिपट गये। गोपियाँ यह देखकर झुण्ड की झुण्ड इकट्ठी हो गयीं और ताली बजाकर हँसने लगीं। इतने में ही रोहिणी मैया आ गयीं, उन्होंने तुरन्त श्याम को गोद में लेकर

कहा—"हाय! कनुआ! तू बड़ा दगगली हो गया है। गाय के बच्चों की पूँछ से लटकते हैं ?" आप खिल खिलाकर हँस पड़े। बलदाऊ जी से बोले—"दादा! तू भी अपने बछड़े को चला ?" बलदाऊ जी ने जो चलाया, तो धम्म से गिर पड़े। बलदेव जी रोने लगे और श्याम मैया की गोद में हँसने लगे। तुरन्त यशोदा मैया ने दौड़कर बलदेव जी को उठा लिया और शरीर पोंछकर कहने लगीं—"बलुआ! तू इस कनुआ की बातों मे मत आया करे। यह तो बड़ा धूर्त है ? तेरे चोट लग गयी। लो मैं कनुआ को मारती हूँ। यह कहकर माता ने एक हाथ श्याम के श्रीअंग के पास रखा दूसरे हाथ से अपने ही हाथ मे चट्ट से मार दिया। यह देखकर बलदेवजी हँसने लगे। मैया कहने लगीं—"मेरा बलुआ राजा बेटा है। कनुआ राजा नहीं है।" यह सुनकर श्यामसुन्दर रोहिणीजी की गोद से ही कहने लगे—"हम भी लाजा हैं।"

रोहिणीजी ने कहा—"हाँ, बेटा ? तू भी राजा है।"

श्यामसुन्दर के लिये अब बछड़ों की पूँछ पकड़कर लटक जाना एक बड़ा सुन्दर खेल हो गया। जब भी गोष्ठ में आते बछड़ों की पूँछ पकड़कर लटक जाते। कभी-कभी कई बछड़ों की पूँछ एक साथ पकड़ते। उनमें से जो बलवान् बछड़ा होता वह पूँछ निकाल कर भाग जाता एक पूँछ निकलने से हाथ ढील पड़ जाता, श्यामसुन्दर कीच मे गिर पड़ते रोने लगते। गोप आकर उठाते, गोपियाँ कहतीं—"देख, देख फुर्र से चिड़िया उड़ गयी।"

श्यामसुन्दर रोना भूलकर चिड़िया को देखने लगते। तब गोपियाँ गोद में लेकर उन्हें घर कर आतीं।"

कुछ गौओं को यशोदा मैया स्वयं दुहतीं। पद्म गन्धा श्यामा गौओं के दूध को पृथक् दुहकर मैया गरम करतीं। इसके मक्खन से मेरा कनुआ मोटा होगा। मैया जब दूध दुहने जातीं तो राम-

श्याम भी हाथ में छोटी-छोटी लुटिया लेकर जाते और कहते—"माँ हमको भी दूध दुह दे।" माँ उनकी छोटी-सी लुटियाओं को गौओं के थनों की धार से भर देतीं। उस दूध को लाकर स्वयं गरम करते। तनिक गुनगुना हुआ कि झट पी जाते। कभी कभी अपनी लुटिया ले जाकर बछड़ों को दुहने लगते, बछड़े फुदकते भागते तब पूछते—"मैया, हमें यह दूध क्यों नहीं दुहने देते? तू तो इतना दुह लेती है।"

मैया कहतीं—"बेटा! बछड़े दूध नहीं देते गैयाँ ही दूध देती हैं।"

श्याम पूछते—"मैया! बछड़े दूध क्यों नहीं देते ?"

मैया कहतीं—भैया! बछड़ों की मैया है, जैसे तू मेरा दूध पीता है, वैसे ही बछड़े भी अपनी मैयाओं का दूध पीते हैं। वे पीने वाले हैं, देने वाली तो गैयाँ हैं।"

कभी-कभी आप दो बछड़ों की जोट बनाकर एक छबरे में रस्सी बाँधकर उनके गले में बाँध देते और छबरे में बैठकर उन्हें तिक-तिक करके हाँकते और कहते—"हलो, गाली आयी गाली आयी।"

कभी बछड़ों के गले में बाहुएँ डालकर लटक जाते, कभी किसी बछड़े पर चढ जाते, बछड़ा कूद फाँद करता तो आप बिल्ली के बच्चे की भाँति उससे चिपट जाते। कभी बछड़ों को इधर से उधर दौड़ाते और स्वयं भी उनके पीछे-पीछे दौड़ते' कभी बछड़ों को घर से रोटी लाकर खिलाते, न खाते तो उनके मुख में ठूँसते। कभी मट्ठा को बाँस की नलकी में भरकर बछड़ों को पिलाते, बछड़े इनके शरीर पर मट्ठे को उगल देते, तब आप दौड़कर घर जाते, कपड़े बदलने को माता से कहते। कभी छोटी छोटी घास उखाड़ कर बछड़ों के मुख में देते। कभी बँधे बछड़ों को खोल देते, वे जाकर गौओं को पीने लगते। फिर उन्हें खींचते दूध पीने

से हटाते, किन्तु माता का दूध पीते हुए बच्चे सरलता से नहीं हटते, ये कितना भी खींचते, तो भी बछड़े नहीं हटते, तब रोने लगते। गोप आकर बछड़ों को बाँधते, कभी गौओं के सींग पकड़-कर हिलाते। बछड़ों की पूँछ को गौओं की पूँछ में बाँध देते, फिर बछड़े के फुदुकने पर ताली बजा बजाकर हँसते। कभी हरी हरी
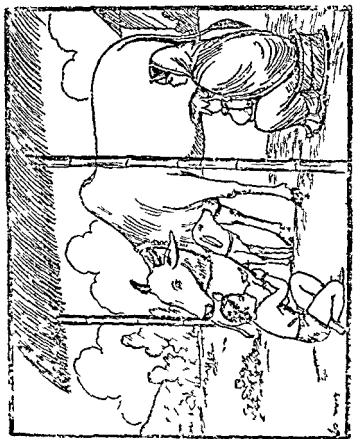
कोमल कोमल घास उखाड़कर बछड़ों को खिलाते वे न खाते और गाएँ मुख करतीं तो उनके ही मुख में दे देते।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार श्रीश्याम और राम गोष्ठ में जाकर गौओं और बछड़ों से भाँति भाँति की क्रीड़ाएँ करने लगे। उनकी इन बाल लीलाओं का जो प्रेम पूर्वक स्मरण करेगा, उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जायगा और वह प्रभु-प्रेम प्राप्त कर सकेगा।"

छप्पय

कबहुँ साँड़के सींग पकरिकें तिनितें खेलें।
कबहुँ पकरें श्वान सर्प तिनि मुखकर मेलें॥
कबहुँ ताता करें आगिकूँ पकरन जावें।
कबहुँ बन्दर मोर खगनिकूँ पकरि नचावें॥
कबहुँ शस्त्रागारमहँ, असिपै हाथ फिराइकें।
किलकैं होवें मगन अति, वस्तु अनोखी पाइकें॥

बाल विनोदिनी लीलाएँ

[८७०]

शृङ्गयग्निदंष्ट्रयसिजलद्विजकण्टकेभ्यः
क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धुम् ।
गृह्याणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ,
शेकात आपतुरलं मनसोऽनवस्थाम् ॥*
(श्री भा० १० स्क० ८ अ० २५ श्लो०)

छप्पय

कबहूँ खेलन चन्द्र मातुतैं पुनि पुनि मागें।
कबहूँ पीकें दूध गोदतैं झपट भागें॥
कबहूँ जलमहँ घुसैं भिगोवें तन पट सगरे।
कबहूँ पच्छिनि पकरि करें गोपिनितें झगरे।
कबहूँ द्विजकूँ देखिकें, करि प्रणाम भगि जात हैं।
कबहुँ परसी खीरकूँ, चाटि चाटिके खात हैं॥

संसार में जो पैदा हुआ है, वह कभी बालक भी रहा होगा। हम सब लोग जो अपने को किशोर युवक अधेड या वृद्ध कहते

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! दोनों मैयाओं का चित्त बड़ा उद्विग्न हो जाता और वे घर के धंधों का भी नहीं कर सकती थीं। कारण कि वे अत्यन्त चपल बच्चों को सींग वाले पशु से, अग्नि से, दाँतों से काटने वाले पशुओं से, तलवार से, जल से, पक्षी-ब्राह्मण और काँटों से तथा काँटों से बचाने में ही लगी रहती।"

हैं, सभी एक न एक दिन बालक रहे होंगे। आज हम बालकों की बातों पर उपेक्षा के स्वर में कह देते हैं—'अरे, ये तो बच्चे हैं, ये लडके बडे उपद्रवी होते हैं, ये तो लडकपन की बातें हैं। किन्तु इस बात को हम भूल जाते हैं कि कभी हमने भी लडकपन किया होगा कभी हमें भी बडों ने डाँटा होगा, कभी हमारे भी कान गरम हुये होंगे, कभी हमें भी मुरगा बनना पडा होगा। हमें भी डाँट फटकार सुननी पडी होगी। मनुष्य अपनी पिछली स्थिति का स्मरण किये रहे, तो वह किसी को भी दोषी न ठहराये, क्योंकि दोष होना-भूल होना-स्वाभाविक है। जानकर कोई भूल थोडे ही करता है। प्राणी जो भी करता है, अपनी बुद्धि से अच्छे के लिये ही करता है। जिस कार्य में अच्छाई न दिखाई देती हो, उसमें मनुष्य की प्रवृत्ति हो ही नहीं सकती। जो जिस कार्य में प्रवृत्त हो गया, समझ लो उसने उसी में सुख समझा होगा। बालक जो भी करते हैं, खेल के लिये करते हैं, मनो विनोद की भावना से करते हैं। बडों को यदि वह बात बुरी लगती है, तो लगा करे। वे बालक बनकर उस परिस्थिति में होकर देखें तब उन्हें पता चलेगा, कि बालकों ने जो किया यथार्थ ही किया। हम भी इन्हीं के सदृश बालक होते, ऐसा ही करते। अपने आपको छोडकर कभी कोई भूल नहीं करता। दूसरों की भूल को बताना ही भूल है। बालकों की सभी चेष्टाएँ निस्वार्थ छल कपट के रहित होती हैं। यदि सर्वान्तर्यामी भगवान ही बालक बनकर विहरें, क्रीड़ा करें, तब तो पूछना ही क्या ?

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! राम और श्याम अब पैरों से चलने लगे, दौडने लगे, खेलने लगे, माता से तोतली बोली में झगडने लगे, आग्रह करने लगे। दोनों ही बडे चचल थे किन्तु ये छोटे तो महा खोटे थे। ये बाहर भीतर दोनों ओर से टेढे थे, इनकी चितवन चलन, उठन, बैठन, क्रीड़ा, लीला सभी टेढी।

सभी अद्भुत रहस्यों से भरी हुई थी। वेद भी जिनका अब तक भेद न पा सके। आगे पा सकेंगे इसमे भी सन्देह ही है। वेद एक बार भेद बताने का प्रयत्न करते हैं, फिर न इति न इति (यह नहीं, यह नहीं) कहकर चुप हो जाते हैं।

लालजी को गौओं से बडा प्रेम है, वे गोष्ठ म जाकर गौओं से खेलते हैं उनके सींगों को पकडकर लटक जाते हैं, माताएँ डर जाती हैं, ये बडे ऊधमी हैं। बार बार मना करतीं हैं, किन्तु ये तो किसी की बात मानना सीखे ही नहीं। जो करना चाहते हैं वही करते हैं।

व्रज में एक बडे डौल डौल का साँड था। साक्षात् धर्मराज ही भगवान् के अङ्ग स्पर्श के लोभ से वृषभ बन गये थे। वैसे कलियुग में तो उनके एक ही पाद रहता है, किन्तु नन्दजी के गोष्ठ में तो चारों पैर सुन्दर और स्वस्थ हैं। जहाँ भगवान् स्वय क्रीडा करते हों, वहाँ धर्म को विकृत कौन कर सकता है। प्रसिद्धि ऐसी थी, कि सब लोग उसके समीप जा नहीं सकते थे, उसके सामने जाना कठिन समझा जाता था। एक दिन बलदाऊ और श्याम खेलते-खेलते उस मरखने साँड के समीप पहुँच गये। दोनों ने उसके दोनों बड़े-बडे सींग पकडे। उसने चुप चाप सिर नीचे कर दिया। बलदेवजी तो पकडे ही रहे किन्तु ये श्याम तो बिना ऊपर चढ़े मानने नहीं, शनः-शनैः उसके सिर पर पैर रखकर उसके कुकद के ऊपर चढने लगे। उसकी टाठ बहुत ऊँची और मोटी थी, आप डगमगाते हुए उस पर चढ़े। और भी बालक खड़े थे, वे हँस रहे थे, दूर से माता ने देखा, "हाय! कनुआ बलुआ तो मरखने साँड के पास खेल रहे हैं।" माता तुरन्त दौडीं। रोहिणीजी उनसे भी आगे दौडी, जाते ही उन्होंने श्याम को गोदी में उठा लिया, यशोदाजी ने बलदेवजी को पकड़ कर साँड के भय से पीछे भग गयीं और दोनों हाथों से बल-

देवजी के दोनों कपोलों को दबाती हुईं बोलीं—"तू इतना बड़ा हो गया है, अपने छोटे भैया को उपद्रवों से रोकना तो दूर रहा, तू भी उसकी हाँ में हाँ मिला देता है। मरखना साँड है सींग मार देता तो ?" बलदेवजी यह सुनकर श्याम की ओर देखकर हँस पड़े। श्यामसुन्दर भी भोले बन गये। माता दोनों को भीतर ले गयीं।

श्यामसुन्दर जहाँ भी अग्नि जलती देखते वहीं दौड़ जाते। अग्नि की लपट को देखकर वे बड़े प्रसन्न होते, बाबा जाड़ों में अगिहाना जलाकर बहुत से गोपों के साथ अग्नि तापते हुए बैठते और इधर-उधर की बातें करते तो ये भी बाबा की गोदी में जा बैठते। अग्नि जलती तो आप उसकी ओर हाथ बढ़ाते। बाबा कहते 'ताती है भैया ! मुरस जायगा।" तब से आप अग्नि को "ताता-ताता" कहते। माताएँ रोटी बनातीं तो दौड़कर गोदी में जाते और 'ताता ताता' कहकर चूल्हे में हाथ देते। माताएँ हाथ पकड़ लेतीं और कहतीं —"कनुआ ! हाथ जल जायगा। अग्नि को नहीं छूते हैं भला।" जलती हुई एक लकड़ी उठाकर श्याम हँसते हुए बलराम की ओर बढ़ाते, तब माता डाँट देती। "तू ऐसा उपद्रव करेगा तो तुझे घर के भीतर करके बाहर से ताला दे दूँगी।"

आप कहते—"मैया ! ताता नहीं छूँऊँगो।"

एक दिन आप घर से गोष्ठ को जा रहे थे। मार्ग में एक कुत्ता मिला। बस, फिर क्या था खेल आरम्भ हो गया कहीं से एक रस्सी ले आये, कुत्ते के कंठ में बाँधकर फिर उसे एक लगाम की भाँति उसके मुख में डाल दिया। बलदेवजी ने उसकी पूँछ पकड़ी और उस पर चढ़ गये, तब तक एक और कुत्ता आ गया, और बलराम श्याम के कुत्ते को छोड़कर उस पर बिना लगाम के ही चढ़ गये। वह बाहर की ओर भगा और श्याम का

भीतर की ओर, श्याम कह रहे थे—"मैया ! मेला घोला। मेला घोला ?"

मैया ने देखा—"हाय ! कनुआ ! राम राम, तू तो सरभंगी, है, अरे ! ऊधमी कहीं कुत्ता पर चढते हैं।"

तब आप कहते—"अम्मा दाऊ का घोला बाहर भाग गया।" यह सुनकर यशोदा मैया बाहर दौड़तीं। उधर से नन्दजी बलरामजी को गोदी में लिये हुए आते मिले।

यशोदा मैया कहतीं—' देखो, अब ये बच्चे तो बडा उपद्रव करने लगे हैं। नित्य नूतन उत्पात करते हैं। तुम्हारे छोटे लालजी कुत्ते को ही घोडा बनाये हैं।"

हँसते हुए नन्दजी कहते—' यह भी तो कुत्ते पर हा चढ रहा था, मैं पकड कर लाया हूँ। तब नन्दजी आकर श्याम को भी गोदी में लेते अत्यन्त उल्लास के साथ श्याम कहते—"बाबा ! बाबा मेला घोला भग गया।"

व्रजेन्द्र कहते—"बेटा। यह घोडा नहीं कुत्ता है, यह काट खाता है। जब तू बडा हो जायगा, तब तेरे लिये घोडा ल देंगे।"

बलदेवजी कहते—"बाबा ! एक मेरे लिये भी ले देना।"

हँसते हुए नन्दजा कहते—"हाँ तेरे लिये अवश्य लेंगे तू तो राजा बेटा है।"

श्याम कहते—"बाबा मैं भी लाजा हूँ।"

बाबा कहते—"अरे, चल हट ! तू राजा कहाँ है तू तो चोर है।"

यह सुनकर श्याम रोने लगते। तब तुरन्त रोहिणीजी बाबा से उन्हें अपनी गोद में ले लेतीं और कहतीं—' मेरा कनुआ बेटा राजा है। बडा होगा तो मुकुट लगावेगा, छत्र चँवर लगेंगे।"

तुरन्त श्याम कहते—"और मैया ! घोला पै चढे गे।"

रोहिणी मैया कहतीं—"घोड़े पर नहीं हाथी पर चढना।"

तब आप कहने लगते—"हम तो हाती पै चलेंगे, हाती पै चलेंगे।"

इस प्रकार कुत्ता, सियार, चूहा, जो भी मिलता उसे ही पकड़ने दौड़ते। एक दिन राम श्याम दोनों जा रहे थे, कि सम्मुख उन्हें एक बडा सा सर्प पडा हुआ मिला। सर्प तो इनका विस्तर ही था, आज बहुत दिनों मे सर्प को देखकर ये उसकी ओर लपके। बलरामजी ने उसकी पूँछ पकडली, ये उसके सिर पर हाथ फेरने लगे। सर्प ने अपना फण उठा दिया ये हाथ से पकड कर उसे हिलाने लगे इतने में ही गोपी आ गयी। उसने सर्प से खेल करते जब राम श्याम को देखा, तो वह भय के कारण विह्वल हो गयी, वहीं से चिल्ला उठी—"नँदरानी चलियो चलियो श्याम सर्प से खेल रहा है।" नँदरानी ज्योंही आयीं त्योंही सर्प वहाँ से हटकर अपने बिल मे घुस गया। मैया ने दोनों बच्चों को गोदी में उठा लिया झाड फूँक करायीं सर्प की केंचुली शरीर पर घुमायीं। दासी के हाथों दूध भरकर सर्प की बामी पर पहुँचाया अन्य गोपियों से आँखों में आँसू भरकर कहने लगीं—"आज नारायण ने ही बच्चों की रक्षा की। सर्प तो विषधर ही होते हैं डस लेते हैं। प्रतीत होता है ये सर्प देवता हमारे कोई कुल के पितर हैं, तभी तो बच्चों से नहीं बोले—"सोमवार को खीर बनाकर पितरों के निमित्त बाटूँगी।" मैया ने समझा मेरे बच्चों का पुनर्जन्म हुआ।

अब माता दोनों को बाहर जाने से शक्ति भर रोकतीं। ऐसा प्रबन्ध करतीं, जिससे ये अकेले कहीं न जायँ। एक दिन रोहिणी मैया नारायण के भोग के लिये रसोई बना रही थीं यशोदा मैया घर में बैठी दोनों को खिला रही थीं। उसी समय रोहिणीजी ने पुकारा—"नन्दरानी तनिक जीरा तो दे जाना। आज मैं जीरा लाना भूल ही गयी।" यह सुनकर नन्दरानी तुरन्त उठीं। वे

जानती थीं ये लड़के बड़े चंचल हैं, ये इधर-उधर खिसक देंगे, अतः बाहर से कुंडी लगाकर जीरा लेने गयीं।

अब क्या था ये घर के भीतर इधर उधर कोई खेल की वस्तु खोजने लगे। कल दशहरा था, नन्दबाबा ने शस्त्रों का पूजन करके उन्हें वैसे ही टाँग दिया था। जिस घर में राम श्याम विहर रहे थे, उसके समीप ही शस्त्रागार था, उसमें बहुत से धनुष, बाण रखे थे, तलवारें लटक रही थीं। दोनों भैया उस घर में जा पहुँचे, नंगी चमकती हुई करवालों को देखकर दोनों उस पर हाथ फेरने लगे। उसमें अपना मुख देखने लगे। बलराम एक को खींचने लगे। एक धनुष धड़ाम से नीचे गिर गया। माता तो पहिले से ही शंकित थीं। खटका सुनकर वे दौड़ी आयीं और बच्चों को तलवार से खेलते देखकर तुरन्त दौड़कर दोनों को उठा लिया। नन्दजी भी आ गये। यशोदा मैया बोली—"तुम इन तलवारों को खुला ही छोड़ देते हो। ये दोनों ठहरे ऊधमी। कहीं हाथ पैर न काट लें।"

नन्दजी अपनी भूल स्वीकार करते हुए बोले—"कल शीघ्रता में न तो मैं ताला ही लगवा सका न तलवारों पर म्यान ही चढ़वा सका अब आगे से ध्यान रखूँगा। तुम तनिक सावधान रहा करो।"

झुँझलाकर यशोदा मैया बोली—"अब कैसे सावधान रहूँ, जीजी ने तनिक जीरा माँगा था, उसे ही देने गयी थी, कि तब तक ये शस्त्रागार में घुस गये। एक स्थान पर तो ये टिकते ही नहीं।"

नन्दजी ने कहा—"कोई बात नहीं बच्चे ही हैं, अभी इन्हें भले-बुरे का कर्तव्याकर्तव्य का विवेक नहीं।" यह कहकर वे बच्चों को लेकर खेलने लगे। रसोई बनी नारायण का भोग फिर नन्दजी ने दोनों बालकों के सहित प्रसाद पाया।

नन्दजी कभी कभी दोनों को स्नान कराने यमुनाजी ले जाते, वहाँ एक दूसरे पर जल छिड़कते, बार बार स्नान कराते। नन्दजी डाँटकर कहते—"कनुआ! बहुत स्नान नहीं करते, सरदी हो जायगी भैया! किन्तु आपको सरदी गरमी का भय नहीं था। स्नान करने से इन्हें बड़ा प्रसन्नता होती। माता का जल भरा रहता उसी को उलाचने लगते। कभी मिट्टी के भरे बर्तन में कर छुल लेकर मार देते जब वह फूट जाता और उसमें से एक साथ जल बहता तब आप बहुत हँसते और मैया से डरकर इधर उधर भाग जाते। माता सब समझ जाती उसी ऊधमी की यह करतूत है। पूछने पर भोरे बन जाते और कहते—'मैया! कैसा घड़ा। मैं तो उधर गया भी नहीं।"

एक दिन शरदपूर्णिमा थी। व्रज में बड़ा भारी उत्सव मनाया जाता है। अनेक कड़ाहों में खीर बनने लगीं। शारदीय शशि आज अपनी सम्पूर्ण कलाओं के सहित उदित हुए। श्याम माता की गोदी में बैठे पूछ रहे थे—"मैया! शरद कब बैठेगी?" माँ कहतीं—"अरे! शरद तो रात में आती है।"

रात होते ही आप बोले—"माँ शरद आ गयी?"

माँ ने कहा—"तू देखता नहीं यह जो ऊपर चन्दा दीखता है, वही शरद है।"

भोरेपन के साथ भगवान् ने पूछा—"यह चन्दा कौन है, अम्मा?"

माता ने कहा—"भैया! यह भगवान का खिलौना है।"

खिलौने का नाम सुनकर भगवान् मचल गये और बोले—"मैया! हम भी खिलौना लेंगे?"

माता ने तुरन्त भौंरा, फिरकनी, झुनझुना, काठ के हाथी, घोड़ा, थाली, कटोरा आदि अनेक प्रकार के खिलौने लाकर लालजी के सम्मुख रखे। श्याम ने तुरन्त उन सब खिलौनों को

उठाकर फेंक दिया और रोते-रोते बोले—"हम तो चन्दा खिलौना लेंगे।"

माता ने प्यार से कहा—"बेटा! चन्दा तो भगवान् का खिलौना है।"

आप बोले—"हम भगवान् से कुछ कम हैं क्या, हम भी भगवान् हैं।"

मैया ने कानों पर हाथ रखते हुए कहा—"हाय! कनुआ! ऐसी बात मुख से नहीं कहते हैं, कान पक जाते हैं।" किन्तु

तो हठी ठहरे जो कह देते हैं उसे करके दिखाते हैं। जो संकल्प कर लेते हैं वह मोघ कभी हो ही नहीं सकता। हठपूर्वक पैर फटफटाते हाथों को हिलाते, आँखों से आँसू बहाते माता के वस्त्रों को खींचते हुए बोले—"हम तो चन्दा ही लेंगे। हू हू हू मैया! हमें चन्दा ला दे।"

मैया प्यार से बोलीं—"अरे! यह कैसा बावरा छोरा है। चन्दा कहीं खेलने की वस्तु है, देख तेरा विवाह होगा, बहू आवेगी तुझे रोटी बनाकर देगी। देख उस गौ का बच्चा कैसा काला है, कनुआ तैंने देखा नहीं। बाबा तेरे लिये फुलालेन का कैसा टोपा लाये हैं, उसे लगाकर तू राजा हो जायगा। बलदाऊ को मैं उस टोपे को नहीं दूँगी। क्योंकि राजा बेटा तो तू ही है।" इस प्रकार की बातें करके माता भुलाना चाहती थी, किन्तु ये भूलने वाले कब थे, अपनी टेक नहीं भूले—"हम तो चन्दा लेंगे, चन्दा लेंगे।"

सब गोपी कहने लगीं—"नन्दरानी, तुम्हारा लाल तो बड़ा हठी है इसे किसी भाँति सुला दो।"

यह सुनकर माता गोदी में लेकर थपथपाने लगी, लोरी गाती हुई कहने लगी "आजा री नीदरिया। कालिह कटे तेरी मुडरिया। मेरे कनुआ के ढिग आजा, दूध मलाई मक्खन खाजा।" इन बातों का श्याम पर कुछ प्रभाव नहीं हुआ। वे आठ-आठ आँसु रोते और हाथ पैर फटफटाते। उसी समय रोहिणी जी को एक युक्ति सूझी। एक परात में पानी भर लायीं और बोलीं, "कनुआ आ-मैं तुझे चन्दा दूँ।" यह कहकर मैया ने श्याम को गोद में ले लिया। परात में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था, उसे दिखाती हुई बोलीं—"देख, इसमें चन्दा आ गया है, पकड़ ले।"

यह देखकर बडे उल्लास से परात में हाथ डालने लगे। किन्तु हाथ में चन्द्रमा आता ही नहीं।

तब माता कहने लगीं—"कनुआ! तू हाथ में खिलौने को पकड भी नहीं सकता।" आप बार-बार हाथ डालते। ठंडा ठंडा जल लगता। माता ने कहा—"तू दूध पी ले तब इसे पकडना।"

यह सुनकर श्याम माता का दूध पीते पीते सो गये।

नन्द बाबा ने दोनों बच्चों को दंडवत् करना सिखा दिया था। किसी साधु महात्मा या ब्राह्मण को बाबा देखते तभी कहते—"कनुआ! डंडौत कर।"

तब आप दोनों हाथ जोडकर कहते—"डंडौत।"

यह सुनकर सब हँस जाते। भगवान् के मन्दिर के पुजारी के समीप जाते और कहते—"पदिज्जी पलसाद।" पुजारीजी तुरन्त एक पेड़ा दे देते आधा खाते और आधा उनके ऊपर फेंककर भाग आते। पुजारीजी कहते—"अरे! कनुआ! भैया! तू तो बडा ऊधम मचाता है, देख अब मुझे फिर स्नान करना पडेगा। ब्राह्मण के साथ श्यामसुन्दर भाँति भाँति की लीलाएँ करते। एक ब्राह्मण के साथ उन्होंने एक ऐसा अद्भुत क्रीडा की जिससे वह निहाल हो गया।

यशोदा मैया के पिता के एक वृद्ध पुरोहित थे, बडे भगवद्भक्त थे, यशोदाजी को उन्होंने गोद में खिलाया था। जब उन्होंने सुना यशोदा के लाला हुआ है, तो महराने से लठिया टेकते टेकते गोकुल में आ पहुँचे। गोपों ने वृद्ध ब्राह्मण का बडा स्वागत सत्कार किया। यशोदा मैया ने जब सुना हमारे पीहर के पुरोहित आये हैं, तब उन्होंने बडे आदर से उन्हें बुलाया। घर की कुशल क्षेम पूछी और कहा—"बाबा! अब तुम रसोई बना लो।"

वृद्ध ब्राह्मण बोले—"अरी, लाली ! अब क्या रसोई बनानी, आज ऐसे ही कुछ दूध पी लूँगा, कल देखी जायगी।"

आग्रह पूर्वक यशोदा मैया ने कहा—"नहीं, बाबा ! ऐसे कैसे हो सकता है। रसोई तो बनानी ही होगी। चौका बर्तन मैं किये देती हूँ, दूध को चूल्हे पर चढ़ाये देती हूँ, आप उसमें चावल डाल देना आटा मले देती हूँ, चार पूड़ी उतार लेना। पीछे वहीं कढ़ाई में साग छौंक लेना।" मैया के बहुत आग्रह करने पर ब्राह्मण ने रसोई बनाना स्वीकार किया। अधौटा दूध की खीर बनी। टकौरादार पूड़ी, सुन्दर आलू मैथी का साग सब सामग्री बनकर तैयार हो गयी। मैया ने यमुना जल का घड़ा रखते हुए कहा—"अब महाराज ! देरी मत करो बड़ी अबेर हो गयी है, लगाओ नारायण का भोग।"

ब्राह्मण ने खीर को थाली में फैला दिया, जिससे ठण्डी हो जाय। पूड़ियाँ रख दीं, शाक को एक कटोरा में रख दिया। सब पर तुलसीपत्र छोड़ दिये और नेत्र बन्द करके भगवान् का ध्यान करने लगे। ध्यान में वे कह रहे थे—"हे प्रभो ! आओ प्रसाद पाओ।" अब क्या था, भूखे भगवान् तो नन्द-भवन में ही विहार कर रहे थे। मैया दूसरे घर में चली गयी थीं, ब्राह्मण नेत्र बंद किये ध्यान कर रहे थे। इतने में ही बाल-गोपाल आकर खीर सपोटने लगे। दोनों हाथों से सुर्र-सुर्र करके सपोट रहे थे। ब्राह्मण का ध्यान भग हुआ। सोचा —"चूहा तो नहीं आ गया।" नेत्र खोलकर देखते हैं चार पैर का छोटा चूहा तो है नहीं, दो पैर का बड़ा काला चूहा सड़ासड़ खीर को सपोट रहा है। नेत्र खुलते ही खीर लगे हाथ और मुख से भगवान् भागे। इतने में ही यशोदा मैया आ गयीं। लालजी के हाथों को खीर में सने देखकर और मुख में लिपटी खीर को देखकर वे समझ गयीं, कि इस ऊधमी ने सब गुड़ गोबर कर दिया। पंडितजी की रसोई

जुठार दी। वे लालजी को मारने दौड़ीं। तुरन्त ब्राह्मण ने आकर मैया का हाथ पकड़ लिया और बोले—"यशोदा तोइ मेरी सूँ जो तैंने बालक पर हाथ छोड़ा। बच्चा ही जो ठहरा। बच्चों को बोध तो होता नहीं। कोई बात नहीं मुझे ऐसी इच्छा भी नहीं थी, अतिकाल भी हो गया था, अब कल बनाऊँगा। थोड़ा दूध पी लूँगा।"

अत्यन्त आग्रह-पूर्वक लज्जित होकर मैया ने कहा—"नहीं, बाबा! ऐसा नहीं हो सकता। तुम्हें मेरी शपथ है, तुम न बनाओगे तो मुझे बड़ा दुःख होगा। मैं अभी तड़ाक फड़ाक चौका किये देती हूँ, दूध तो अधौटा रखा है, पास के चूल्हे पर खीर चढ़ा दो। दूसरा पर पूड़ी उतार लो। शाक के लिये आपकी इच्छा, बनाओ चाहे मत बनाओ।"

ब्राह्मण ने कहा—"ना, बेटी! मुझे भूख नहीं है, अब मुझे यमुनाजी भी जाना है।"

मैया बोलीं—"भूख न सही, मेरे आग्रह से बना लो।"

ब्राह्मण क्या करते नन्दरानी के आग्रह को टाल न सके। फिर रसोई तैयार की। माता देखती रहीं वह ऊधमी कहीं फिर न आ जाय। श्याम अबके पलकिया पर सो गये। माता ने सोचा—"अच्छा है इसे जगाऊँगी नहीं। तब तक पंडितजी प्रसाद पा लेंगे। इसलिये वे बोलीं—"बाबा! अब देरी मत करो। भोग लगाओ, प्रसाद पा लो। बड़ा अबेर हो गयी है।"

ब्राह्मण ने पुनः तुलसी छोड़ी घंटी बजायी और नेत्र बन्द किये। अबके नेत्र तो बन्द किये, किन्तु ध्यान में वे ही बाल-गोपाल आने लगे तब तक घर में कुत्ता घुस आया। मैया कुत्ते को मारने और किवाड़ बन्द करने ज्यों ही गयीं, त्यों ही नटखट पलकिया से उठे और खीर को दोनों हाथों से सपोटने लगे। चार-चार पूड़ियों का गप्पा मारने लगे। आहट पाते ही ब्राह्मण

ने नेत्र खोले कि श्याम भोग लगा रहे हैं। खटका सुनते ही माता भी दौड़ी आयीं। अभी तक पूड़ियाँ गाल में ही थीं। कंठ के नीचे नहीं उतरी थीं। हाथ मे खीर भर रही थी। माता ने चट आकर हाथ पकड़ लिया और पूड़ी भरे गाल पर एक चपत लगाती हुई बोलीं—"क्यों रे मेरे बाप! तू इतना ऊधमी हो गया है। ब्राह्मण को भी नहीं छोड़ता। भूखा ब्राह्मण बाघ से भी अधिक भयङ्कर होता है, तू जानता नहीं ब्राह्मण शाप दे देंगे।"

इतने में ही ब्राह्मण ने तुरन्त मैया का हाथ छुड़ाकर श्याम को गोदी में ले लिया और कहने लगे—"अरी, लाली! कोई बात नहीं है। मैं तो पहिले ही कह रहा था, मेरे भाग्य में आज भोजन नहीं है। बच्चे पर हाथ छोड़ना ठीक नहीं। अब तू मुझसे फिर बनाने का आग्रह मत करना।"

अत्यन्त ही लजाते हुए अपराधी की भाँति मैया ने कहा—"बाबा! अब मैं किस मुख से कहूँ, सब अपराध मेरा ही है, मैं छोड़कर चली गयी।"

ब्राह्मण ने अत्यन्त स्नेह से कहा—"अरी, यशोदा! तू ऐसी बात मत कहे। अपने मन को मैला मत करे। वृद्धावस्था में भूख बहुत कम लगती है। ला तू अभी दूध पीता हूँ। बेसन के चार लड्डू ले आ।"

यशोदा मैया ने दीनता के स्वर में कहा—"अजी, बाबा दूध लड्डू से क्या होगा। आपको तो कुछ नहीं, न भी खाओ तो भी रह जाओगे, किन्तु मेरा मन न भरेगा। अब मैं चौका बर्तन न करूँगी। बरोसी में दूध रखा है, उसी मे चावल डाल दो। बस खीर ही बना लो।"

खीजकर ब्राह्मण ने कहा—"अरी, लाली मैं बूढ़ा आदमी हूँ, इतना परिश्रम अब मुझसे होता नहीं।"

मैया ने रिरियाकर कहा—"अजी, बाबा मैं तुम्हारे पैरों

पड़ती हूँ, उसमें परिश्रम कुछ नहीं होगा, चावल डालकर थोड़ा घी छोड़ दो। घी छोड़ने से दूध उफनता नहीं। खाली खीर ही बना लो।"

अब क्या करते, ब्राह्मण ने बरोसी के दूध में चावल डाल दिये। तब तक चौका भी लग गया। रोहिणी मैया ने एक चूल्हा भी जला दिया। दूसर घर में जाकर मैया आटा माड लायीं। चार पूड़ी बेल लायीं। घी डालकर कढ़ाई भी चढ़ा दी। और बोलीं—"बाबा! खीर तो बन ही गयी है। चार पूड़ी और सेक लो, मेरे मन को संतोष हो जायगा।"

सब सामग्री तो तैयार ही थी, घी भी गरम हो गया था, पूड़ियाँ बिली निलायी तैयार रखी थीं केवल कढ़ाई में डालने की देरी थी। ब्राह्मण ने पूड़ी भी उतार लीं। मैया टैंटी, आम का अचार भी ले आयीं। अबके उन्होंने श्याम को एक घर में बन्द कर दिया था और द्वार पर स्वयं बैठ गयी थीं ब्राह्मण देवता बिना भोग लगाये कैसे खाते। फिर नारायण का स्मरण किया। संयोग की बात रसोई घर में रोहिणी मैया रसोई बना रही थीं। शाक छौंकने के लिये उन्होंने कढ़ाई में घी डाल दिया, घी जलने लगा था, उनके हाथ, पूआओं के लिये जो बेसन फेंटा था उसमें सन रहे थे, अतः वहीं से चिल्लायीं– रानी! तनिक दौड़कर मेथी तो दे जाना।"

मैथी उसी घर में बन्द थी, जिसमें मैया ने श्यामसुन्दर को बन्द कर रखा था। वे किवाड़ खोलकर तुरन्त भीतर गयीं। झट से मैथी निकालीं और दौड़कर रसोई घर में पहुँचीं। शीघ्रता में वे किवाड़े बन्द करना भूल गयी थीं। अब क्या था अवसर मिल गया ब्राह्मण ने अबके बड़ी परात में खीर सीरी की थी, जिससे शीघ्र ठंडी हो जाय। श्यामसुन्दर अबके खीर की परात में हा

खाकर बैठ गये। सब कपड़े खीर में सन गये दोनों हाथों से सपोटने लगे।

माता मैथी को घी मे डालकर शाक को कढाई में छौंककर ज्योंही आयी त्यों ही क्षीरसागरशायी खीर में विहार कर रहे हैं। माता अत्यन्त खीज गयीं और श्याम के दोनों कान पकड़कर बोली—"दारी के! आज मैं तुझे बिना मारे न छोड़ूँगी। तू इतना उपद्रव क्यों करता है?"

अबके श्याम ने कहा—"मैया! मेरा क्या दोष है?"

मैया ने क्रोध में भरकर कहा—"तेरा दोष नहीं तो क्या मेरा दोष है?"

श्यामसुन्दर बोले—"न तेरा दोष न मेरा दोष। दोष इन बाबा का ही है बार-बार रसोई बनाते हैं और आँख बन्द करके मुझे प्रेम से बुलाते हैं। जो कोई मुझे प्रेम से बुलाता है, तो मैं अवश्य ही वहाँ जाता हूँ।"

मैया ने खीजकर कहा—"अरे, ऊधमी! वे तुझे बुलाते हैं?"

भगवान ने कहा—"मैं ही इनका भगवान् हूँ।"

इतना सुनते ही ब्राह्मण के हृदय के पट खुल गये, उनकी दृष्टि दिव्य हो गयी, भगवान् को पहिचानकर उनके पैरों पड़ने लगे और श्याम की जूठी खीर को बड़े उल्लास और प्रेम के साथ खाने लगे।

माता अत्यन्त ही चकित होकर कहने लगीं—"हाय! बाबा! तुम यह क्या कर रहे हो? बच्चे की जूठी खीर खा रहे हो?"

ब्राह्मण बोले—"यशोदा! तू धन्य है जो साक्षात् परब्रह्म परमात्मा को बेटा समझकर उनको गोदी में खिलाती है डाँटती डपटती है, मुझ मूर्ख ने इन प्रभु को पहिचाना नहीं। हाय! मैंने कितना अपराध किया।" यह कहकर ब्राह्मण अत्यन्त प्रेम में भरकर रुदन करने लगे।

मैया ने समझा भूख के कारण ब्राह्मण बावरा हो गया है, तभी तो ऐसी अटसट बेसिर पैर की बातें बक रहा है। यह समझकर वह श्याम को गोदी मे लेकर चली गयीं। ब्राह्मण भी उस दिव्य प्रसादी खीर को पाकर कृतार्थ होकर बार-बार नन्दजी के आँगन में लोटकर वहाँ की धूलि बाँधकर नन्दनन्दन के पाद-पद्मो मे प्रणाम करके घर चला गया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! ऐसी एक नहीं द्विजों के साथ श्रीहरि अनेक रसमयी क्रीडाएँ करने लगे। द्विजों के ही साथ ऐसी क्रीडा न करते जो द्विजों के कटक असुर हैं, उनके भी साथ ऐसी ही क्रीड़ा करते। द्विज रूप में जो असुर उत्पन्न हुए थे, उनकी भी छातियों पर चढ़कर उन्हें डरा धमकाकर उचित मार्ग पर लाने लगे। कभी श्यामसुन्दर पक्षियों को पकड़ लेते उनके साथ क्रीड़ा करते, अब आपके सब दाँत निकल आये हैं दूध के दाँत अब गिरने भी लगे हैं।

एक दिन रोटी खा रहे थे, कि एक दूध का दाँत उखड गया वे रोने लगे—"अम्मा! मेरा दाँत उखड गया है। अब क्या करूँ, दाँत तो बूढ़ों के उखडते हैं। मैं तो अभी से बूढा हो गया।"

मैया ने कहा—"देख तू इस दाँत को दूध में रख दे, बड़ा होकर यह फिर तेरे मुख में उग आवेगा।" यह सुनकर आप उसे बड़े चाव से एक मिट्टी के बर्तन मे दूध भरकर रखते और नित्य मैया से पूछते मेरा दाँत अभी बढ़ा नहीं। मैया कहतीं—"अरे, तू धीरज धर कुछ दिनों मे दाँत उग आवेगा।" इस प्रकार जब भी दूध के दाँत उखडते उन्हें दूध मे डालकर रख देते। उसके स्थान पर जब नये दाँत उत्पन्न हो जाते तो अत्यन्त प्रसन्न होकर उछल उछलकर कहते मेरा दाँत उग आया। फिर दूध मे जाकर देखते। माता उसे घूरे पर गाड आतीं। कहतीं—"अब तो तेरे मुख में उग आया। अब इस बर्तन मे कहाँ है।"

जब कोई गोपी कहती—"कनुआ ! तू तो बूढ़ा हो गया।" तब आप कहते—"मेरा दाँत दूध में बढ़ रहा है।" इस प्रकार का अनेकों बाल लीलाएँ करते हुए माता, पिता तथा व्रजवासियों को सुख देने लगे।

कभी-कभी नगे पैरों काँटों में चले जाते। बबूर के बहुत से काटे तोड़कर उन्हें रेत में गाड़-गाड़कर उनकी खेती बनाते। मैया आतीं और कहतीं—"हाय ! कनुआ ! देख, तू इतने कांटे तोड लाया है, किसी के पैरों में लगेंगे। तेरे शरीर में छिद जायेंगे। तू इतना बड़ा हो गया फिर भी तुममें तनिक भी बुद्धि नहीं आयी।"

इस पर आप कहते—"माँ एक भी काँटा न रहने दूँगा। बीन-बीन कर सबको दूर फेंक दूँगा। नष्ट कर दूँगा। व्रज को निष्कंटक बना दूँगा। माता उनके भोलेपन पर हँस जातीं और काँटों को लेकर जलती हुई अग्नि में डाल देतीं। जब आप धूलि से खेलने लगते तो माता कहतीं—"तुझे धूल इतनी प्यारी क्यों है रे ! जब होता है तब धूल में ही लोटने लगता है।"

तब आप कहते—"मैया ! धूरि बड़ी कोमल होती है, ठण्डी-ठण्डी बड़ी अच्छी लगती है। बलदाऊ भी तो खेलते हैं। हम सब साथ खेलते हैं। इस धूलि से खेलने मे मुझे बड़ा आनन्द आता है।"

माता श्याम के मुख से ऐसी भोरी बातें सुनकर प्रेम में विभोर हो जातीं और बार-बार उनका मुख चूमतीं।

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! माता बालकृष्ण के मुख को ही बार-बार क्यों चूमती थीं ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! वात्सल्य रस का प्रधान स्रोत मुख ही है दास्य रस का स्थान पैर है, सख्य के मुख्य रसास्वादन का स्रोत बाहुएँ बतायीं हैं और मधुर रस का प्रधान स्थान है

हृदय। इन इन रसों के आस्वादन कर्ता और आस्वाद्य परस्पर में इन-इन अंगों को सटाकर ही अपने-अपने रस का आस्वादन करते हैं। वात्सल्य स्नेहमयी माता अपने मुख को बच्चे के मुख से सटाकर वात्सल्य का अनुभव करती हैं। दास अपने स्वामी के चरणों को अपने अंगों से स्पर्श करके दास्यसुख का आस्वादन करते हैं। सखा अपने सखा को बाहुपाश में आबद्ध करके सख्यानुभूति करते हैं और मधुर रस के नायक नायिका के हृदय से हृदय सटाकर उन रससागर में स्नान करते हैं। माता यशोदा ने परब्रह्म को पुत्र बनाया था। उनके हृदय में ऐश्वर्य की गंध भी नहीं थी। कोटि लाख बार श्रीकृष्ण को परमात्मा कहो। उनकी बुद्धि में यह बात भरती ही नहीं थी। वह तो अपना साक्षात् पुत्र समझकर वात्सल्य रस का आस्वादन करतीं बार-बार बच्चे के मुख को चूमतीं।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! यह मैंने कुछ लीलाओं का संकेत किया अब श्रीकृष्ण ने जैसे मृद्भक्षण लीला की, उसका वर्णन आगे करूँगा।"

छप्पय

कबहुँ घर की वस्तु लाइकें बाहर खोवैं।
कबहुँ टूटे दाँत दिखावैं पुनि पुनि रोवैं॥
कबहुँ कटकाकीर्ण गैल महँ बरबस जावैं।
माता लावैं पकरि नहीं आवैं खिजावैं॥
बहुविधि लीला लालजी, ललित ललित नित करत हैं।
ब्रजमहँ बसि बलदेव सँग, ब्रजवासिन के [illegible] हरैं॥

मृद्भक्षण लीला

[८७१]

एकदा क्रीडमानास्ते रामाद्या गोपदारकाः ।
कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन् ॥*
(श्रीभा० १० स्क० ८ अ० ३२ श्लोक)

छप्पय

एक दिवस बल श्याम गोप बालनि सँग खेलें ।
यमुना तटपै जाइ दगड सब मिलिके पेलें ॥
पेलि पालिकें दड कदम तर गये कन्हाई ।
मीठी माटी निरखि दुबकि थोरी-सी खाई ॥
लखि बोले बलदेवजी, कनुआ ! मॉटी खातु है ।
मैयातें अबई कहूँ, अब तू बिगरयो जातु है ॥

पृथ्वी को गन्धवती कहा है । सब प्रकार की सुगन्धि दुर्गन्धि की उत्पत्ति पृथ्वी से ही होती है । जहाँ का जल मीठा होता है, वहाँ की मिट्टी भी मीठी होती है, जहाँ का जल खारा होता है, वहाँ की मिट्टी भी खारी होती है । मीठी मिट्टी में एक प्रकार का सौंधापन होता है तभी तो मिट्टी के पात्र में रखे जल का, दूध आदि का एक अद्भुत स्वाद हो जाता है । यह हमारा शरीर

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! एक समय श्री बलदेवजी तथा अन्य गोप कुमारों ने खेलते खेलते बीच में ही आकर माता यशोदा से कहा श्रीकृष्ण ने मिट्टी खाई है ।"

मिट्टी का ही बना है। इसमें आधा भाग मृत्तिका का है और आधे में जल, तेज, वायु और आकाश ये चार भूत हैं। इसकी स्थिति मृत्तिका से उत्पन्न अन्नादि से ही होती है और अन्त में यह मिट्टी में ही मिल जाता है। अर्थात् आदि मध्य और अन्त में यह मिट्टी ही मिट्टी है। जैसे मिट्टी के घर को सुरक्षित रखने को मिट्टी से ही लीपते पोतते हैं, वैसे ही इस मिट्टी के शरीर को सुरक्षित रखने के लिये हम जो भी खाते हैं मिट्टी ही खाते हैं। जब मनुष्य इस सत्य को भूल जाते हैं, तो भगवान् अवतार लेकर इस सत्य को लीला द्वारा प्रकाशित करते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अब श्रीकृष्ण सखाओं के संग खेलते-खेलते यमुना-तट तक चले जाते, वहाँ जाकर भाँति भाँति के खेल खेलते। अब तक वे बलदेवजी के साथ भी बिना सकोच अन्य गोप कुमारों के समान निर्भय होकर खेलते। अभी तक भान नहीं होता था, कि ये मुझसे बड़े हैं, मुझे इनका शील संकोच करना चाहिये। किन्तु एक घटना ऐसी घट गयी, कि उस दिन से ये बलदेवजी से संकोच करने लगे और शक्ति भर इनसे पृथक रहकर ही क्रीडा करने लगे।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! वह कौन-सी ऐसी घटना घटित हो गयी?"

सूतजी बोले—"महाराज! एक दिन सब सखाओं के सहित श्याम यमुना तट पर क्रीडा कर रहे थे। साथ में बलदाऊजी भी थे। घरुआ पाती, गुल्ली डंडा आदि खेल होते रहे। अन्त में श्रीकृष्ण अकेले ही यमुनाजी के एक ढाह के नीचे चले गये। यमुनाजी की सुन्दर चिकनी मृत्तिका को देखकर मन मोहन का मन ललचा उठा। उन्होंने सुन्दर सी एक मिट्टी की ढेली उठाकर खानी आरम्भ कर दी।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! नन्दबाबा के यहाँ दूध, दही,

मक्खन तथा मेवा मिष्ठान्न की तो कमी नहीं थी, भगवान् ने मिट्टी क्यों खायी ?"

इस पर सूतजी ने कहा—"अब महाराज ! भगवान् की बात तो भगवान् ही जानें। मेरी बुद्धि में तो यह बात आती है, कि भगवान् ने सोचा होगा, मुझे दूध दही बहुत प्रिय है, यह होता है गौओं के स्तनों से। गौएँ घास खाती हैं, तो दूध बनता है, घास होती है पृथ्वी से। जिस पृथ्वी से दूध की जननी घास होता है उसका स्वाद क्या है, इस बात को जानने के लिये भगवान् ने मृत्तिका खायी होगी। अथवा देवता जो भी आते हैं, व्रजरज की प्रार्थना करते हैं—"हमें व्रजरज की प्राप्ति हो।" भगवान् ने सोचा—"चाखें तो सही, इस व्रजरज में क्या माधुर्य है जो ब्रह्मादिक देवता भी इसके लिये तरसते हैं। अथवा भगवान् सोचते हैं लोग शरीर को तो मृत्तिका से शुद्ध करते हैं। मंत्र पढ़ते हैं—"मृत्तिके हर मे पाप यन्मया दुष्कृतं कृतम्।" किन्तु मेरे पेट में तो सभी सुकृत दुष्कृत भरे पड़े हैं। यह मिट्टी पेट में पहुँचकर क्या प्रभाव दिखाती है।" इसकी परीक्षा करने को मृत्तिका खायी, अथवा भगवान् ने सोचा—"हमारे लिये जैसा ही मक्खन का गोला वैसे ही माटी का ढेला। लाओ यमुनातट पर इस ढेले को ही खा लें। अथवा भगवान् यह दिखाते हैं, शरीर में भीतर बाहर माटी ही माटी है, हम जो खाते हैं, वह भी माटी है। अथवा यह गर्भवती स्त्रियाँ मिट्टी खाती हैं। इन्हीं के संस्कार बच्चों में शेष रह जाते हैं, इसलिये कुछ बच्चे बाल स्वभावानुसार मिट्टी खाते हैं। कुछ भी क्यों न हो, श्रीकृष्णचन्द्र जी ने मिट्टी खा ली।

बलदेवजी का तो श्रीकृष्ण के प्रति वात्सल्य स्नेह था। बड़े लोग छोटों का विशेष ध्यान रखते हैं। जब बलदाऊजी ने देखा खेलने वाले में गोपकुमारों श्रीकृष्ण नहीं हैं, तो वे घबड़ाये और

इधर-उधर खोज करने लगे। यमुनाजी की ढाह के नीचे बलदेव जी ने देखा श्रीकृष्ण खड़े खड़े मिट्टी खा रहे हैं। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। और गोपों ने भी देखा वे हँसने लगे। तब बलदाऊजी ने अपने ओठों पर उँगली रखकर उन्हे चुप रहने का संकेत किया। बालक सब चुप हो गये। उसी समय चुपके-चुपके पैरो की पैछर बचाकर बलदेवजी गये और पीछे से पट्ट हाथ पकड़ लिया और बोले—"कहो, कनुआजी! यह माल उड़ा रहे हो ?"

श्रीकृष्ण तो सटपटा गये, भयभीत हो गये मुख मे मिट्टी भरी थी, कुछ कह नहीं सकते थे, हाँ ना भी नहीं कर सकते थे, चोर सेंद पर पकड़ा गया।

बलदेवजी ने दृढ़ता के साथ कहा—"आज मैं तुझे छोड़ूँगा नहीं, मैया के पास ले चलूँगा। तुझे मिट्टी खाने की लत पड़ गयी तो तुझे भयंकर रोग हो जायँगे।"

श्रीकृष्ण के मुख से शब्द नहीं निकला। गोप ताली बजा-बजा कर हँसने लगे। संयोग की बात कि उसी समय देव पूजा के लिये स्वयं यशोदा मैया जल भरने आयी थीं। बलदेवजी श्याम को उनके ही समीप ले चले। श्रीकृष्ण डर रहे थे रो रहे थे अनुनय विनय कर रहे थे और हा हा खाकर बलदेवजी से प्रार्थना कर रहे थे कि गोपो ने पहिले ही दौड़कर यशोदा मैया से कहना आरम्भ कर दिया—"मैया मैया! कनुआ भैया ने आज माटी खायी है बलदाऊजी उसे पकड़ कर ला रहे हैं।" इतने में ही भगवान् को पकड़े हुए बलदेवजी वहाँ आ पहुँचे और अम्मा से बोले—"देख मैया! इस कनुआ ने आज अभी अभी मिट्टी खायी है।"

यह सुनकर मैया को बड़ी शंका हुई—"यदि अभी से इसे मिट्टी खाने की लत पड़ गयी तो इसे पांडु आदि रोग हो

जायँगे।" यही सोचकर उन्होंने कसकर श्रीकृष्ण का हाथ पकड़ लिया और डाँटती हुई उपालम्भपूर्वक बोलीं—"कहिये लालाजी! आज आपने मिट्टी का भोग लगाया है ?"

मुख लटकाये अपराधी की भाँति श्यामसुन्दर खड़े हो गये। माता ने कहा—"बोलता क्यों नहीं, खड़ा है गुम्म सुम्म मौनी बना। जो पूछती हूँ, उसका उत्तर क्यों नहीं देता ?"

रोते-रोते श्याम बोले—"क्या उत्तर दूँ।"

मैया ने कहा—"अहा हा! कैसे भोरे बन गये हैं, मानो अभी सुना नहीं। अच्छा तू यह बता, तैंने मिट्टी क्यों खायी है ?"

कुछ टेढ़े होकर माता की ओर कनखियों से देखते हुए बोले—"मैंने कहाँ मिट्टी खायी है ?"

माता ने कहा—"चोरी भी करता है, झूठ भी बोलता है। चोरी सीना जोरी, यह सब गोप कह रहे हैं।"

गोपों ने कहा—"हाँ, मैया! हमने अपनी आँखों से मिट्टी खाते देखा है।"

माता ने सूखी हँसी हँसकर कहा—"बोल अब क्या कहता है।"

यह सुनकर कृष्ण अकड़ गये। बलदेवजी से तो संकोच करते थे। माता से तो कोई सकोच था ही नहीं दृढता के स्वर में बोले—"अब तू मेरा तो विश्वास करती नहीं। इन झूठे गोपों की बात ही मानेगी। तुझे यह पता नहीं, आजकल ये मेरे बैरी हो गये हैं। खेल में इन्हें मुझे घड़ी देनी थी, ये देते नहीं मैं इनसे लड़ता था, इसलिये मेरी झूठी चुगली करके तुमसे पिटवाना चाहते हैं तू पीटेगी ये सब हँसेंगे।"

मैया ने कहा—"अच्छा ये सब तो तेरे बैरी हैं तेरा बड़ा भैया बलदेव तो तेरा बैरी नहीं है वह भी तो कह रहा है।"

रोकर श्याम बोले—"अम्मा! तू अब दाऊ की मत पूछे,

अब ये मुझसे उतना प्रेम नहीं करते मेरे विपक्षियों के पक्ष में मिल गये हैं।"

माता ने डाँटकर कहा—"और सब झूठे हैं, केवल तू ही साँचाधारी है। तैंने मिट्टी न खायी होती तो ये तुझे क्यों पकड़कर लाते ?"

यह सुनकर दृढ़ता के स्वर में श्याम बोले—"मैया ! तू मेरी बात पर विश्वास कर मुझे इतना झूठा मत समझे। मैंने मिट्टी नहीं खायी, नहीं खायी, नहीं खायी। यदि तुझे मेरी बात पर विश्वास नहीं है, तू मुझे झूठा ही समझती है तो मेरे मुख को देख ले। इससे बढ़कर तो कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं।"

माता ने शीघ्रता के साथ कहा—"अच्छी बात है, दिखा तू अपना मुख।"

यह सुनकर तो श्याम की खिटिल्ली भूल गयी। घबड़ा गये मिट्टी तो खायी ही थी, मुख में भी लग रही थी, परन्तु अब करते क्या मुख खोलना ही पड़ा।

यह सुनकर शौनकजी ने पूछा—"जब भगवान् को पता था, कि मेरे मुख में मिट्टी लग रही है, मैंने मिट्टी खायी है तो फिर भगवान् ने मुख दिखाने की बात कही ही क्यों। कोई बहाना बना देते। कहते—"अम्मा मुझे बड़ी प्यास लग रही है, कठ सूख रहा है पानी पी लूँ तब तू मार लेना। ये ढाह बाँधकर रोने लग जाते, अपना अपराध स्वीकार कर लेते, कह देते अम्मा अब मैं नहीं खाऊँगा। या कह देते बलपूर्वक इन लोगों ने मेरे मुख में ठूँस दी है। यह सब न कहकर उन्होंने स्पष्ट क्यों कह दिया कि मेरा मुख देख ले।"

सूतजी बोले—"महाराज ! श्रीकृष्ण ने सचमुच मुख देखने को थोड़े ही कहा था। उन्होंने तो बन्दरघुडकी दी थी। उन्होंने सोचा यह होगा, कि जब मैं आत्मविश्वास के सहित दृढ़तापूर्वक

अपने मुख को दिखाने को कहूँगा, तो मैया मेरे प्रभाव में आ जायगी, सोचेगी—"इसने मिट्टी खायी होती तो इतनी दृढता के साथ मुख दिखाने को न कहता। -यही सोचकर कह देगी, 'अच्छा, जा फिर उपद्रव मत करना।' उन्हें क्या पता था कि माँ कह देगी 'अच्छा, दिखा मुख।' जब आशा के विरुद्ध माता ने मुख दिखाने को कहा, तब तो लालाजी सिटपिटा गये।"

भगवान् को भयभीत देखकर उनकी ऐश्वर्य शक्ति ने सोचा—"अब मेरे स्वामी पर सकट आ गया है। माता का तो शुद्ध वात्सल्य भाव है, उसने मुख में लगी मिट्टी देख ली तो बिना मारे छोड़ेगी नहीं। मिट्टी खाने से तो भयंकर रोग होते हैं, माता है हितैषिणी, इसलिये अब स्वामी की रक्षा करनी चाहिये। अतः उस मुख की मिट्टी में ही सम्पूर्ण चराचर विश्व ऐश्वर्य शक्ति ने स्थापित कर दिया। छोटा सा बटुआ-सा मुख जिसमें नन्हें नन्हे चावल से स्वच्छ दाँत हैं, लाल वर्ण की चिकनी जिह्वा है—भगवान ने मुख फैला दिया। माता ने देखा बच्चे के मुख में तो चल चित्रों की भाँति सम्पूर्ण विश्व दिखायी दे रहा है। दशों दिशाएँ, सम्पूर्ण भूलोक पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, नट, नदी, पर्वत, द्वीप, समुद्र, चन्द्रमा और तारागण के सहित निखिल ज्योतिर्मण्डल वैकारिक अहङ्कार के कार्य-सभी इन्द्रियों के अधिष्ठातृदेव और मन, राजस अहङ्कार की कार्यभूता इन्द्रियाँ तथा तामस अहङ्कार की कार्यभूता सभी तन्मात्राएँ एव सत्व रज और तम ये तीनों गुण श्रीकृष्ण के मुख में दिखायी दिये।

माता ने देखा जीव, काल, कर्म, स्वभाव, आशय और भिन्न-भिन्न शरीरों के कारण विचित्र भेदवाला वह सम्पूर्ण विश्व मेरे लाल के मुख में दिखायी दे रहा है। माता यह देखकर और भी अधिक आश्चर्यचकित रह गयीं, कि उस मुख में सम्पूर्ण व्रज-मंडल भी दीख रहा है, समस्त ग्वाल, बाल, गोप गोपी तथा

गौएँ भी उसमें स्वच्छन्द विचरण कर रही हैं। स्वयं अपने को भी माता ने देखा, श्रीकृष्ण मुख फाड़े खड़े हैं, वह भी उसने मुख में निहारा। उस मुख वाले कृष्ण के मुख में भी अनन्त ब्रह्मांड दिखायी दे रहे हैं। उसमें भी श्रीकृष्ण हैं। माता यह सब देखकर बड़ी हक्की बक्की-सी हो गयी। वे निर्णय ही न कर सकीं कि यह बात क्या है। मेरे तनिक से छोरा के मुख में यह क्या अलाइ बलाइ दिखायी दे रहा है। मैया बार बार आँखों को मीडतीं, मैं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ। फिर सोचतीं—"स्वप्न तो यह है नहीं मेरी आँखें खुली हैं, मैं यमुना किनारे खड़ी हूँ। सम्भव है भगवान् की कोई माया हो, या मेरी बुद्धि में कोई भ्रम हो गया हो। कोई मादक वस्तु खाने से मुझे ही अटसट दिखायी देता हो, किन्तु मैंने तो कोई मादक वस्तु छुई तक नहीं। हो न हो इस मेरे लाल की ही कोई जन्मजात योगसिद्धि हो, या किसी भूत प्रेत का इसमें आवेश हो गया हो।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! दूसरी कोई माता यदि इस प्रकार अपने पुत्र के मुख में विश्व ब्रह्मांड को देखती, तो उसी समय पुत्र के पैरों पर पकड़कर उनकी घी गुड़ से पूजा करती, किन्तु ये तो अनन्य वात्सल्य रस की मूर्ति यशोदा मैया हैं। इन्हें तो यह अलाइ बलाइ दिखायी दी। तनिक-सी शका अवश्य हुई कि कहीं मेरे बालक में ही यह कोई जन्मजात योग-सिद्धि तो नहीं है। फिर माता ने सोचा—"जो भी कुछ हो यह सब भगवान् की कोई लीला है। इसलिये भगवान् की स्तुति से ही यह सब ठीक हो जायगा। यही सोचकर वे हाथ जोड़कर स्तुति करने लगीं— "जो भगवान् चित्त से मन से वाणी तथा कर्म से भली भाँति नहीं जाने जा सकते, जिनमें यह सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड अवस्थित है, इन्द्रियाधिष्ठता और बुद्धि के प्रेरक द्वारा जिसकी प्रतीती होती है, उन अचिन्त्य शक्ति परब्रह्म परमात्मा को मैं प्रणाम

करती हूँ, जो परम पद हैं। यह सम्पूर्ण संसार जिनकी माया के वशीभूत होकर व्यवहार कर रहा है। मैं भी जिनकी माया से मोहित होकर यह अनुभव करती हूँ, कि गोरे मोटे शरीर वाली यह मैं हूँ। ये व्रज के राजा मेरे पति हैं, यह कृष्ण मेरा पुत्र है, मैं सम्पूर्ण व्रज के राजा व्रजेश्वर की निखिल सम्पत्ति की स्वामिनी धर्मपत्नी हूँ। ये समस्त व्रज के गोप-गण, गोपियाँ तथा जितनी भर गौएँ हैं, ये सब मेरे ही अधीन हैं। वे ही विश्वम्भर भगवान् मेरी एकमात्र गति हैं, जिनकी माया से मुझे मैं मेरा तू तेरा इस प्रकार की कुमति ने घेर रखा है, वे ही मुझे मोह पाश से छुड़ावें।"

भगवान् ने जब माता की ऐसी उच्च तत्वज्ञानी की बातें सुनीं, तो वे घबड़ा गये—"अरे, मेरी माता कहीं मूड़ मुड़ाकर जोगिनी बनकर इस संसार को असार मानकर समाधि में स्थित हो गयी, तो सब गुड़ गोबर हो जायगा। मेरी लीला ही समाप्त हो जायगी, कौन मुझे दूध पिलावेगा। कौन छड़ी लेकर डॉट डपट करेगा। उन्होंने देखा ऐश्वर्य शक्ति ने तो बीच में पड़कर बड़ा गड़बड़ घुटाला कर दिया। तुरन्त भगवान् ने ऐश्वर्य शक्ति को डॉटा और रुखाई के साथ बोले—"अभी तू यहाँ से भाग जा।" ऐश्वर्य शक्ति मारे डरके सिर पर पैर रखकर भीगी बिल्ली की भाँति वहाँ से भागी। तब भगवान् ने अपनी वैष्णवी माया को बुलाया, जिसमें पति, सखा, पुत्र तथा स्वामी आदिका नित्य सम्बन्ध है। उससे भगवान् ने कहा—"तू मेरी माता के हृदय से क्यों भाग गयी, तू उसके हृदय पर प्रभाव डाल।"

भगवान् की आज्ञा पाते ही पुत्र स्नेहमयी वैष्णवी माया ने माता के हृदय पर अधिकार जमा लिया। उसके प्रभाव जमाते ही माता तुरन्त उस दृश्य को भूल गयी। हाथ से लकड़ी फेंक दी और लालाजी को गोद में लेकर बार बार उनका मुख चूमती

हुई पुचकारती हुई बोली—"मेरा कनुआ राजा बेटा है। ये सब लड़के बड़े धूर्त हैं। बलदाऊ भी धूर्त हैं। मेरे छोटे-से बच्चे को झूठे ही अपराध लगा रहे हैं। मेरे घर में माखन मिश्री की कुछ कमी है क्या ? मेरा बचा क्यों मिट्टी खायगा। कहने वाले खायँ। चल भैया घर चलके दूध मलाई खा।" यह कहकर श्याम को माता गोदी मे उठाकर ले गयीं। अब उन्हें वे सब बातें विस्मरण हो गयीं श्याम को हृदय से लगाते ही प्रेम की बाढ सी उमडने लगी। वह जैसे पहिले श्रीकृष्ण को अपना छोटा-सा बच्चा समझती थीं, वैसे ही समझने लगीं। ब्रह्माण्ड दर्शन की बात वे स्वप्न के समान भूल ही गयीं।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! तीनों वेद, उपनिषद्, सांख्य, योग और भक्तजन जिनके सुयशका निरन्तर गान करते रहते हैं, वेद भी जिनके भेद को न जानकर नेति नेति कहकर चुप हो जाते हैं, शेष शारदा भी जिनके गुणों का अपार ऐश्वय का अब तक पार नहीं पा सकते उन अखिल कोटि ब्रह्माण्डनायक श्रीहरि को मैया यशोदा अपना पुत्र करके मानती हैं। उन्हे डाँटती डपटती हैं, उनके दुःख सुख का सदा ध्यान रखती हैं, यह कैसे आश्चर्य की बात है। जिनकी महिमा का पार नहीं। असख्यों ब्रह्मा, विष्णु, महेश जिनकी श्वास प्रश्वास में से उत्पन्न और विलीन होत रहते हैं, जिनके भय से वायु चलती है—सूर्य चन्द्र प्रकाश प्रदान करते हैं, वे ही सर्वेश्वर गोपी, यशोदा के सम्मुख भय के कारण थर-थर काँपत हैं भगवान् की कैसी भक्तवत्सलता है, वे अपने अनुगातो के हाथो बिके हैं, उन्हें सुख देने के लिये अपने अपार ऐश्वर्य को भूल जाते हैं, छोटे से अबोध बालक बन जाते हैं।"

ऋषियो ! महावन गोकुल के पास यमुना तट पर जहाँ भगवान् के मुख में माता को ब्रह्माण्ड के दर्शन हुए और जहाँ

भगवान् ने माटी खायी यह घाट अबतक ब्रह्माण्ड घाट के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ की मिट्टी अब तक बड़ी मीठी होती है और यात्रियों को प्रसाद में वही मिट्टी दी जाती है। बोल दे माटी खाने वाले गोपाल की जय।"

छप्पय

(१)

यों कहि पकरे श्याम राम माता ढिंग लाये।
डरे मातुकूँ देखि कमल नयननि जल छाये॥
पूछे माता कहो श्याम क्यों माटी खाई।
बोले नटवर तनिक न खाई माटी माई॥
नहिँ पतिआवे देखि मुख, दै दिखाइ फार्यो बदन।
सुत मुखमहँ माता लखे, तीन लोक चौदह भुवन॥

(२)

लखि मुख महँ ब्रह्माण्ड गोप गोपीपति ब्रजकूँ।
निरखत पकरे श्याम अकबकी ठाढ़ी निजकूँ॥
जगदीश्वर की शरन गई तारी-सी लागी।
ब्रह्मज्ञान की बात करे ममता सब भागी॥
पुत्र स्नेहमयी तुरत, माया फेरी श्याम जब।
फिर कनुआ कहिवे लगी, भूली मुख की बात सब॥

माखनचोरी लीला

[८७२]

कालेनाल्पेन राजर्षे ! रामः कृष्णश्च गोकुले ।
अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरञ्जसा ॥
ततस्तु भगवान् कृष्णो वयस्यैर्व्रजबालकैः ।
सहरामो व्रजस्त्रीणां विक्रीडे जनयन् मुदम् ॥*

(श्री भा० १० स्क० ८ अ० २६,२७ श्लो०)

छप्पय

वय जब कछु कछु बढ़ी नन्दलालाकी थोरी ।
सीखी विद्या प्रथम दही माखन की चोरी ॥
सङ्ग सखा सब लिये खेलिबे घर पर जावें ।
कहँ माखन दधि धर्यो सैन तें ताइ लगावें ॥
मामी कहि भाँपै भवन, कहँ नई पहिनी चुरी ।
बतियाँ बोलें मधुर अति, मुख मिश्री हियमहँ छुरी ॥

एक बार जिस काम को करने में रसानुभव हो और उसे पुनः-पुनः करने की टेव पड जाय, उसके बिना रहा न जाय, उसे

* शुकदेवजी राजा परीक्षित से कह रहे हैं—"हे राजर्षि ! अल्प-काल में ही राम और कृष्ण घुटुओं का सहारा छोड़कर गोकुल में पैरों के ही बल सरलता से चलने फिरने लगे। तदनन्तर भगवान् कृष्ण बल-रामजी के सहित तथा अन्यान्य समवयस्क व्रज के बालकों को साथ लेकर आनन्द के साथ खेलने लगे।"

व्यसन कहते हैं। कोई व्यसन अपनी प्रेरणा से होता है, कोई पर प्रेरणा से। दूसरों को सुख देने के लिये भी कार्य किये जाते हैं। भगवान् तो आप्तकाम हैं, उन्हें न कोई इच्छा है न व्यसन, किन्तु भक्तों को सुख पहुँचाने के लिये व्यसन लिप्त-से दिखायी देते हैं। वास्तव में तो वे निरीह हैं। इच्छा तो वह करे जिस पर कोई वस्तु न हो, किसी वस्तु की कमी हो। भगवान तो सबके जनक हैं, वे कोई इच्छा करते हुए से भी दिखायी दें, तो समझना चाहिए, वे केवल भक्तों को, अपने आश्रित जनों को सुख देने के ही लिये क्रीड़ा कर रहे हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अब श्याम चार पाँच वर्ष के हो गये। बालकों के साथ स्वच्छन्द विहार करने लगे। पहिले उन्हें जितनी ही माता की गोदी प्यारी लगती, अब उतनी ही क्रीड़ा प्यारी लगने लगी। संग में सैकड़ों गोपकुमार खेलने आ जाते, द्वार पर, गोष्ठ में, चौपाल के पीछे तथा यमुना तट पर वे खेलते। उनका सौन्दर्य माधुर्य प्रति पल बढ़ता रहता था। जो नर-नारि उनकी एक बार झाँकी कर लेते वे निहाल हो जाते। भोरेपन के साथ चंचलता और लड़कपन सोने में सुगन्धि का काम करते हैं। उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग से सौन्दर्य सौष्ठव फूट-फूटकर निकलता रहता, गोपियाँ झुण्ड-की-झुण्ड उस रूप माधुरी का पान करने आतीं, उनके हाथों बिना मोल बिक जातीं, उन्हें देखती की देखती ही रह जातीं बिना काम के भी विविध बहाने बना-बनाकर वे नन्द भवन में आतीं और वहाँ श्याम रूपासव का पान करके अकी-सी, जकी-सी, भटकी सी, पगली-सी, खड़ी-की-खड़ी रह जातीं। यशोदा मैया मन-ही-मन सिहातीं, बार-बार अपने लाल के ऊपर बलि-बलि जातीं।"

श्याम खेल खालकर दौड़े-दौड़े आते। मैया का अंचल पकड़ कर कहते—"मैया! भूख लगी है।"

माता अत्यन्त स्नेह से मुख चूमकर कहतीं—"बेटा! दूध पीले, मेवा मिष्ठान्न खाले। बोल, क्या खायेगा?"

आप कहते—"मैया! मुझे तो माखन चाहिये।" माँ तुरन्त माखन देतीं। रोटी पर रखकर माखन को भट्ट-भट्ट करके खा जाते। उस खाने की छवि को देखकर गोपियाँ निहाल हो जातीं और आँखों में आँसू भरकर मन ही मन मनातीं—"हे सर्वान्तर्यामी हरि! कभी श्याम हमारे भी आँगन में आकर इस प्रकार माखन खायेंगे। कभी हमसे भी ऐसी मधु में सनी मीठी-मीठी बातें करेंगे, कभी हमें भी अपने सुखद स्पर्श से निहाल करेंगे। भगवान् का प्रादुर्भाव तो भक्तों के सुख के ही लिये होता है। गोपियों के झुण्ड के झुण्ड नन्द-भवन में आते। यशोदा मैया सभी का आदर सत्कार करतीं, उसी समय श्याम झूठा रोष दिखाकर, बनावटी आँसू बहाकर, पैर फटकारकर, माता का अंचल पकड़कर अपनी चंचलता दिखाते, दही माखन माँगते। दही खट्टा होने पर पात्र को फोड़ देते। बिगड़ जाते रो जाते, माता की चोटी पकड़कर लटक जाते। ऐसे खेलों को देखकर गोपाङ्गनाएँ निहाल हो जातीं, अपने आपको भूल जातीं और चाहतीं कृष्ण हमसे भी कभी ऐसे रार करेंगे? कृष्ण कभी हमें भी अपनावेंगे? इधर गोपियों की उत्कंठा बढ़ रही थी उधर भगवान् की भक्तवत्सलता उमड़ रही थी। दोनों के ही अब बाँध टूट गये, तब माखनचोरी लीला आरम्भ हुई।

प्रेम सम्बन्ध दोनों ओर से होता है, जिसे हम प्यार करते हैं, वह हमें प्यार न करे यह असम्भव है। जान में, अनजान में प्रेम कैसे भी करो, प्रेम छिपता नहीं। कस्तूरी की गन्ध को और प्रेम के सम्बन्ध को दुराय के राखो, तो भी प्रकट हो ही जाता है। मन तो एक ही है, हम जिसे मनसे चाहें, तो वह बिना चाहें रह ही नहीं सकता। चेतन्य प्राणी के भीतर तो हृदय नामक एक

कोमल वस्तु रहती है, प्रेम तो पाषाण आदि जड को भी पिघला देता है। गोपियाँ समझती थीं यह कृष्ण कितना मोहक है, कितना भोरा है, कितना चचल है, इसकी प्रत्येक चेष्टा में कितना आकर्षण है, हम मनसे इसे कितना चाहती हैं, कितना प्यार करती हैं, किन्तु यह हमारी ओर देखता तक नहीं। हमें जानता भी न होगा, यहाँ माता के सामने हम इससे बोल नहीं सकतीं, इसे हृदय से चिपटाकर प्यार नहीं कर सकतीं। हमारे घर यह आने ही क्यों लगा। हम कगालिनी ठहरीं यह राजा का पुत्र है, प्यार करें तो कैसे करें। भोजन, भजन और प्रेम तो एकान्त में ही भली भाँति व्यक्त होता है एकान्त से कान्हा को कहाँ पावें। जिस प्रकार व्रजाङ्गनाएँ श्रीकृष्ण से ऐकान्तिक मिलन को व्याकुल थीं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण भी उनसे मिलने को छटपटा रहे थे। मैया उन्हें जाने नहीं देती थीं। खेलने तो वे जाते थे, किन्तु गोपियों के घर मे नहीं जाते थे।

मैया चाहती थीं, मेरा लाल यथेष्ट दूध पीवे, माखन कम खाय, क्योंकि अधिक माखन खाने से भूख मर जाती है, अधिक दूध पीने से बल बढता है। श्याम को माखन अधिक प्रिय था, माता दूध अधिक पिलाना चाहती थीं, इस प्रकार दोनों के बीच में इस विषय पर मतभेद था दूध पीने के डर से श्यामसुन्दर सवेरे ही सो जाते, माता सोते ही सोते गोदी में बिठाकर सुन्दर केशर मिश्री डाला हुआ दूध पिला देतीं। नींद में होते तब तो पी जाते यदि जाग पडते तो पात्र को लेकर फेंक देते। माता अनेक प्रकार की कहानी सुनाकर श्याम की दूध पीने मे रुचि उत्पन्न करतीं, कहतीं—"कनुआ! देख, बलदेव की चोटी कितनी बडी है, तेरी बहुत छोटी है। छोटी इसलिये है कि तू दूध नहीं पीता। यदि चार समय तक तू एक एक कटोरा दूध पीने लगे तो तेरी चोटी भी ऐडी तक लटकने लगे।" इस चाव से श्याम दूध पीते

और चोटी को देखते जाते और माँ से पूछते—"अम्मा! मेरी कुछ चोटी बढ़ी ?"

माँ कहतीं—"अरे, लल्लू! तू तो बावरा है। एक दिन मे ही थोड़े बढ़ जायगो। कुछ दिन पी फिर देखना।"

दो चार दिन दूध पोते चोटी न बढ़ती तो दूध पीना छोड़ देते। फिर माँ कहतीं—"देख, दूसरे बच्चे कैसे सुन्दर हैं, तू काला कलूटा है, भूरी गाय का दूध पीवे तो तू भी गोरा हो जायगा।" दो चार दिन इस लोभ से पीते फिर अपने रंग को बदला हुआ न देखकर दूध पीना छोड़ देते और माता से मक्खन देने का आग्रह करते। माँ प्रातःकाल तो टटका हाल का निकला सद मक्खन दे देतीं, किन्तु जब बार-बार माँगते, तो कह देतीं—"मक्खन हर समय नहीं खाते।"

प्रकृति का नियम है, जिसके लिये मना करते हैं, उसके लिये इच्छा और बढ़ती है। अभाव में वस्तु के प्रति आकर्षण अधिक होता है। एक दिन श्याम प्रातःकाल उठते ही मक्खन के लिये आग्रह करने लगे। माता ने एक बार दे दिया, उसे खा गये, फिर दुबारा माँगा माता ने दुबारा दे दिया, तिबारा माँगा तब कह दिया—"अधिक मक्खन खाने से पेट मे मक्खन की कीच हो जाती है बेटा!"

अब क्या करते श्याम मन मारकर रह गये। माता ने श्यामा गौ का अधौटा दूध मिश्री डालकर दिया। लालाजी ने उठाकर बेला फेंक दिया बोले—"मैं नहीं दूध पीता।"

माता ने छाती से चिपटाकर पुचकार कर कहा—"हाय, बेटा! दूध को नहीं फेंकते हैं। दूध का भूमि पर गिराना बड़ा अशुभ होता है। ऐसे दूध गिरावेगा तो तुझे बड़ीबहू मिलेगी वह तुझे मारा करेगी।"

इस पर रिस में भर कर श्यामसुन्दर कहते हैं—"बहू

भले ही बड़ी आवे किन्तु मैं दूध नहीं पीऊँगा।" माता भाँति-भाँति से मनाकर खीर खिलातीं। दूध की खुरचनी श्याम माँगते तो माता कहतीं—"देख, लाला खुरचनी खायगा, तो मेरे विवाह में आँधी आवेगी।"

इस पर श्याम कुपित हो जाते। मैया खुरचनी भी नहीं देती। पेट भर के माखन भी नहीं खाने देती। अच्छी बात है, मैं माँ से छिपकर खाऊँगा।"

एक दिन मैया दही बिलोकर मक्खन के लौंदा को कमोरी में रखकर किसी काम के लिये बाहर गयीं। श्याम तो ताड़ लगाये हुए थे, आज वे जागते हुए भी शैया पर पड़े पड़े सोने का स्वाँग रच रहे थे। मैया ने सोचा—"अच्छा है यह ऊधमी अभी तक आज उठा नहीं, नहीं तो मुझे काम न करने देता। वे ज्यों ही कमोरी को रखकर बाहर गयीं त्यों ही श्याम चुपके से उठे। कमोरी नीचे ही रखी थी, उसमें हाथ डालकर एक गफ्फा मारा। श्रीकृष्ण यह देखकर चकित रह गये, कि आज के मक्खन में अपूर्व स्वाद है, उन्हें ऐसा लगा मानों आज तक मैंने इतना स्वादिष्ट मक्खन कभी खाया ही नहीं। उसी समय उनके मन में यह बात बैठ गयी कि चोरी का माखन अत्यन्त स्वादिष्ट होता है। दूसरा गफ्फा मारने ही वाले थे, कि मैया आ गयीं। मैया ने खटर पटर का शब्द सुना तो समझीं बिल्ली घर में घुस गयी, किन्तु घर में तो काला बिलौटा घुसा हुआ माखन का भोग लगा रहा था। मैया ने पूछा—"कौन है ?"

अब तो लालाजी की सिटिल्ली गुम। घबडा गये। शारदा ने देखा—"अब तो बात बिगड रही है मेरे स्वामी पर मार पड़ेगी।" अतः वह छिपकर आकर भगवान् की जिह्वा पर आ बैठीं।"

भगवान् तुरन्त बोले—"कोई नहीं, मैया मैं हूँ।"

मैया समझ गयीं यह कुछ ढूँढ रहा है पूछा—"कौन है

कनुआ तू यहाँ क्या खटर-खटर कर रहा है ? मक्खन की कमोरी में हाथ क्यों डाल रहा है ?"

श्रीकृष्ण मुँह लटकाकर बोले—'मया ! तुझे मेरे दुःख सुख की तो चिंता नहीं रहती। मुझे ये पद्मराग मणि के कटक हाथ में पहिना दिये हैं ! इनसे मेरे हाथ गरम हो गये उन्हें मक्खन की ठंडी ठंडी कमोरी में रखकर ठंडा कर रहा हूँ।"

मैया ने कहा—"अच्छा तेरे गालों पर मक्खन क्यों लगा है ?"

श्याम बोले—"मैं मक्खन मे हाथ दिये था अनजान में मेरी उँगली छू गयी। उसी समय मेरा गाल खुजाने लगा। खुजाते समय लग गया होगा।" माता को स्वप्न मे भी ध्यान नहीं था, मेरा बच्चा चोरी करेगा, उन्होने श्याम की बात मान ली बात तो समाप्त हो गयी, किन्तु श्रीकृष्ण की जिह्वा चोरी के माखन को खाकर लपलपाने लगी। उन्होंने निश्चय कर लिया आज से चोरी का ही माखन खाना। चोरी के माखन में जो स्वाद है, वह माता के दिये हुए में नहीं है।"

एक दिन मया ने कोई वस्तु लेने श्रीकृष्ण को एक अपनी पडोसिनी के समीप भेजा। श्रीकृष्ण उसके घर में गये। वह उनकी मौसी लगती थी सयोग की बात कि उस समय वह दही बिलोकर किसी काम से बाहर गयी थी। मौसी के घर में कोई रोक टोक तो होती ही नहीं। खिरकी खोलकर श्याम घर मे घुस गये। उन्होंने देखा मट्टे की मथानी मे रई पडी है। समीप की कमोरी में तनिक से पानी मे माखन का लौंदा पडा है। जिसे जिस वस्तु का व्यसन होता हे, उसे वह व्यसन की वस्तु एकान्त मे मिल जाय तो फिर उस पर रहा नहीं जाता उसका उपभोग करने को उसका चित्त चचल हो उठता है। श्रीकृष्ण ने देखा टटका हाल का निकला सद्द माखन रखा है। उन्होंने इधर उधर

दृष्टि दौड़ाई, घर मे कोई नहीं था माखन का लौंदा उठाया। एक गम्फा मारा। श्रीकृष्ण के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। घर के माखन से इस माखन मे लाख गुना स्वाद है। अब उन्हें निश्चय हो गया, कि हाथ से दिये हुए से चोरी का माखन स्वादिष्ट होता है। मक्खन गालो में ही भरा था, गोपी आ गयी, माखन खाते हुए दूर से उसने श्यामसुन्दर को देख लिया। वह तो निहाल हो गयी। मन चाही अभिलाषा पूरी हुई। कब से वह यह बात मना रही थी, अन्तर्यामी प्रभु ने उसकी इच्छा पूरी की। कहीं मेरे भीतर जाने से श्याम सकुचा न जायँ इसलिये ठिठक गयी। चोर का हृदय तो बहुत दृढ़ होता है तभी तो वह साहस करके सबके सोते हुए घर मे घुस जाता है, किन्तु उसके पैर निर्बल होते हैं, तनिक-सी पैछर पाते ही उखड जाते हैं। श्याम सुन्दर ने कनखियो से देख लिया मौसी आ रही है। तभी समय रई उठाकर बड़े वेग से 'हट हट' करके दौड़े, एक मिट्टी के बर्तन में रई मार भी दी बर्तन फूट गया। गोपी हँसते-हँसते लोट पोट हो गयी। घर मे आकर बोली—"कनुआ कनुआ! क्या बात है ?"

आप भोरी सी सूरत बनाकर बोले—"मौसी! अभी एक बडी भारी बिल्ली आयी, तू तो ऐसे ही घर को छोडकर चली जाती है, वह तेरे मक्खन के लौदे को उठाकर भागी, मैं रई ले कर उसके पीछे भागा, किन्तु वह झट से खूँटो पर चढ़कर छप्पर फाडकर भाग गयी।"

हँसकर गोपी ने पूछा—"लल्ला! बिल्ली थी, कि बिलौटा था ?"

आप शीघ्रता से बोले—"अब, मौसी! बिल्ली बिलौटा की पहिचान तो तुझे होगी मैं तो बालक ठहरा। मैं तो जानता नहीं

बिल्ली बिलौटा में क्या अन्तर है, मैं तो सबको बिल्ली ही जानता हूँ।"

गोपी ने पूछा—"उस बिलौटा के भैया! दो पैर थे या चार।"

हँसकर श्याम बोले—"अब, मौसी! पेर तो मैंने गिने नहीं। मैं समझता हूँ दो पैर होंगे दो हाथ होंगे।"

गोपी ने कहा—"अच्छा, बिल्ली बिलौटा की बात छोड दे, तू माखन खाले।"

मुँह बनाकर श्यामसुन्दर बोले—"मौसी! मुझे तो माखन की गन्ध भी नहीं भाती। मेरी मैया से नित्य ही मेरी इसी विषय पर रार होती रहती है। वह कहती है माखन खाले, मुझे माखन अच्छा नहीं लगता। मैया ने तुझे अभी बुलाया है।" यह कह कर वे तुरन्त भाग गये। गोपी के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा।

अब श्याम ने निश्चय किया, कि ब्रज मे सब गोपियो के घर-घर मक्खन की चोरी करनी चाहिये। चोरी का माखन खाना चाहिये। अकेले खाने मे स्वाद भी नहीं आता, अतः एक समिति का सगठन करना चाहिये। संगठित कार्य सुचारु रीति से होता है अतः एक दिन यमुना तट पर उन्होने अपनी एक गुप्त सभा बुलायी। बलदाऊजी को उसमें नहीं बुलाया। सर्वप्रथम श्याम ने अपनी बड़ी टोपी उतारी। उस टोपी के भीतर पत्ते में बँधे दो माखन के लौंदे थे। श्याम इस युक्ति से बालों में छिपाकर उन नवनीत के लौंदों को लाये, कि किसी को सदेह ही न हो। समिति के जितने सदस्य थे, सबको तनिक तनिक मक्खन बाँटा और सब से कहा—"इसे खाओ।"

सबने मक्खन खा लिया। फिर श्रीकृष्ण ने पूछा—"धर्म से कहो, ऐसा माखन तुमने पहिले कभी खाया है ?"

सबने एक स्वर से कहा—"नहीं, हमने ऐसा मक्खन आज

तक नहीं खाया। इसमें भैया क्या विशेषता है इसे और बता दो।"

श्रीकृष्ण बोले—"इनमें भैया, यही विशेषता है, कि यह है चोरी का माखन। चोरी का माखन जितना स्वादिष्ट होता है, उतना स्वाद वैसे माखन में कहाँ ? यदि तुम लोग मेरे कहने में चलो, मेरी बात मानों तो ऐसा माखन नित्य ही तुम्हें पेट भर के मिला करेगा।"

सबने एक स्वर में कहा—"कनुआ भैया ! तू जो कहेगा हम वही करेंगे। ऐसा माखन तू हमें नित्य खिलाया कर। यह विद्या तैंने कहाँ से सीखी ?"

श्रीकृष्ण बोले—"अरे, मैं यह सब माता के पेट से ही सीखा हुआ पैदा हुआ हूँ। तुम लोग किसी से कहना मत। सब मेरे कहने में रहना। तुममें से हम किसी के घर चोरी करने जायँ, तो अपने घरवालों से भी मत कहना। मैं जो कहूँ उसी को करना। यदि हम कभी पकड़े भी जायँ तो घरवालों का पक्ष न लेकर हमारा ही पक्ष लेना।"

सबने कहा—"हाँ, भैया ! हम तो तुझे अपना नेता मानेंगे। तेरे ही आदेशों का पालन करेंगे। अपने अपने घरों का भेद बतावेंगे सब बात समझावेंगे। कहाँ माखन रहता है, अम्मा कब घर से बाहर जाती है।"

श्रीकृष्ण बोले—"हाँ, भैया यह तो अत्यन्त आवश्यक है, बिना घर के भेदिया के चोरी हो ही नहीं सकती। चोरी के लिये कोई जानकार भेदिया आवश्यक होता है।"

सखाओं ने कहा—"अरे भैया, पकड़ गये तब ?"

भगवान बोले—"पकड़ कैसे जाओगे भाई ! पकड़े तो तब जा सकते हो, जब तुम्हारे साथ में मैं न रहूँ। जब मैं तुम्हारे साथ हूँ, तब तो तुम्हें किसी बात की चिन्ता करनी ही न चाहिये। मैं

सब कुछ सम्हाल लूँगा। तुम सब मेरे ऊपर विश्वास करो।"

सबने कहा—"भैया! हमें तेरे ऊपर पूर्ण विश्वास है। अच्छा बुरा, स्याह-सफेद, तू जो भी करेगा, हमें तनिक भी आपत्ति न होगी। तेरी हाँ में हाँ हम मिलाते रहेंगे।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार माखनचोरी समिति की स्थापना हुई, उस समिति से शिखामणि सभापति सर्व-सम्मति से श्यामसुन्दर चुने गये। सबने उनके ऊपर अपना विश्वास प्रकट किया और उन्हें सबने सर्वाधिकार समर्पित कर दिये। अब जिस युक्ति से माखन, दही दूध आदि रस चुराये गये, उनका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

चोरीके सब साज सजे सङ्गी शिशु कीन्हें।
भेद लगावें कछू कछू इत उत करि दीन्हें॥
कछू बहानों करें सरलता मुखपै लावें।
इत उत बात बनाइ श्याम घरमाँहि घुसावें॥
चोर कलामहँ निपुण अति, नन्दनँदन घनश्याम हैं।
चोरें मन, माखन मदन, मोहन शोभाधाम हैं॥

गोपियों का उपालम्भार्थ गमन

(८७३)

कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलम् ।
शृण्वन्त्याः किल तन्मातुरिति होचुः समागताः ॥*
(श्री भा० १० स्क० ८ अ० २८ श्लो०)

छप्पय

भोरो बदन बनाइ बिहँसि घरमहँ घुसि जावें ।
चाची भाभी कहें प्यारतें गहकि बुलावें ॥
यदि देखें नहिँ डोल लौटिके पुनि पुनि आवें ।
जब घर सूनो लखे चोरि दधि माखन खावें ॥
गोपी अति उत्सुक रहहिँ कथा कृष्णकी ही कहहिँ ।
मागहिँ विधितेँ सतत वर, कब हरिकी साँसति सहहिँ ॥

प्रेम की भाषा का अर्थ न शब्दों से जाना जाता है न कार्यों से, वह भावगम्य है। हृदय ही उसका अर्थ समझ सकता है। प्रेम की भाषा का उलटा ही अर्थ होता है। प्रेम के कार्यों का विपरीत अर्थ होता है। गाली देना बुरी बात है, किन्तु ससुराल की गालियों में-प्रेम की गालियों में-कितना आनन्द भरा रहता है। बिना प्रेम के बच्चे की ओर तनिक आँख निकाल दो, रो

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! श्रीकृष्ण का अत्यन्त रुचिर बाल चापल्य देखकर ब्रज की गोपियाँ माता यशोदा के समीप आकर उनको सुना सुनाकर इस प्रकार उलाहना देने लगीं।"

जायगा, डर जायगा किन्तु प्रेम से उसके चपत लगाओ, कितना प्रसन्न होगा, उसका हृदय खिल उठेगा। बाल पकड़ना, मारना, पीटना कोई अच्छा काम तो है नहीं, किन्तु बच्चों के प्रेमपूर्वक बाल पकड़ो, उनको मारो, पीटो, तो उसे वे अनुग्रह ही समझेंगे। आप शब्द सम्मानवाचक है, श्रेष्ठ है, सुन्दर है, किन्तु किसी बच्चे को आप कह दो, तो वह डर जायगा। सोचेगा—"अवश्य ही मुझसे कोई भारी अपराध बन गया है, तभी तो मेरे गुरुजन मुझसे 'आप' कह रहे हैं। किसी की पीछे से आकर आँखें बन्द कर लेना बुरी बात है, किन्तु उसी काम को कोई अत्यन्त प्रेमी करे तो वह सबसे श्रेष्ठ कार्य समझा जाता है। किसी के धुले वस्त्रों पर कीच, मिट्टी, रंग डाल देना बुरी बात है, किन्तु वही होली में अपनी साली सरहज या भाभी के द्वारा डाला जाय, तो वह अमृत छिड़कने के सदृश सुखप्रद प्रतीत होता है। चोरी करना बुरा काम है, किन्तु वही चोरी प्रेमपूर्वक प्रेमी की प्रिय वस्तु की, की जाय, तो उसके ऊपर अत्यन्त अनुग्रह है वस्तुओं में, कार्यों में तथा वचनों में प्रेम नहीं होता। प्रेम हृदय की वस्तु है और अपने प्रेमी की सभी चेष्टाएँ सभी कार्य सुखप्रद ही होते हैं, इसलिये जो बिना भावों को समझे केवल कार्यों की ही आलोचना करते हैं, वे शुष्क हृदय के कर्मासक्त पुरुष रस मार्ग के अनधिकारी हैं। प्रेम की लीलाएँ रसिक भावुक भक्तों को ही सुख दे सकती हैं। रसहीन कुतर्की तो उनसे विपरीत भावना ही निकालते हैं और अपराधों के भागी बनते हैं। श्रीकृष्ण के बाल चरित में माखनचोरी लीला ही सबसे सरस प्रसङ्ग है, किन्तु शुष्क हृदय के अरसिक इन प्रसंगों के सुनने के अनधिकारी हैं। जिनका रस शास्त्र में प्रवेश हो, वे ही उनके लाभ उठा सकते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! श्रीकृष्ण ने बाल चोर समिति का संगठन कर लिया, अब वे चोरी करने जाने लगे। बालकों

को खेलना और खाना ये दो काम इतने प्रिय होते हैं, कि इनके पीछे वे झूठ-सच सब बोल सकते हैं, रो सकते हैं, घरवालों के विरुद्ध बर्ताव कर सकते हैं, घर की वस्तुओं को छिपा सकते हैं, बिगाड़ सकते हैं। उस समय अपने पराये का तो उतना विवेक रहता भी नहीं, वस्तुओं में मोह ममता भी नहीं रहती, भविष्य की चिन्ता भी नहीं रहती, आज का काम चल जाय, आज का खेल बन जाय, आगे की आगे देखी जायगी। देखी क्या जायगी आगे भी कुछ आयेगा, इस बात का उन्हें स्मरण ही नहीं। बच्चों को हँसी की बातें बहुत प्यारी लगती हैं। किसी को देखकर हँसना, दूसरों का अनुकरण करना, रहस्य बात को जानने की जिज्ञासा होना, ये ही बालकों के प्रायः स्वभाव भी होते हैं। बच्चे अपनी हँसी को अपने रोने की इच्छा को रोक नहीं सकते, वे हँसी की बात होने पर खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं। रोने की बात पर रो जाते हैं, उन्हें अपने पराये का उतना पक्षपात नहीं होता, छिपाना वे जानते ही नहीं। जो बात होती है उसे कह देते हैं। माखन की चोरी में खेल भी है, रहस्य भी है, हँसी भी है और स्वादिष्ट खाने का भी प्रबन्ध है, ऐसे कार्य को कौन बालक न चाहेगा। कुछ गुम्म-सुम्म बाल्यावस्था में वृद्ध स्वभाव वाले बालकों को छोड़कर सभी इस क्रीड़ा में सहर्ष सम्मिलित होंगे। श्रीकृष्णचन्द्रजी ने जो गुम्म-सुम्म गम्भीर हैं, ऐसे बालकों को अपनी समिति में सम्मिलित ही नहीं किया। जो चंचल स्वभाव के हँसमुख, क्रीड़ा, तथा विनोदप्रिय अपने अनुगत बालक हैं, उन्हें ही अपने संगठन में मिलाया। सब घर का उन्हें पता लग गया, किसके घर में कितने आदमी हैं, कितनी गौएँ हैं, किसके घर कितना माखन होता है, किस स्थान पर रखा जाता है, कब वह घर के बाहर जाती है, कैसे वह माखन प्राप्त हो सकता है। उनका गुप्तचर विभाग सुदृढ़ था।

घर घर में उनके अनुयायी थे, जो सबकी चूल्हे चौके तक की बात बता देते थे। अब वे घर-घर में जाकर चोरी करने लगे।

एक बडी भावमयी गोपी थी, वह श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी पर अत्यन्त ही अनुरक्त थी, निरन्तर श्रीकृष्ण के रूप का चिंतन करती रहती। नित्य अनेक बहाने बनाकर यशोदा मैया के घर जाती, श्रीकृष्ण को देखकर निहाल हो जाती। वह चाहती थी, श्रीकृष्ण मेरे घर कभी माखन खायँ। नन्दजी गोकुल भर में अपनी साख मे बड़े थे। वे किसी के चाचा लगते थे, किसी के भाई साढू। अतः अधिकांश गोपियाँ श्रीकृष्ण की चाची, भाभी, मौसी ऐसी ही लगतीं थीं। हाँ तो वह भावमयी गोपी श्रीकृष्ण की भाभी लगती थी। जब वह घर जाती तो माता की गोदी में बैठकर उससे 'भाभी' कहते और माता के अचल में मुख छिपा लेते। वह कहती—"लालाजी! आओ हमारी गोद में।" तब आप माँ की गोदी में ही लज्जा के कारण ऐंठकर दुहरे हो जाते। तब माँ कहतीं—"अरे, कनुआ! तू अपनी भाभियों से भी शरमाता है। देख कैसी बुला रही है, जा।" किन्तु आप नहीं जाते।

एक दिन आप उसके खिरक मे गये उसकी बहुत-सी गौएँ थीं, उनके सब बछड़ों को खोल आये और दौड़कर उसके घर गये और हाँपते-हाँपते बोले—"देख तेरे बछड़े सब छूट गये। मैंने उन्हें बाँधना चाहा, किन्तु भला वे मुझपर कैसे रुकने लगे। शीघ्र जा नहीं वे सब दूध पी जायँगे।"

यह सुनकर वह दौड़कर खिरक मे गयी और कहती गयी—"लालाजी। मेरे घर को देखना, कुत्ता बिल्ली न जाय।"

आप बोले—"हाँ भाभी! तू जा मैं तो यहाँ बैठा ही हूँ।"

गोपी खिरक की ओर गयी आपने तुरन्त ताली बजायी। ताली का शब्द सुनते ही आसपास छिपे हुए दाम, सुदामा, स्तोक कृष्ण, किंकणी, मनसुखा, मधुमगल, रैंदा, पैंदा, सैंदा, सरकुआ,

मटकुआ, चटकुआ, लटकुआ, मटकुआ तथा और भी सैकड़ों गोप आ गये अब क्या था, उड़ने लगे माखन के लौंदे। श्रीकृष्ण कमोरी उठा-उठा कर लाते, लड़के आपस में बाँटकर खाते श्रीकृष्ण ने दूर से देखा गोपी आ रही है, सब लड़कों से सैनों में ही कह दिया—"अब सटकन्तोवाच होनी चाहिये।" तुरन्त ही किसी ने गालों में माखन भरा किसी ने हाथों में लोंदा लिये और वहाँ से भागे। श्रीकृष्ण चिल्लाने लगे—"अरे धूर्तो ठहर जाओ। अब भागते क्यों हो ?'

गोपी ने देखा मेरी सब दूध, दही, माखन की कमोरी मोरी के पास खाली पड़ी हैं। उसने कहा—"हाय लालजी ! तुमने यह क्या किया ?"

आप बोले—"भाभी, तू मुझसे कुत्ता बिल्ला देखने को ही तो कह गयी थी, वह मैंने एक भी घर में नहीं जाने दिया।"

गोपी बोली—"तुमने इन लफंगे छोकरों को क्यों नहीं रोका ?"

श्रीकृष्ण बोले—"मैंने बहुत रोका, किन्तु वे ठहरे बहुत, मैं ठहरा अकेला। अकेला कैसे रोकता ?"

गोपी बोली—"तुम रोक कहाँ रहे थे, तुम तो उन्हें खिला रहे थे और स्वयं खा रहे थे।"

श्रीकृष्ण ने कहा—"भाभी ! तेरी सूँ, तेरे दुलहा की सूँ, मैंने तो माखन छूआ तक नहीं।"

गोपी बोली—' हाय ! लल्लू ! तुम झूठी सपथ खा रहे हो, मैंने स्वयं तुम्हें सबके साथ खाते देखा है, तुम्हारा मुख अभी तक माखन से सन रहा है, गालों पर चिपक रहा है।"

श्रीकृष्ण बोले- "अरे, भाभी तू मुझे बिना बात झूठा बनाती है, मैंने तो तेरा माखन देखा तक नहीं। एक छोरा माखन खा रहा था, हाथ में लिये था, मैंने उसमें एक पटक मारी वह नीचे

गिर गया, किन्तु फिर उसने मुझे दबा दिया। हाथ से मेरा मुँह पकड़कर मसल दिया, बन्द कर दिया। जिससे मैं तुझे बुला न सका। उसी समय मेरे मुख में माखन लग गया होगा। हवन करते हाथ जलते हैं, उपकार करत अपकार होता है, मैंने तेरे घर की रखवाली की, उसका फल यह मिला कि झूठी चोरी लगी, अब मैं तेरे घर कभी न आऊँगा।" यह कहकर भगवान् तुरन्त भग गये। गोपी हक्का बक्का सी बनी उन्हें देखती की देखती रह गयी।

अब सब गोपियों को पता चल गया, कि श्रीकृष्ण घर घर माखन को चोरी करने आता है। सभी चाहतीं कभी हमारे घर आवें, हमारे घर आवें। ऐसे स्थान पर माखन रखतीं कि झट से उतार लें। काम करती रहतीं और इधर उधर देखती रहतीं, कि अभी आये या नहीं। जिस दिन जिनके घर चोरी कर ले जाते उस दिन वह अपने को धन्य समझता। अब गोपियों न सोचा—"यह बात ठीक नहीं, वे चुपके से चोरी कर ले जायँ, चोरी करते हुए उन्हें पकड़ा जाय और गालों मे गुलचे लगाये जायँ, जब वे हा हा खायें रोवें तब छोड़ा जाय। यह सोचकर अब वे श्रीकृष्ण को पकड़ने का ताड़ में रहन लगीं। एक छरहरी सी गोपी ने कहा—"अच्छा कल मैं पकड़ूँगी।"

श्रीकृष्ण को जो पकड़ने की प्रतिज्ञा करता है, उसे वे पकड़ाई दे देते हैं। गोपी छिपकर बैठी रही। घट घट का जानने वाले घनश्याम उसके घर में घुसे। गोपी ने किवाड़ का ओट स देख लिया। इधर उधर देखकर माखन की कमोरी मे श्रीकृष्ण न हाथ डाला। एक गफ्फा मार गये। दूसरा ग्रास उठा हा रहे थ, कि पीछे स पट्ट जाकर गोपी ने हाथ पकड़ लिया और बोला—"कहो लालजी। क्या हो रहा है?"

श्रीकृष्ण अब ढाठ हो गये थे। चौर विद्या मे निपुण हो गये

थे, इसलिये सटपटाये नहीं, बोले—"हमारे मन में जो आ रहा है, सो कर रहे हैं। तू पूछने वाली कौन है ?"

गोपी ने कहा—"मैं ही घरवाली हूँ। मेरे घर में तुम क्यों घुसे ?"

श्रीकृष्ण बनावटी सभ्रम के साथ बोले—"अरे, चाची यह तेरा घर है क्या! ले, मेरी कैसी मति मारी गयी, मैं तो अपना घर जानकर घुस आया था।"

गोपी बोली—"अच्छा, आपका ही घर सही, फिर यह माखन की कमोरी में हाथ क्यों डाल रहे हो ?"

आप बोले—"तू माखन को खुला ही रख देती है। देख इसमें कितनी चीटियाँ चढ गयी है। इसकी चींटियों को बीन रहा हूँ।"

गोपी बोली—"चींटी बीन रहे हो सो, तो अच्छा कर रहे हो, फिर यह गाल पर माखन कैसे लगा है।"

भगवान् बोले—"इस कमोरी में से चींटियाँ निकलकर मेरे मुख पर ही तो चढ गयी थीं उन्हें मैंने हाथ से हटाया था। लग गया होगा माखन।"

सखी ने हँसकर कहा—"कुछ चींटियों ने लगाया कुछ मैं लगाती हूँ।" यह कहकर उसने एक माखन का लौंदा उठाकर श्याम के मुख पर पोत दिया। श्रीकृष्ण भागे और बोले—"मैं मैया से कहूँगा, तू मुझे घर में बन्द करके मारती है।" यह कह कर वे भाग गये। गोपों ने कहा—"सारे, अकेला ही अकेला माल उड़ा आया, हमें पूछा तक नहीं।"

श्रीकृष्ण ने कहा—"अरे, मैं अकेला लौट आया यही बहुत है, नहीं तो मेरे मुखपर माखन फिराकर मुझे बकरा बना रही थी यह बंगाले की विद्या जानती है। सारे! भाग चलो नहीं सबको बकरा बना लेगी। यहीं मे-मे करते रहोगे।" यह सुनकर रैंदा, पैंदा, सैंदा सब मुट्ठी बाँधकर भाग खड़े हुए।

एक दिन श्रीकृष्ण एक घर को खाली देखकर सॅक्डी खोलकर उसमें घुस गये। पास मे ही छोटे मुख की माखन की कमोरी रखी थी उसमें से माखन निकालकर खाने लगे। गोपी तो जान-बूझकर छिपी हुई थी। उसने देखा अब श्याम ने पेट भर माखन खा लिया है और भागने की ही ताड में हैं तो पीछे से आकर हाथ पकड लिया और बोली—"लालाजी, राम राम! कहो क्या कर रहे हो?"

आपने छूटते ही उत्तर दिया—"भाभी! मेरा एक बछरा खो गया है, उसे ही ढूँढ रहा हूँ।"

गोपी ने हँसकर कहा—"बछरा खो गया है, तो फिर माखन की मटुकी में हाथ क्यों दे रहे हो?"

श्रीकृष्ण बल देकर बोले—"उसी को तो मटकी में खोज रहा हूँ, मेरा बछरा छोटा सा माखन का ही है और माखन ही वह खाता है। कुदुक कुदुककर चलता है, जहाँ माखन की मटकी देखता है उसी मे कूदकर घुस जाता है।"

गोपी बोली—"वह बछरा यशोदा मैया ने जाया है न? वह सफेद माखन का न होकर काले माखन का है न?"

यह सुनकर श्याम हँस पडे और गोपी भी निहाल हो गयी।

एक दिन श्यामसुन्दर ने अपने सखाओं के सहित एक गोपी के घर पर धावा बोल दिया। घर वाले तो खेत पर काम करने गये थे, गोपी गोबर पाथने गयी थी। आप अपने सेनिकों को साथ लेकर उसके घर में घुस गये। इधर-उधर सखाओं को छिपा दिया और आप मटकी में से माखन निकालकर भोग लगाने लगे। इतने मे ही गोपी आ गयी। बाहर के सखा तो लडके ही ठहरे भाग गये श्रीकृष्ण रह गये और रैदा, पैदा, सैंदा आदि १०–१५ इधर-उधर भीतर छिपे सखा रह गये।

सखी समझ गयी आज श्यामसुन्दर आ गये।

उसने डॉटकर पूछा—"घर मे कौन घुसा है ?"

वहाँ से आप बोले —"भाभी ! मैं हूँ।"

जानकर भी अनजान बनी गोपी बोली—"मैं कौन ?"

श्यामसुन्दर बोले—"मे हूँ, कृष्ण।"

गोपी प्रेम का रोष दिखाती हुई बोली—"तुम 'कृष्ण' हो तो घर में क्यों घुसे हो ?"

श्यामसुन्दर रहस्य भरी वाणी मे बोले—"भाभी ! तनिक धीरे बोल। आज मेरी मैया मुझ पर बड़ी कुपित हो गयी है। *उसने कहा है, तू मुझे मिल जायगा तो तुझे मारे बिना न छोड़ूँगी,* सो मैया के डर से ही मैं यहाँ छिपा हुआ हूँ। तनिक मेरे ऊपर कृपा कर, मैया को बताना मत। तनिक देर छिपा रहूँगा।"

गोपी बोली—"छिपे हो सो तो अच्छी बात है, किन्तु ये माखन की मटकियाँ तुमने बाहर क्यों फेंक रखी हैं ?"

श्रीकृष्ण बोले—"अब भाभी ! इतनी देर तक तेरे घर में छिपा हूँ कुछ तेरा काज करना चाहिए। इसलिये बर्तन हटा हटा कर तेरे घर की सफाई कर रहा हूँ।"

गोपी बोली—"घर की सफाई कर रहे हो, या माखन की सफाई कर रहे हो ?"

श्यामसुन्दर बोले—"माखन क्या होता है भाभी ! मैंने सोचा—"तेरे बर्तनों को भी साफ कर दूँ, इसमें देखो मट्ठे के ऊपर का मैल भरा है, मैंने बर्तन बाहर रख दिये। ये बालक दरिद्री ही ठहरे मट्ठे के मैल को ही उड़ाने लगे।"

गोपी ने पूछा—"अच्छा, जब तुम माता से डरकर छिपे हो, तो इन इतने सखाओं को साथ लेने का क्या काम था ?"

श्रीकृष्ण बोले—"तू घर में थी नहीं, मैंने सोचा-सूने घर में छिपूँ कोई चोरी लगा दे, इसलिये इन्हें साक्षी रूप में खड़ा कर रखा है।"

गोपी ने कहा—"चोर-चोर मौसाते भाई, जैसे तुम छिपने वाले वैसे ही तुम्हारे साथी। माखन तो तुम खा रहे हो गोप कुमारों को दरिद्री बता रहे हो, तुम्हारे ओठ गाल सब माखन में सने हैं।"

सम्भ्रम के साथ श्रीकृष्ण बोले—"अरे, भाभी! देख तू मुझे चोरी लगाती है, अभी एक कुत्ता आया। पीछे से अकरमात् कुत्ते के आने से मैं डरकर एक कमोरी के ऊपर गिर पड़ा। यह तो अच्छा हुआ, कि वह कमोरी फूट गयी, मैं औंधे मुख माखन के ऊपर पड़ा। उसी से मुख में माखन लग गया होगा।"

यह सुनकर गोपी ने चुपके से जाकर किवाड़ बन्द कर दी और बोली—"अच्छा, अब छिपना चाहते हो तो छिपे रहो यहीं।" श्रीकृष्ण को कोठरी में बन्द होते देखकर सखा सब भाग गये। श्रीकृष्ण घबड़ा गये। किन्तु सखा भी तो चोर विद्या में निपुण हो चुके हैं। पीछे फिरकर कच्ची दिवाल से चढ़कर छप्पर में छेद करके वहीं से बोले—'कनुआ! अरे सारे! आज तो तू अच्छा फँसा।"

भीतर से ही सैनों के संकेत में श्याम बोले—"निकालो भैया मुझे नहीं मेरी सब कलई खुल जायेगी।"

लड़कों ने अपनी अपनी धोतियाँ खोलीं गाँठ बाँधकर लटकायीं श्रीकृष्ण धोती को पकड़कर खूँटी पर पैर रखकर छप्पड़ फाड़कर यह गये वह गये। तुरन्त भागकर माता के पास आये और माता से लड़ने लगे—"मैया! तू कुछ देखती नहीं। खिरक में से बहुत सी गोपियाँ गोबर चुरा ले जाती हैं। दोहनी उठा ले जाती हैं, गोबर हटाने की फावड़ी उठा ले जाती हैं।"

माता बोलीं—"बेटा! हमारे यहाँ गोबर की कुछ कमी थोड़े ही है। ले जाने दे।"

श्रीकृष्ण बोले—"ले जाने को तो मैं मना नहीं करता।

किन्तु चोरी कर गोबर ले जाना ठीक नहीं। पूछकर ले जायँ, छिपकर क्यों ले जायँ।"

माता ने कहा—"कौन है, तू मुझे बता मैं कह दूँगी, जितना चाहे माँगकर ले जायँ, चोरी क्यों करती हैं।"

श्रीकृष्ण बोले—"अभी अभी चार चुराकर गोबर ले जा रही थीं, मुझे देखकर तीन तो भाग गयीं। एक मुझसे लड़ने लगी। मैं क्या करता वह लम्बी तड़गी युवती थी मैं छोटा सा बच्चा। वह उलटी मुझे ही डाँटने लगी।"

मैया ने कहा—"कोई बात नहीं बेटा! सब लोग हमारी प्रजा ही तो हैं।"

इधर माँ बेटा में ये बातें हो रही थीं, उधर गोपी ने श्रीकृष्ण को कोठरी में बन्द तो कर दिया, किन्तु उसका हृदय धड़क रहा था, कहीं भीतर बन्द रहने से श्यामसुन्दर का मन उदास न हो जाय। सोचती थी, किवाड़ खोलूँगी, तो वे भग जायँगे, बन्द रखूँगी तो उन्हें कष्ट होगा, यही सोचकर उसने तनिक किवाड़ खोलकर देखा तो न उसमें श्रीकृष्ण न उनकी परछाईं। गोपी बड़ी चकित हुई भीतर गयी। छप्पड़ फटा हुआ देखा, सब समझ गयी। चोर शिरोमणि किसी प्रकार छप्पड़ फाड़कर भाग गये। देखूँ घर पहुँचे या नहीं।" यही सोचकर वह नन्द-भवन में गयी। उसे देखते ही श्यामसुन्दर बोले—"यही गोबरचोट्टी है सदा चुरा चुराकर गोबर ले जाती है न। आज मैंने इसे चोरी में पकड़ा तो मुझसे लड़ने लगी। गोबर की तो हमारे यहाँ कुछ कमी नहीं, किन्तु यह चोरी से ले जाती है, इसी से मुझे बड़ा बुरा लगता है। चोरी से मुझे बड़ी घृणा है। किसी को चोरी करते मैं देखता हूँ, तो मेरा रक्त उबलने लगता है।"

यह सुनकर यशोदा मैया हँसने लगीं, गोपी सैनों ही सैनों में यह कहती हुई कि "अच्छी बात है अबके आना मैं बताऊँगी

कौन चोर है।" उसको जाते देखकर श्यामसुन्दर ताली बजाकर हँसने लगे।

एक दिन एक गोपी के घर में गये। वह नई ही विवाही आयी थी, उसकी एक अंधी ददिया सास थी, एक उसका पति था और ससुर, सास उसकी नहीं थी। ददिया सास अंधी थी। श्यामसुन्दर उसके घर मे गये और बोले—"दादी! दादी! मुकुन्द भैया ने भाभी को खेत पर बुलाया है और यह कहा है कलेऊ के लिये मट्ठा और महेरी लेकर शीघ्र आवे।"

बुढ़िया ने कहा—"कौन है बेटा, कनुआ! तुझे वह कहाँ मिला?"

श्रीकृष्ण बोले—"दादी! अभी वहाँ से एक आदमी आया है। वह मुझसे कह गया है।"

बुढ़िया ने तुरन्त बहू को कलेऊ लेकर भेजा। नई बहू थी घूँघट मारकर चली गयी। अब तो मैदान साफ था। गोप हँसने लगे, कृष्ण ने मुख पर उँगली रखकर उन्हें चुप किया। फिर सोचा—"यहाँ मक्खन खायेंगे, तो खटर पटर होगी, बुढ़िया बड़ी घाघ है, हल्ला गुल्ला करेगी, अतः माखन को लेकर चलें बाहर एकान्त मे यमुना तट पर उडावेंगे।"

यही सब सोचकर चुपके-चुपके सब माखन के गोले केले के पत्तों में रख कर धोतियों में बाँध लिये। कौतुकी ही जो ठहरे। जिसमे आज का माखन था उस कमोरी का सब माखन निकालकर उसमें कीच भर दी। ऊपर के तनिक-सा मक्खन ल्हेस दिया। मक्खन लेकर नौ दो ग्यारह हुए।

वह कलेऊ देकर लौट आयी। रोटी बनाने लगी। दोपहर में उसके ससुर और पति भोजन करने आये। भोजन करते समय उन्होंने मक्खन माँगा। एक तो नई बहू सदा ही घूँघट मारे रहती है फिर ससुर के सामने तो हाथ भर लम्बा घूँघट मारती है। वह

घूँघट मारे ही मारे कमोरी को उठा लायी और हाथ से उसी कीच को परोसने लगी। ससुर ने कहा—"बहू सिर्रिनि हो गयी हैं क्या ? अरी! हम तो मक्खन माँग रहे हैं, तू कीच परोस रही है।"

यह सुनकर बहू बड़ी लज्जित हुई उसकी समझ में ही नहीं आया। अपनी ददिया सास के कान मे उसने कहा—"दादीजी! मैंने तो आज ही इसमे माखन रखा था, कीच कैसे हो गयी ?"

बुढ़िया सब समझ गयी और बोली—"अरी, बहू! वह नन्द का लाला आया था। मैं बहुत दिनों से सुन रही हूँ, वह घर-घर जाकर माखन की चोरी करता है। कुछ खटर-पटर तो मैंने सुनी थी। सोचा—चूहे होंगे, किन्तु यह क्या पता था। यह सब दो पैर का काला चूहा उत्पात मचा रहा है। तू और माखन की मटुकियों को तो देख।"

यह सुनकर बहू भीतर गयी। उसने देखा सब मटकियाँ खाली पड़ी हैं। माखन का तो नाम भी नहीं। बहू ने कहा—"दादीजी! माखन का तो नाम भी नहीं बचा।" बुढ़िया ने कहा—"तू जाकर नन्दरानी से कह आना कि तेरा लाल ऐसे उत्पात करता है।"

एक बुढ़िया थी बड़ी लड़ाकू, बिना लड़े उसकी रोटी ही नहीं पचती थी। एक दिन रोटी के बिना तो वह रह सकती थी। किन्तु लड़े बिना उससे नहीं रहा जाता था। एक ही उसकी बहू थी। उससे दिन भर काम कराती और स्वयं बैठी-बैठी बात बनाती रहती।

श्रीकृष्ण ने सोचा—"इस सूमड़ी के घर से माखन चुराना चाहिये। यही सोचकर वे इधर-उधर ताड़ लगाते रहे। जब उसकी बहू जल का कलशा और धोती लेकर यमुनाजी की ओर गयी, तभी आप थोड़ी देर पश्चात् आये और हाँपते-हाँपते बोले—

"ताई! ताई! बड़ी दुर्घटना हो गयी।"

चौंककर बुढ़िया बोली—"क्या घटना हो गई, बेटा ?"

श्यामसुन्दर बोले—"मैं अभी अभी यमुनाजी की ओर से आ रहा था, भाभी भी नहाकर यमुना का जल भरकर घड़े को सिर पर रखकर आ रही थी, पीछे से उस कारे मरखने साँड़ ने आकर उसके हुडु मारी, वह मुँह के बल गिर पडी। उसके दाँत टूट गये, मुख से रक्त बह रहा है, उसने रोते रोते मुझसे कहा—'मेरी सास को समाचार दे देना। सो मैं दौड़ा दौडा आया हूँ।" यह सुनकर तो बुढ़िया तुरन्त किवाड खुली की खुली छोड़कर भागी इधर मित्र मण्डली ने कृष्ण की चातुरी पर तुमुल हास्य ध्वनि की। सब ने माखन उड़ाया, दही खाया, बन्दरों और मोरों को खिलाया।

इधर से बुढ़िया दौड़ी-दौड़ी जा रही थी, उधर से बहू यमुना जल भरे आ रही थी, बुढ़िया ने अकबकाकर कहा—"बहू! कैसे गिर गयी। बहुत अधिक तो चोट नहीं लगी।"

बहू ने घूँघट में से ही कहा—"आपसे किसने कहा ? मैं तो गिरी नहीं।"

यह सुनकर बुढ़िया समझ गयी, यह सब नन्दलाल की तिकडम है, दौडकर वह घर मे गयी, तो वहाँ माखन की रीती मटुकियाँ पडी हैं सब समझ गयी, यह नन्द के लाल की करतूत है उसने डाँटकर अपनी बहू से कहा—"तू जा चटकुआ की माँ को भी साथ ले जा। नन्दरानी से जाकर कह तुम्हारा लाड़ला छोरा ऐसी-ऐसी धूर्तता करता है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! श्रीकृष्णचन्द्र ऐसी एक नहीं असख्यों मधुरातिमधुर लीलाएँ नित्य-प्रति ब्रज में करने लगे। जिसके यहाँ जो घटना हो जाती, वह सबसे उसका विस्तार पूर्वक वर्णन करती। श्रीकृष्ण अब खुलकर खेलने लगे। किसी के

घर में घुस जाते उसका माखन खाते, खा पीकर आते तो सोते हुए बच्चे को चुटकी से काट आते। कभी खाट पर सोये गोप गोपियों की चोटियों को बाँधकर ऊपर से रस्सी लपेट आते। कभी किसी लड़ाकू गोपी के घर की वस्तु उठाकर किसी दूसरे के घर में रख आते, अपनी वस्तु को देखकर वह लड़ती। दोनों में लड़ाई होती तो श्रीकृष्ण खड़े-खड़े हँसते रहते। इस प्रकार जब वे अत्यधिक उपद्रव करने लगे, तो गोपिकाओं ने सम्मति की, कि नन्दरानी के समीप चलकर उलाहना देना चाहिये। इसी उद्देश्य से एक दिन सब सखियाँ मिलकर नन्द-भवन में मैया को उपालम्भ देने के लिये चलीं। उनके मन में बड़ा मोद था। वे हृदय से तो चाहती थीं, श्रीकृष्ण हमसे ऐसी ही चञ्चलता सदा करते रहें, किन्तु ऊपर से बनावटी रोष दिखाकर इसी बहाने मैया को मुदित करने की इच्छा से वे मैया को कृष्ण की करतूतें सुनाने के लिये गयी थीं।"

छप्पय

ब्रजवनिता श्रीकृष्ण ललित लीलनि पै रीझीं।
जब लाला अति लगे करन तब कछु कछु खीझीं॥
मनमहँ तो अति मोद क्रोधयुत बदन बनायो।
यशुमतिढिंग चलि कहहिं सबनि मिलि मतोकमायो॥
सजि बजिकें सब मिलि मुदित, उपालम दैवे चलीं।
गोकुल की सब गलिनि महँ, खिलीं मनहुँ पंकजकलीं॥

गोपियों का उपालम्भ

(८७४)

वत्सान् मुञ्चन् क्वचिदसमये क्रोशस जातहासः
स्तेय स्वाद्वत्यथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः ।
मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेन्नात्ति भाण्ड भिनत्ति
द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान् ॥*
(श्रीमा० १० स्क० ८ अ० २६ श्लोक)

छप्पय

लखि गोपिनिकूँ मातु कुशल पूछी बैठाई ।
करि पालागन सबनि कृष्ण की बात चलाई ॥
नहिँ हम ब्रजमहँ रहैं कान्ह अब बहुत सतावे ।
घर घर चोरी करे नित्य तकरार मचावे ॥
दूध, दही, नवनीत, घृत, चोरि सखन सँग खातु है ।
कहनी अनकहनी कहे, ढीठ भयो सतरातु है ॥

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! गोपियाँ आकर यशोदा मैया को उराहना देती हुई कह रही हैं—"मैया ! तुम्हारा लाला असमय में बछड़े छोड़ देता है । डाँटने पर हँस जाता है चोरी के दूध दही को रुचि पूर्वक खाता है । चोरी के विविध प्रकार के उपाय रचता है । बन्दरों को खिलाता है । यदि बन्दर भी नहीं खाते तो बर्तनों को फोड़ देता है । यदि कोई वस्तु मिलती नहीं, तो घर के ऊपर क्रोध करता है । बालकों को रुलाकर भग जाता है ।"

प्रेम के उपालम्भ में कहने वाले को सुनने वाले को और जिसका उपालम्भ किया जाता है उसको, इस प्रकार तीनों को ही सुख होता है। प्रेम एक ऐसा पदार्थ है, कि जिसमें भी मिल जायगा उसी को मधुर बना देगा। जैसे बुद्धिमान् जिस क्षेत्र में भी बुद्धि का उपयोग करेगा, उसी में उसे ख्यति प्राप्ति होगी, यही दशा प्रेम की है। बुराई करना सुनना सबसे बड़ा पाप है, किन्तु प्रेमपूर्वक की हुई बुराई से बढ़कर संसार में कोई भी बड़ा पुण्य नहीं है। श्रीकृष्ण वेद की सारगर्भित स्तुतियों से उतने प्रसन्न नहीं होते, जितने गोकुल की गँवार ग्वालिनियों की गालियों से प्रसन्न होते हैं। गोपियाँ उन्हें धूर्त, कितव, ठग, वञ्चक, चोर तथा हृदय-हीन आदि कठोर शब्द कहती हैं, तो वे कृतकृत्य हो जाते हैं। प्रेम की ऐसी ही टेढ़ी गति है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! सज-बजकर गोपियाँ नन्द-भवन की ओर चलीं, नंदरानी ने दूर से ही झुण्ड की झुण्ड गोपियों को अपने भवन की ओर आते देखा। वे सब भाँति-भाँति के सुवर्ण आदि के मणि जटित आभूषण पहिने और रंग बिरंगी ओढ़-नियों को ओढ़े इन्द्र धनुष में चमकती हुई बिजली के समान दिखायी देती थीं। यशोदा मैया ने तुरन्त दासियों से जाजिम गलीचे बिछवाये। शीघ्रता से पान लगवाये और द्वार पर खड़ी हो गयीं। हँसती हुई नन्दरानी ने सबका स्वागत सत्कार किया। सब नन्दरानी के पाइन लगीं सबको सुहाग अमर रहने का बूढ़-बुढ़ेली होने का तथा बच्चा होने का आशीर्वाद देकर नन्दरानी बैठ गयीं। दासियों ने चाँदी के थाल में पान सुपारी इलायची आदि लाकर सबके सम्मुख रखी। कुशल प्रश्न और स्वागत शिष्टाचार के अनन्तर यशोदा मैया ने कहा—"आज तुम एक साथ मिलकर किसी काम के लिये तो नहीं आयी हो? यदि कोई काम हो, तुम्हें कोई कष्ट हो, तो मुझसे कहो।"

उन सब गोपियों में जो सबसे अधिक चंचल तथा वाचाल थी, वह बोली—'रानीजी! हम आपसे अन्तिम विदा लेने और आपको पालागन करने सब मिलकर आयी हैं।"

आश्चर्य सभ्रम और चिन्ता के स्वर मे नन्दरानी ने पूछा—"क्यों, क्यो क्या बात है? ब्रज में तुम्हें क्या कष्ट है, तुम्हे किसी ने सताया हो या कष्ट दिया हो, तो मुझसे कहो ब्रजराज से कहकर मैं उसे दण्ड दिलाऊँगी।"

उस गोपी ने कहा—"आप उसे दण्ड दिलाने में असमर्थ हैं। ब्रजराज भी उसे दण्ड नहीं दे सकत।"

नन्दरानी ने आश्चर्य के साथ कहा—"ब्रज में ऐसा कौन बली प्रकट हो गया, जिसे ब्रजराज भी दण्ड नहीं दे सकते। उसका नाम तो सुनूँ।"

उनमें से एक गोपी बोली—"वह बली और कोई नहीं तुम्हारे लडैते लाला कृष्णचन्द्र ही हैं।"

मैया ने कहा—"मेरा बच्चा तो छोटा सा है, अभी तो वह भली भाँति बोलना भी नहीं जानता, उसने तुम्हारा कौन-सा अपराध किया है।"

एक गोपी बोली—"वह छोटा नहीं बडा खोटा है। तुम उसकी करतूतों को सुनोगी तो उसके खोटेपन को समझ सकोगी। तुम्हारे सामने तो वह भोरा बन जाता है।"

मैया बोलीं—"सुनूँ भी तो, क्या ऊधम करता है?"

गोपी बोलीं—"देखो, मैया! हमारे बछडों को छोड देता है।"

मैया बोलीं—"तो यह क्या बुरा करता है, दूध दुहने के समय तुम भी तो बछडों को छोडती हो। एक तो तुम्हारा काम कर देता है, और फिर ऊपर से तुम उसकी शिकायत भी करती हो।"

गोपी बोली—"अरी मैया! दूध दुहने के समय बछड़ों को

छोड़े तब तो कोई बात ही नहीं, वह तो असमय में बछड़ों को छोड़ देता है। जब दूध दुहने का समय नहीं होता तब सब बछड़ों को छोड़कर भाग जाता है। बछड़े सब दूध पी जाते हैं, हम सब देखती की देखती ही रह जाती हैं। फिर अपना चुपके से घरों में जाकर माखन उड़ाता है।"

मैया ने कहा—"अरी वीरो! तुम्हारा ही बच्चा है, कोई बात नहीं उसका स्वभाव ही चञ्चल है, तुम उसे तनिक डाँट डपट दिया करो।"

एक गोपी मुँह मटकाकर बोली—"अरी, मैया! तुम डाँटने को कहती हो वह स्वयं ही ऐसी बन्दर घुड़की देता है, कि अच्छे अच्छे उससे डर जाते हैं। जब हम अत्यन्त बिगड़ती हैं, तो उसी समय ऐसा खिलखिलाकर हँसता है, कि हमारा सब क्रोध कपूर की भाँति उड़ जाता है। रोकने पर भी हमारी हँसी नहीं रुकती, इसकी हँसी में कुछ ऐसा जादू है, कि कोई इसके सम्मुख क्रोध कर ही नहीं सकती। हँसकर यह हानि करता है।"

नन्दरानी बोलीं—"देखो, तुम सब जानती ही हो मेरे यहाँ माखन की तो कुछ कमी नहीं। बच्चा ही है, कभी माखन को देखकर मन चल जाता होगा। कौड़ी भर इसके हाथ पर रख दिया करो।"

गोपी बोली—"हाय यशोदारानी! आप भी ऐसी बात कहती हैं। नारायण साक्षी हैं, वह पेट भर के खा ले। सब तुम्हारा ही तो है। माखन को हम मना तो करती नहीं, किन्तु देने से वह माखन खाता ही नहीं। कहता है—"मुझे माखन अच्छा ही नहीं लगता है।" किन्तु उसको जब चोरी कर ले जाता है, तो यों ही मट्ट-मट्ट खा जाता है। चोरी का माखन उसे बहुत स्वादिष्ट लगता है। दूध को पी जाता है, माखन को खा जाता है। दही को सपोट जाता है।"

मैया बोलीं—"एक काम करो, दूध, दही, मक्खन तथा घी आदि रसों को ऊँचे छींके पर रख दिया करो।"

गोपियों ने कहा—"मैया! यह हम सब करके देख चुकी हैं। तुम्हारा लाला चोर विद्या में तो इतना निपुण हो गया है, कि अच्छे अच्छों के कान काटता है। बिलौटा की भाँति ऐसी इसकी नाक है, कि दूर से ही सूँघकर जान लेता है, किस बर्तन में दूध है, किसमें दही है और किसमें नवनीत है। ऐसी इसने छड़ी बना रखी है, कि दूध को देखते ही उसमें छेदकर देता है। दूध धार से गिरता है सब मुख लगा लगाकर पी जाते हैं। माखन उतारना हुआ तो एक लड़के के ऊपर दूसरा, दूसरे के ऊपर तीसरा ऐसे चढ़कर उसे उतार लेते हैं और खा जाते हैं।"

मैया ने कहा—"अरी, बीर! खाते ही तो हैं। सब बच्चे अपने ही हैं। खा लेने दिया करो।"

गोपी ने कहा—"खाने में तो कुछ आपत्ति नहीं। पेट भर के स्वयं खा ले सखाओं को खिला दे, किन्तु वह तो सदावर्त खोल देता है। बन्दरों को इसने ऐसा सिखा पढ़ा रखा है, कि उसे देखते ही सब बन्दर इकट्ठे हो जाते हैं और लँगतार बनाकर बैठ जाते हैं। यह सबको माखन के लौंदे फेंकता है। पेट ही तो ठहरा बन्दर भी कहाँ तक खाँय। उन पर भी नहीं खाया जाता। जब बन्दर भी नहीं खाते तब तो गाली भी देने लगता है। कैसी सूमड़ी का माखन है मेरे बानर भी इसे नहीं खाते। यह कहकर क्रोध में भरकर वह दूध, दही, घृत तथा नवनीत के बर्तनों को वहीं आँगन में फोड़ने लगता है।"

यशोदा मैया ने कहा—"तुम एक काम करो घर में रखा ही मत करो। किसी लोहे की पेटिकामें रखकर बन्द कर दिया करो, कहीं छिपा दिया करो।"

गोपी बोलीं—"यह सब भी करके देख लिया है, इसका भी

कोई परिणाम नहीं हुआ। पहिले सखाओं के संग घर को ढँढता है, जब घर में कुछ नहीं मिलता, तो घर के ही ऊपर क्रोध करता है। कहता है—"यह घर का बड़ा दुष्ट है, अशुभ है, जिस घर में दूध, दही, घृत, नवनीत नहीं उस घर को तो व्रज में रहने का अधिकार ही नहीं।" ऐसा कहकर छप्पड़ में आग लगा देता है जब घर जलने लगता है, तो भाग जाता है, अथवा घरवालों पर ही कुपित हो जाता है, बच्चा सोता होता तो उसे नोंचकर भाग जाता है। सोते समय खूँटा से चुटियाँ बाँध जाता है हाथों को रस्सी से बाँध जाता है, मुख में कपड़े ठूँस जाता है।"

यशोदा मैया बोलीं—"अरे, गोपियो! तुम इतनी बड़ी-बड़ी युवती ठहरीं मेरा छोटा-सा बच्चा है। तुम यौवन के मद में मद-माती होकर मेरे बच्चे से छेड़छाड़ करती होगी। मेरा बच्चा कुछ चपल तो अवश्य है, किन्तु जितनी बात तुम बढ़ा चढ़ाकर कहती हो, उन पर मुझे विश्वास नहीं होता। ताली तो दोनों हाथों से ही बजती है। तुम उससे छेड़छाड़ करना छोड़ दो। अपने आप सुधर जायगा।"

गोपी बोलीं—"मैया! यह तो हम पहिले ही जानती थीं, कि तू अपने पूत का ही पक्ष लेगी हमारी बात पर विश्वास न करेगी। अच्छा विश्वास मत करे, पहिले अपने बच्चे की सब बातें सुन तो ले सुनकर तुझे जो उचित जान पड़े वह करना।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! ऐसा कहकर वह माता से श्रीकृष्ण की और भी चञ्चलता की बहुत बातें बताने लगीं। उनका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

—०—

छप्पय

चुपके घर महँ घुसे धरयो दधि माखन पावै।
सगी साथी मोर बानरनि तुरत खवावै॥
यदि न मिलहि नवनीत कुपित ह्वै मटुकी फोरै।
पटकि पुरातन पात्र लाइ आँगनमहँ तोरै॥
पकरैं गोपी तुरत तो, लै छोरनि सँग भगतु है।
घरमहँ आगि लगाइकें, मारि ठठाको हँसतु है॥

श्रीकृष्ण के उत्पात

[८७५]

हस्ताग्राह्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यै-
श्छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्यभाण्डेषु तद्वित् ।
ध्वान्तागारे धृतमणिगणं स्वाङ्गमर्थप्रदीपम्
काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः ॥*

(श्री भा० १० स्क० ८ अ० ३० श्लो०)

छप्पय

जिह छोटो है नहीं छोकरा खोटो भारी ।
मुँहफट अति ई भयो देइ छूटत ई गारी ॥
छींके पै चढ़ि जाइ जानि दधि माखन जावे ।
चोरी विद्या निपुण विविध विधि युक्ति चलावे ॥
कबहूँ बाबाजी बने, छोरी हू बनि जात है ।
मूसे बिल्ली के सरिस, घुसि घर महँ दधि खात है ॥

सुख सुनाने से बढ़ता है, दुःख सुनाने से घटता है। इस मनुष्य जंतु की ऐसी रचना भगवान् ने की है, कि इसे सुनाने की आवश्य-

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! गोपियाँ यशोदा मैया से कह रही हैं—"मैया ! यदि दही माखन ऊँचे स्थान पर हो, इसका हाथ नहीं पहुँचता, तो बड़ी-बड़ी युक्ति करता है, चौकी ऊखल आदि रखकर उन तक पहुँचता है, फिर भी नहीं पा सकता तो छीकों में रखी उन सब भाँडों की वस्तुओं को जानकर उनमें छिद्र कर देता है। यदि अँधेरी

कता बनी ही रहती है। हमें अपने मन की बात अपने सगे संबंधी प्रेमी को सुनाने में सुख होता है। अपने भावों को व्यक्त करने में एक प्रकार की सुखानुभूति होती है। कोई बोलकर कोई लिखकर अपने भावों को व्यक्त करते हैं जिससे हम प्यार करते हैं, उसके सम्बन्ध में बिना कहे हम पर रहा नहीं जाता। सीधे कहें, टेढ़े कहें, घुमाकर कहें, फिराकर कहें, कहना तो होगा ही। एक वाणी ऐसा होती है, कि शब्दों से तो वह स्तुति प्रकट होती है, किन्तु वास्तव में वह निन्दा है। एक कथन ऐसा होता है, कि सुनने में तो वह गाली के सदृश है। किन्तु भीतर उसमे अनन्त स्नेह भरा हुआ है। कामी पुरुष कामिनियों की कथाएँ कहते हैं। भक्त भगवान् की कथा कहते हैं। ससारी लोग संसार की बातें करते हैं। वे कहने वाले धन्य हैं। जो अपने प्रियतम की ही कथा कहते हैं, वे सुनने वाले भी धन्य हैं, जो बड़े चाव से अत्यन्त उत्साह से अपने प्यारे की कथाओं को सुनते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! गोपिकाएँ यशोदा मैया के सम्मुख श्रीकृष्ण के उत्पातों का वर्णन कर रहीं थीं। इतने में ही श्यामसुन्दर आकर माता की गोदी में बैठ गये।" अब क्या था, गोपिकाओं का उत्साह और भी बढ़ गया। श्याम माता की छाती से सटे हुए थे; उसके अंचल में मुख छिपाये थे। कभी-कभी माता की दृष्टि बचाकर उनकी नीली साड़ी में से गोपिकाओं को टेढ़ी दृष्टि से देखते थे, उस समय ऐसा प्रतीत होता था, मानों घन में से शरद का पूर्णचन्द्र झाँक रहा हो। हृदय तो

कोठरी मे रख दें तो मणि जटित आभूषण जो इसके अंग मे हैं, वे ही प्रकाशित कर देते हैं मणियों से क्या? इसका अंग ही ऐसा प्रकाशवान् है, कि दीपक का काम देता है। ये सब उत्पात यह तभी करता है, जब हम सब अपने घर के काम धन्धों में लगी रहती हैं।"

सबका प्रेम के कारण उमँग रहा था, वे यशोदाजी से आगे कहने लगीं।

एक गोपी ने कहा—"नँदरानी ! तुम्हारे लाल की एक बात हो, तो बतायी जाय। ये तो नित्य नयी-नयी चोरी की लीलाएँ करते हैं। एक दिन मैं कण्डा पाथने गयी थी। मैं गोबर इकट्ठा कर रही थी, कि मेरे पास ये लालजी आये और बोले—"भाभी ! राम राम !"

मैंने कहा—"हजारी उम्र हो लालजी ! कहो किस बात की राम राम है ?"

आप बोले—"क्या राम राम करना भी पाप है क्या ?"

मैंने कहा—"पाप तो कुछ नहीं, किन्तु तुम्हारी राम राम कुछ रहस्यभरी है। कहो, आज किसके घर पर चढ़ाई है ?"

भोरी सूरत बनाकर बोले—"कैसी चढ़ाई भाभी !"

मैंने कहा—"बड़े भोरे बने हो, कहो आज कहीं चोरी करने नहीं गये ?"

बस इतना सुनना था कि बिगड़ गये, बोले—"तू चोट्टी तेरा खसम चोट्टा, हमने तेरी कब चोरी की ?"

मैंने कहा—"मैं तुम्हारी बन्दरघुड़की में नहीं आने की।"

तब बोले—"अब तक तो हम चोरी करते नहीं थे, किन्तु अब तैंने हमें चोर कहा है, तो अवश्य चोरी करेंगे।"

मैंने कहा—"देखी जायगी ! तब से मैं सावधान रहने लगी। दूसरे दिन मैं बैठी थी, कि एक छोरी आयी और बोली—"मामी ! तुम्हे नानी बुला रही है ?"

मैंने कहा—"बेटी ! तू कौन है ?"

उसने कहा—"अरी, मामी तू जानती नहीं, पीपलवारी स्यामो मेरी नानी लगती है।"

मैंने कहा तू बसन्ती की बेटी है। अच्छा मैं तेरी नानी के

पास जाती हूँ, तू यहीं रहना। एक कारो सो छोरा नन्द को लाला घर में न जाने पावे तू यहाँ देखना। घर में बहू अकेली है।"

छोरी वडो चतुर मालूम पडती थी। उसने कहा—"मामी! मैं कल ही अपने गाँव से आयी हूँ, मैंने सुना है नन्द का लाला माखन की चोरी करता है, मैं उसे जानती हूँ। तू जब तक न लौटेगी, तब तक मैं द्वार पर ही रहूँगी।"

यह सुनकर मैं चली गयी। जब मैं श्यामो चाची के घर मे पहुँची और उससे पूछा—"मुझे क्यों बुलाया है।" तो उसने कहा—"मैंने तो नहीं बुलाया।" मैंने कहा—"अभी तो वसती बीवी की छोरी आपने भेजी थी, मैं ता उसे घर पर बैठा कर आयी हूँ।"

वह बोली—"बहू तैंने भाँग तो नहीं पी ली, वसती तो अपने ससुराल है, उसके छोरी कहाँ है, एक छोटा-सा छोरा है।"

मैं समझ गयी, यह सब उसी नटखट की चाल है। दौडी-दौडी घर आयी, तो क्या देखती हूँ, सब ग्वाल वाल माखन उडा रहे हैं, वह छोरी बन्दरो को लौंदे के लौंदे फेंक रही है। मैंने दूर से ही कहा—"दारी के, खडे तो रहो।" उसी समय सींग दिखाकर फरिया उतारकर यही नटखट बोला—"भाभी! राम राम! अब फिर तो चोर न कहेगी।"

यह कहकर सखाओं के साथ भाग गया। आकर मैने घर में देखा। दूध, दही, घी के सब बासन रीते पड़े हैं। बालक पलना पर पडा रो रहा है। बहू एक खम्भे से बँधी है। तब मैं समझ गयी, छोरी नहीं छोरा था और यही तुम्हारा भोरा घर फोरा था।"

नन्दरानी ने हँसकर कहा—"तू कैसी लुगाई है तुझे छोरा छोरी की पहचान नहीं। मेरे छोरा को छोरी बताती है।"

इस पर एक दूसरी बोली—"तुम्हारा यह बालक न छोरी है न छोरा यह तो घर फोरा है?"

यशोदा मैया ने कहा—"तेरा इसने कब घर फोरा है।"

वह बोली—"मेरी भी कहानी सुनो। पिछले माघ महीने में ही मेरा गौना होकर आया है। तीन वर्ष पहिले जब मैं व्याह के आयी थी, तब तुम्हारी गोदी में इन्हे देखा था। अब के जब आयी तभी सासूजी ने कहा—"बहू, यशोदा के लाल से सावधान रहना, वह सबका माखन चुपके-चुपके खा जाता है। दूध पी जाता है, दही को चाट जाता है।"

मैंने कहा—"माँ जी! आप निश्चिन्त रहे। मैंने अपने माइके में ही नन्दलाल की चोरी की बातें सुन रखी हैं। मेरे यहाँ वे चोरी नहीं कर सकते।"

सास ने कहा—"बहू वह बड़ा चंट है। ऐसा काइयाँ है कि, चुपके से घर में घुस जाता है, उसे कोई पकड़ नहीं सकता।"

मैंने कहा—"अम्माजी! मेरे घर में वह आया तो मैं पकड़ लूँगी।"

न जाने क्यों ये आस पास चोरी करने आते, किन्तु मेरे घर में नहीं आते, मुझे गर्व था, कि ये मेरी चोरी न कर सकेंगे।"

एक दिन मैंने देखा ये अकेले आ रहे हैं, इनके चंचल नेत्र ही बता रहे थे, कि ये किसी ताड़ में घूम रहे हैं। मेरी सास खेत पर गयी थी, मैं किवाड़ खोलकर एक ओर छिप गयी। इन्होंने इधर देखा उधर देखा, कुछ देर खाँसते मठारते रहे, फिर बोले—"चाची नहीं है क्या?" मैं समझ गयी आज ये इसी ताड़ में हैं। मैं कुछ न बोली। फिर बोले—"भाभी! किवाड़ क्यों खोल रखी हैं?"

मैं छिपी बैठी रही। ये चुपके-चुपके घर में घुसे माखन की कमोरी मैंने नीचे ही रख दी थी। तुरन्त इन्होंने गपफा मारा। कुछ लौंदे हाथ में लिये और इधर-उधर देखते हुए ज्यों ही ये भागना चाहते थे, त्यों ही आकर मैंने पट से हाथ पकड़ लिया

और बोली—"कहो लालजी ! क्या बात है, तुमने और गोपियों का घर समझ रखा है क्या ?"

यह सुनकर लालजी सटपटा गये और रोमनी सूरत बनाकर बोले—"भाभी ! मैं तेरे हाथ जोड़ता हूँ, पैर पूजता हूँ, हा हा खाता हूँ, फिर कभी तेरे घर न आऊँगा, तू मुझे छोड़ दे।"

मैंने कहा—"लालाजी ! अब चाहे, तुम एँ करो चाहे चैं करो। मेरी सास को आने दो जब तक मैं तुम्हें तुम्हारी माँ के पास न ले जाऊँगी तब तक छोड़ूँगी नहीं।"

यह सुनकर ये मेरी अनुनय विनय करके बोले—भाभी ! तेरी सूँ तेरे बोछिया की सूँ, अब मैं कभी न आऊँगा।"

मैं तो पकड़कर तुम्हारे पास लाने वाली थी, इन्हें रोते देखकर मुझे दया तो आ रही थी, किन्तु मैंने छोड़ा नहीं कहा तुम्हें बाँधकर रखूँगी। यह सोचकर मैंने इन्हें एक खमे से बाँध दिया। कुछ देर मे बोले—"भाभी ! तुझे दया भी नहीं लगती। मैं भागूँगा थोड़े ही, देख मेरे हाथ कैसे कस के बाँध दिये हैं, तनिक ढीले कर दे।" मुझे दया आ गयी जाकर देखा हाथ लाल हो गये थे मैंने खोल दिया। तब बड़े प्यार से बोले—"भाभी तू बाँधना नहीं जानती।"

मैंने कहा—"तुम तो जानते हो, लाओ सिखा दो।"

तब बोले—"देख, ऐसे गाँठ मारी कि जिससे बहुत भिचने न पावे। यों एक चक्कर दिया, यों दो दिये और तीन बस, ऐसे मुझे कसकर बाँध दिया।" मैंने कहा—"हाँ, अब समझ गयी खोल दो।" तब आप बोले—"तेरा या तेरे खसम का मैं नौकर थोड़े ही हूँ जो खोल दूँ। खुलवा अपने दुलहा से।" यों कह कर एक माखन का लोंदा मेरे सब मुख में लपेटकर भाग गये।"

मेरी सास लौटकर आयी उन्होंने कहा—"बहू ! बहू ! अभी

तक रोटी नहीं बनायी। चौके में ये कुत्ते कैसे घुस रहे हैं। मारे लज्जा के मेरे मुख से तो शब्द भी नहीं निकला था। मुझे बँधा देखकर सास सब समझ गयीं और कहने लगीं—"अवश्य ही यह श्रीकृष्ण की करतूत है, तू उसके फंदे मे कैसे फँस गयी। तू तो डींग मारती थी, कि मैं कभी उसके चक्कर में न आऊँगी। यह सुनकर मैं लज्जित हुई सास ने मेरा बन्धन खोल दिया।"

यशोदा मैया ने कहा—"तुम भी तो मेरे बच्चे को बाँधती हो। जो दूसरे को बाँधेगा, उसे एक दिन बँधना ही होगा। छेड छाड तो तुम ही पहिले से करती हो।"

इस पर एक तीसरी बोली—"नदरानी! तुम तो विश्वास करती नहीं। यह ऐसे ऐसे बहाने बनाता है, कि हमें विवश होकर विश्वास करना होता है। एक दिन दौरा-दौरा मेरे पास आया और बोला—"चाची! नागा बाबाजियों की हमारे यहाँ एक बडी भारी जमात आयी है। मैया ने कहा है, कुछ दही माखन मैं तेरे घर से भी ले आऊँ, घर घर से मँगाया है।"

मैंने कहा—"लालाजी! दही माखन की क्या कमी है। नद रानी ने महात्माओं के लिये मँगाया है तो ले जाओ।"

यह सुनकर रैंदा, पैंदा, सैंदा, सटकुआ मटकुआ, मटकी उठाकर चले। मेरे घर के पास ही एक सघन वटवृक्ष है। उसके नीचे ही बैठकर अपने सब साथियों को बाँट रहा था, स्वयं भी खा रहा था। वे सब छोटे-छोटे बालक धोती भी नहीं बाँधे थे। मैं उधर पानी भरने जा रही थी। वट के नीचे पगति देखकर मैंने इनसे कहा—"कहो लालजी, तुम तो नागा बाबाजियों के लिये दही माखन लाये थे, यहाँ तो तुम आपस में ही उडा रहे हो?"

ये डाँटकर बोले—"तेरी आँखें फूट गयी हैं, क्या देखती नहीं। ये सब परमहंस नागा बाबा ही तो हैं। भोग लग रहा है,

तू भी चाहे प्रसाद ले जा। तुझे वर माँगना हो वर माँग ले।" हे रानीजी! इस प्रकार के ये उपद्रव करते हैं।"

यह सुनकर फिर चौथी गोपी बोली—'मैया! तुम्हारी गोद में तो लालजी कैसे भोरे बने बैठे हैं। किन्तु तुम इन्हें चोरी करते देखो, तो हँसते हँसते लोट पोट हो जाओगी। एक दिन मैं सो रही थी, वे उठकर खिरक में चले गये थे। न जाने ये सखाओं के संग कहाँ छिपे थे चुपके से घर में घुस आये। मुझे देखकर फुसुर फुसुर करके बातें करने लगे। मैं समझ गयी माखनचोर

आ गया। मैं और भी कपड़ा ओढ़कर सो गयी। तुरन्त ये इधर-उधर माखन खोजने लगे। पूरी बानरी सेना साथ थी, जब इधर-उधर माखन न मिला तो ऊपर देखने लगे। एक ने कहा—"देखो, चोट्टी ने कितना ऊँचा टाँग दिया है।" उसी समय ये बोले—"सारे! हौले हौले बोलो। जाग पड़ी तो सब गुड़ गोबर हो जायगा।" यह सुनकर सब चुप हो गये। एक ने कहा—"कनुआ! बिना एक के ऊपर एक ऐसे चार जब तक न चढ़ेंगे तब तक काम चलेगा नहीं।" इस पर ये ही बोले—"सारे! तू ही पहिले घोड़ा बन।" वह कुछ बड़ा था वही घोडा बना उसके ऊपर दूसरा और दूसरे के ऊपर तीसरा ऐसे चढ़े। फिर भी मटुकिया हाथ नहीं आयी। तब धीरे से लालजी बोले—"मटुकिया में छेद कर दो, किन्तु फटट होने से यह गोपी जाग पड़ेगी इसलिये पहिले इसे कसकर बाँध दो।"

मैं सब पड़ी सुन रही थी, मैंने सोचा—"ये उत्पाती छोकरे मुझे बाँध देंगे, तो मैं तो कहीं की भी न रहूँगी। यह सोचकर मैं उठी और दौड़कर किवाड़ बन्द कर दी।" तब तो ये सब घबड़ाये अब दूध दही खाना तो भूल गये। इन्होंने एक लड़के के शरीर पर सीरा लगाकर उस पर धुनी हुई रुई चिपका दी, मुख पर बने की कलौंच लपेट दी। एक हण्डी फोडकर उसका खप्पर बनाकर हाथ में दे दिया और द्वार पर खड़े हो गये। तब तक मैं अपने अडोस पडोस की और गोपियों को भी बुला लायी। मेरी इच्छा थी, किसी प्रकार इन्हें पकड कर तुम्हारे पास लाती।"

भीतर से ही ये कहने लगे—"चाची! खोल दे अब फिर कभी न आवेंगे।"

हम बहुत-सी गोपियाँ थीं, हमने सोचा हमसे ये भागकर कहाँ जायँगे। मैंने किवाड़ खोली तो ये सब एक साथ चिल्लाने

लगे—"भूत आया भूत आया।" जिसे इन लोगों ने भूत बना रखा था, वह हू हू करके हम लोगों की ओर दौड़ा हम तो सबकी सब डरकर इधर-उधर गिर पड़ीं। ये सबके सब हँसते हुए भाग गये। इस प्रकार अनेक भाँति के यह स्वाँग बनाना जानते हैं। कभी छोरी बन जाते हैं, कभी बाबाजी बन जाते हैं और कभी भूत बन जाते हैं।"

यशोदा मैया ने कहा—"बहू! तैंने सपना देखा होगा, मेरा छोटा सा लाला ये सब बातें क्या जाने। सपने में ही तू जाग गयी होगी। इतना छोटा बच्चा अँधेरे में घर की वस्तुओं को कैसे ढूँढ सकता है।"

इस पर एक अन्य सखी बोली—"अब रानी! तुम हम सब को तो झूठी समझती हो इसके लिये अँधेरा उजेला एक सा ही है तुमने जो इसे मणियों की मालाएँ, मणिजटित आभूषण पहिना रखे हैं, इनसे अँधेरे घर में भी प्रकाश हो जाता है, दीपकों से भी अधिक प्रकाश प्रतीत होने लगता है।"

मैया ने कहा—"जब तुम सब ही कहती हो, तो लो, मैं इसके शरीर से सभी आभूषणों को उतारे लेती हूँ।"

इस पर कई गोपियों ने मैया को रोकते हुए कहा—"मैया! तुझे हमारी शपथ है, जो बच्चे के आभूषणों में हाथ भी लगाया तो बच्चे को आभूषणों से हीन करना अशुभ होता है, तुम इसके आभूषणों को उतार भी लो, तो इसका श्रीअङ्ग ही ऐसा दिव्य प्रकाशमान है, कि अँधेरे में भी उजेला कर देता है। अन्धकार तो इसे देखते ही डरकर भग जाता है। मैया! इसलिये आभूषणों को तू मत उतार।"

मैया ने कहा—"तुम सब ही आ-आकर मुझे उलाहना देती हो, मैं तो कहती हूँ, मेरा भोरा बच्चा इन सब बातों को क्या जाने।"

उस पर गोपी बोली—"नन्दरानी ! तुम विश्वास करो, यह घर-घर जाकर चोरी करता है और सबको छकाता है।"

यशोदा रानी ने कहा—"मैं तो तब विश्वास करूँगी, जब तुम इसे पकड़कर मेरे पास लाओ। वैसे तो जो चाहे जिसे चोरी लगा दे।"

इस पर एक गोपी ने कहा—"अच्छी बात है, मैया! मैं श्याम को पकड़कर तुम्हारे पास लाऊँगी।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब बहुत-सी बातें बताने पर भी यशोदा मैया को विश्वास न हुआ, तो कुछ गोपियाँ और भी बातें बताने लगीं।"

छप्पय

कबहूँ भिरके आइ हमें ही चोर बतावे।
रानी तेरो पूत भूत बनि कबहुँ डरावे॥
बन्दर लावे पकरि कहे जो ताकूँ काटे।
खिलखिलाइ हँसि जाइ जबहिँ हम जाकूँ डाटे॥
चितवन महँ टोना भरयो, बानी मिसरी सम मधुर।
करे काज अन्याय के, तोऊ लागे अति सुघर

श्रीकृष्ण को अपराधी सिद्ध करने का प्रयत्न

[८७६]

एवं धार्ष्ट्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ
स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथाऽऽस्ते ।
इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभि-
र्व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छत् ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ८ अ० ३१ श्लोक)

छप्पय

मैया ! कहँ लौं कहैं बात कछु कहत न आवै ।
निशि दिन चोरी युक्ति सोचि उत्पात मचावै ॥
मुख तैं सीटी मार बाल गोपाल समेटे ।
देखे आँगन लिप्यो वहीं टट्टी कूँ बैठे ॥
खाइ, बिगारे, उलीचे, बर्तन फोरे हँसि परै ।
त्यागि देहि मल मूत्र हू, घर आँगन मैलो करै ॥

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! गोपिकायें उलाहना देती हुई यशोदा मैया से कह रही हैं—"नन्दरानी ! यह तुम्हारा लाला इस प्रकार की अनेकों बार धृष्टता करता है । हमारे स्वच्छ घरों में मल-मूत्र भी कर देता है । यह नित नूतन चोरी सम्बन्धी ही आविष्कारों का अन्वेषण करता रहता है, किन्तु इस समय कैसा सरल बना है, मानो कुछ जानता ही नहीं ।" इस प्रकार गोपियाँ यशोदाजी को सुनाती भी जाती थीं

काम कोई न बुरा है न अच्छा है, प्राणी न कोई बुरा है न अच्छा, सभी भगवान् के बनाये हुए हैं। अच्छे बुरे की कल्पना हमने अपने स्वार्थ से अपने अपने कारण कर रखी है। जिसमें अपनापन हो जाता है, उसमें अच्छाई ही अच्छाई दिखाई देती है। जो पराया प्रतीत होता है, उसके गुण भी अवगुण से लगते हैं। जीव का जहाँ अपनापन हो जाता है, वहीं वह बँध जाता है। अपने की सब बातें सहनी पड़ती हैं, रोकर सहो चाहे हँसकर सहो, बिना सहे निर्वाह नहीं, क्योंकि वह अपना जो है। अपने हाथ की बनी रोटी, अपने खेत की उत्पन्न हुई वस्तु अस्वादिष्ट होने पर भी स्वादिष्ट लगती है। जीव तभी तक दुःख का अनुभव करता है, जब तक संसार को अपना समझता है, क्योंकि संसार दुःखमय है, जहाँ इसने श्रीकृष्ण को अपना समझ लिया, उनमें अपनापन स्थापित कर लिया, तहाँ दुःख का नाम भी न रहेगा। प्रत्येक घटना में सुख का अनुभव करेगा, क्योंकि वे श्रीहरि सुख-स्वरूप हैं। उनकी प्रत्येक चेष्टा सुखप्रद है, आनन्ददायिनी है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! आप नेत्र बन्द करके ध्यान करें। बड़ा भारी विस्तृत नन्दभवन का प्रांगण है। उसमें सिंघाड़ेदार छपी हुई जाजिम बिछी है। उस पर रंग बिरंगे गलीचे बिछे हुए हैं। पश्चिम की ओर सहारे सहारे कई मसनद (बड़े स्वच्छ धुले तकिये) रखे हैं। बीच के बड़े तकिये के सहारे यशोदा मैया बैठी हैं। शेष तकिये वैसे ही इधर-उधर पड़े हैं। कहने पर भी किसी ने उनका सहारा नहीं लिया। भला नन्दरानी के सम्मुख उनकी बराबर तकिया लगाकर कौन बैठ सकती है। उनका मुख पूर्व की ओर है। उनके सम्मुख सहस्रों गोपियाँ रङ्ग बिरङ्गी

और भय से चंचल हुए नेत्र वाले कृष्ण को बार-बार निहारती भी जाती थीं। इन सब बातों को सुनकर यशोदाजी हँस जाती, वे अपने लाला को धमकाती भी नहीं थी।'

ओढ़नी ओढ़े घूँघट मारे विविध भाँति के लँहगा पहिने बैठी हैं। गोपियाँ प्रायः सभी युवती हैं। सभी का घूँघट भ्रकुटियों तक है, कुछ नयी बहुएं लम्बा घूँघट मारे बैठी हैं, तर्जनी और मध्यमा उंगली के सहारे घूँघट को कैंची के समान करके वे नन्दरानी की गोद मे बैठे श्यामसुन्दर को निरन्तर निहार रही हैं। बीच बीच में हँसी की बात आने पर सब हँस जाती हैं, अनुराग के कारण सबके हृदय हिलोरें ले रहे हैं। सबके नेत्र आनन्द उद्रेक से चमक रहे हैं। उनकी चोलियों की तनी कसी हुई हैं, अति अनुराग के कारण जब उनका वक्षःस्थल बढ़ जाता है, तब ऐसा लगता है मानों तनी टूट ही जायँगी। नँदरानी के सम्मुख जो बोलने मे निपुण गोपियाँ हैं, वे ही बातें करती हैं। रङ्ग बिरङ्गी ओढ़नियों के कारण वह आँगन विविध रङ्ग के फूलों से फूली फुलवारी के सदृश प्रतीत होता है।

यशोदा मैया का शरीर कुछ स्थूल है। गौरवर्ण के अंग पर विविध भाँति के आभूषण चमक रहे हैं। जब वे हाथों को इधर से उधर उठाती हैं, तो चुरी और आभूषण खनखनाने लगते हैं। उनका मुख विशाल और तेजपूर्ण है। अवस्था ढल जाने पर भी उनके शरीर मे वृद्धावस्था के चिह्न प्रतीत नहीं होते, एक घुटने को नवाये दूसरे को श्रीकृष्ण की पीठ से सटाये तकिये के सहारे बैठी हैं। उनके सामने पान इलायची के थार रखे हैं सामने दो परिचारिकाएँ खड़ी हैं। उनकी गोद में श्रीकृष्ण कुछ तिरछे हुए बैठे हैं, उनका मस्तक माता के स्तनों से सटा है। अंचल मे श्यामसुन्दर मुख छिपाये हुए हैं, वे कहने वाली गोपी को कनखियों से देख लेते हैं और सैनों ही सैनों में कुछ सकेत करते हैं। इससे गोपी को कहने मे और उत्साह मिलता है, वह निहाल हो जाती है। जब वह कह चुकती है और माता उसके बदले में उससे तर्क करती हैं, उसे ही डाँट देती हैं तो आप मन ही मन

जाते हैं और उसे सींग दिखाकर, अपने मुख को माता के अंचल में छिपा लेते हैं, पहिचानते हैं और सिर हिलाकर कुछ संकेत करते हैं, अर्थात् आज तू भी उपालम्भ देने आयी है। अच्छी बात है, देखा जायगा।

अब तक जो कह रही थी, उसके चुप हो जाने पर दूसरी बोली—"मैया! दूध दही ही यह खाता हो सो भी बात नहीं। हमारे छप्परों पर सखाओं सहित लाठी मारता है, जिससे सब कूरा करकट दूध, दही, माखन तथा अन्य वस्तुओं में पड़ जाता है। कभी-कभी हमारी लकड़ियों को बिखेर जाता है। कभी-कभी बाहर का कूड़ा लाकर आँगन में फेंक जाता है। मट्ठे की मटुकियाँ को फोड़कर घर भर में मट्ठा ही मट्ठा बहा जाता है। चूल्हे की राख को इधर-उधर छींट जाता है। पानी के मटुकों को फोड़कर घर भर में कीच कर जाता है।"

इस पर यशोदा मैया बोलीं—"घर में कूड़ा करकट डालना तो बड़ी बुरी बात है। क्यों रे कनुआ! तू ऐसा करता है?"

भगवान् बोले—"मैया! तू इन सब चोटियों की बात सुन ले। तब मैं इकट्ठा ही उत्तर दूँगा, मैंने किसके घर में कूड़ा डाला है, किसके आँगन में कीच की है?"

यह सुनकर एक अन्य गोपी बोली—"हाय! रानी इस तनिक से छोकरे पर कैसी-कैसी बातें बनाने आ गयीं हैं। मुझे तो कहने में भी लज्जा आती है संकोच लगता है। यह कीच ही नहीं करता और भी बड़े-बड़े उत्पात करता है।"

यशोदा मैया बोलीं—"उन्हें भी तो सुनूँ, क्या क्या करता है?"

इस पर वही गोपी बोली—"दिवाली के लिये मैंने अपने घर को लीप-पोतकर स्वच्छ बना रखा था। आँगन ऐसा लीपा था, कि मक्खी भी जहाँ रपट जाय। मैं तो घर के भीतर ही थी, यह

अपनी सेना लेकर पहुँच गया। इधर उधर घूमकर यह चुपके से बोले—"अभी तो वह घर के भीतर हे, अभी अँधेरा भी है फिर आवेंगे।"

इस पर एक बोला—'हमे तो सारे ! लघुशका लगी हे।"

इस पर कई बोल उठे हमे भी लगी है हमें भी लगी है। इस पर इनमें जो मनसुखा हे वह बोला—"सारे ! तुम सबको लघुशका लगी होगी मुझे तो दीर्घशका लगी है।"

तब यही तुम्हारा लाडला बोला—"अरे सारे ! और कहाँ जाओगे केसा लिपा पुता स्वच्छ स्थान हे मारो यहीं हाथ।"

बस, फिर क्या था इसकी अनुमति पाते ही, उसी स्थान पर खड़े होकर सब छोकरे वर्षा सी करने लगे। इस पर मनसुखा बोला—"वर्षा तो अच्छी हो रही है, किन्तु गर्जन नहीं हो रही है। इतना सुनते ही कई एक पक्ति में लँगोटी खोल-खोलकर बैठ गये। भीतर से मैंने फिटिर फिटिर का शब्द सुना तो मैं बाहर निकलकर आयी। दुर्गंधि के कारण नाक फटी जा रही थी। वहाँ फटी लकड़ी पड़ी था। मैं चेला लेकर दौड़ा—"दारीके, ओ ठहर तो जाओ। तुमने मेरे आँगन को टट्टी समझ रखा है।" इतना सुनते ही सब भाग खडे हुए। उसी समय भगी को बुलाकर मैंने जेसे तेसे उसे स्वच्छ कराया। मेया ! तुम ही सोचो यह अच्छा काम हे, भले घर के लड़कों को ऐसा करना चाहिये ?"

माता ने श्रीकृष्ण की ठोडी उठाकर पूछा—"क्यों रे कनुआ ! तू ऐसा करता है ?"

श्रीकृष्ण बोले—"अब मैया ! मैं अकेला, ये इतनी मुँड की मुँड हैं, तू मेरी बात तो मानेगी नहीं, यह जो मुँह मटका मटकाकर धमधल्लो सी कह रही हैं, इसे तो में भली भाँति जानता हूँ, इसके साथ तो मैंने अवश्य झगड़ा किया हे। बात यह थी, कि यह हमारे खिरक के सामने ही लँहगा उठाकर बैठ

गयी। उधर से कहीं बड़े बूढ़े गोप भी आते जाते थे, यह निर्लज्ज बैठी ही रही। मुझे बड़ा बुरा लगा, मैंने एक ईंट उठाकर मारी जिससे इसका लँहगा, फरिया सभी वस्त्र खराब हो गये। अब तू ही बता। इसे खेत में जाना चाहिये या निर्लज्ज की तरह खिरक के द्वार पर बैठना चाहिये। तभी से यह मुझसे बिगड़ गयी है। मैं तो जब तक अँधेरा रहता है तभी तक जंगल में शौचादि से निवृत्ति होकर लौट आता हूँ।"

यह सुनकर वह मोटी-सी गोपी हँस पड़ी और बोली—"हाय! श्यामसुन्दर! तुम इतनी झूठी बातें तुरन्त गढ़ लेना कहाँ से सीख आये हो?"

इस पर यशोदा मैया ने कहा—"यह कनुआ चंचल तो अवश्य है, किन्तु जितनी तुम इसकी बातें बता रही हो, उन पर मुझे विश्वास नहीं होता।"

शीघ्रता से श्रीकृष्ण बोले—"मैया! तू कभी इन चोटियों की बात पर विश्वास मत करना। ये सबकी सब चोरी करती हैं, कोई गोबर चुराती हैं, कोई बेल पर से लौकी, नेनुआ तोड़ ले जाती हैं, तेरी आँख बचते ही ये वस्तुओं को उड़ा देती हैं। यहाँ भी ये कुछ न कुछ चोरी की ही ताड़ में आयी होंगी। बहाना बनाती हैं और आने को क्या कारण बतावें। सफेद झूठ बोलती हैं, झूठ भी बोले तो बनाकर बोले, इन पर झूठ बोलना भी नहीं आता। चोरी भी लगावीं तो किसी और वस्तु की लगातीं, मैं माखन की चोरी क्यों करने लगा। हमारे यहाँ नौ लाख गौएँ हैं। पानी की भाँति दूध दही बहता है। कीच की भाँति माखन पड़ा रहता है। फिर मुझे क्या पड़ी है, जो मैं माखन चुराने जाऊँ। तेरे दस-बीस पुत्र नहीं, अकेला मैं ही तो हूँ। तू चाहे तो इन सबको माखन में डुबो सकती है। स्वयं मुझे पकड़कर, घर में हँ खाती है, मेरे मुख में माखन ठूँसती है। मेरे मुँह पर लपेट देती

हैं। मुँह मटकाकर सैन चलाकर पुतली घुमाकर जाने ये क्या-क्या कहती हैं, मुझे बार-बार छाती से चिपटाती हैं। इनकी लीलाएँ ये ही जाने इनके मन की कोई थाह नहीं पा सकता। ये अपनी चोरी छिपाने को मुझे चोर बताती हैं।"

यशोदा मैया ने कहा—"ऐसे में किसी की बात न मानूँगी। यदि मेरा लाल चोरी करता है, तो चोरी करते समय ही उसे पकड़कर मेरे पास लाओ। यों कहने को तो यह तुम्हे भी चोट्टी बताता है परन्तु इसकी बातों का भी मैं विश्वास नहीं करती।"

यह सुनकर गोपियाँ उठ पड़ीं और बोलीं—"अच्छी बात है, हम तो पहिले ही जानती थीं, कि तुम उलटी हमें ही डाँटोगी। फटकारोगी, अपने लाल को नहीं धमकाओगी। अच्छी बात है, हम कभी पकड़कर भी तुम्हारे पास लावेंगी। सौ बार चोर की तो एक बार शाह की भी बन जाती है।" ऐसा कहकर वे अपने अपने घर को चली गयीं। कृष्ण माता की गोदी में ही से उनकी ओर मुँह मटकाते रहे।

गोपियों ने आपस में समिति की और कहा, कि कृष्ण को कौन-सी गोपी पकड़ेगी ? उसी समय बरसाने की एक नयी बहू गोकुल में विवाह के आयी थी, उसने कहा अच्छी बात है, "मैं पकड़कर दिखाऊँगी।" बाल चोर समिति के गुप्तचर विभाग की ओर से श्रीकृष्ण को भी यह सूचना मिल गयी, कि अमुक गोपी ने श्रीकृष्ण को पकड़ने का बीरा उठाया है।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! श्रीकृष्ण से आकर किसने कह दिया ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! घर के भेदिया ही तो सब भेद बताते हैं। उस गोपी का एक छोटा सा देवर भी था। वह भी चोर समिति का सदस्य था। उसी ने बताया—"कनुआ भैया ! भाभी ने तुम्हे पकड़ने का बीरा उठाया है।"

यह सुनकर हँसते हुए नन्दलाल बोले—"अच्छी बात है देखा जायगा, वह मुझे पकड़ती है या स्वयं पकड़ी जाती है। अब वह गोपी दिन रात्रि श्रीकृष्ण की ही ताड़ में रहने लगी।'

श्रीकृष्ण को जो पकड़ने की प्रतिज्ञा करता है, कृष्ण उसकी प्रतिज्ञा पूरी करते हैं, स्वयं पकड़ में आ जाते हैं, और उसे भी पकड़ा देते हैं। एक दिन अपनी सब सेना को साथ लेकर अँधेरे में ही उस गोपी के घर में गये। सब सखाओं को द्वार पर खड़ा करके सावधान कर गये और कह गये, "कोई मेरे पीछे न आवे यदि मैं पकड़ा जाऊँ तो सब मेरा साथ दें मेरे पीछे-पीछे मेरे घर तक चलें।" सबने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। आज तो आप स्वयं पकड़ाने गये थे, गोपी माखन सामने ही रखकर छिपी हुई पकड़ने को तैयार बैठी थी। आपने मटुकियों में से माखन निकाला और पालथी मारकर भोग लगाने लगे, जब भरपेट माखन खा चुके तब पीछे से आकर गोपी ने पट्ट से पहुँचा पकड़ लिया और बोली—"कहो लालाजी! उस दिन की याद है, मैया की गोदी में बैठे बैठे मुझे चोर बता रहे थे, अब तुम्हारे गालों में गुलचे लगाकर तुम्हें छटी तक की याद दिलाऊँगी। यह मैया की गोदी नहीं है गोपी का घर है।"

आप तो हँस पड़े और बोले—"भाभी! तेरी सूँ, तेरे खसम की सूँ, अब मैं तेरे घर न आऊँगा।"

गोपी ने कहा—"मैं अपने घर से वढती तो हूँ नहीं, जो तुम शपथ खा रहे हो। अपने नाना की शपथ खाओ अपनी मैया की शपथ खाओ। अब शपथ खाने से काम न चलेगा, तुम्हें आज पकड़कर मैया के पास ले चलूँगी।"

आप उसके पैर पकड़कर बोले—"भाभी! ऐसा मत करे, नहीं तो मैया मुझे मारेगी। तू ही चाहे जो दंड दे ले। ला तेरे लँहगा को यमुनाजी में धो लाऊँ।"

गोपी बोली—"न मुझे लँहगा धुलाना है न फरिया। मुझे तो तुम्हारी मरम्मत करानी है, सो भी मैया के हाथों। वे बहुत कहती थीं, मेरा बच्चा चोर नहीं है। आज सब जान तो जायँगे, यह छोरा नहीं घर फोरा है, इसके पेट में हाथ भर लम्बी दाढ़ी है।"

श्रीकृष्ण रोने लगे। गोपी ने कहा—"तुम्हारे इन झूठे आँसुओं से मैं पसीजने वाली नहीं आज तो तुम्हें मैं पकड़कर ही ले चलूँगी।"

आप भोरी सूरत बनाकर बोले—"तेरी इच्छा ले चल।"

अब क्या था, गोपी ने कसकर, कलाई पकड़ ली और श्रीकृष्ण उसके साथ चल दिये वह तो उस गाँव की बहू ही ठहरी। बहू भी पुरानी नहीं नयी, इसलिये घूँघट मारकर श्रीकृष्ण को कसकर पकड़कर चल दी। श्याम की सेना भी संकेतानुसार पीछे-पीछे चोर है चोर है, चोर पकड़ा गया, चोर पकड़ा गया, कहती हुई पीछे-पीछे चली। मार्ग में जाते-जाते श्रीकृष्ण ने कहा—"भाभी! तू इतनी निष्ठुरता क्यों करती है, देख तू कितना कसकर मेरा हाथ पकड़े है, यह हाथ दुखने लगा है इसे पकड़ ले।" गोपी को श्रीकृष्ण को कष्ट देना तो अभीष्ट ही नहीं था, उसे तो माता के सम्मुख यह सिद्ध करना था कि तुम्हारा लाल चोरी करता है। उसने इस हाथ को छोड़कर दूसरा हाथ पकड़ लिया। जब वह नन्दजी के चौपाल के समीप पहुँची तो वहाँ उपनन्दजी, सनन्दजी आदि बहुत-से बूढ़े बूढ़े गोप बैठे थे, उनमें से कोई इसका जेठ लगता था कोई ससुर कोई ददिया ससुर। इसने डेढ़ हाथ लम्बा घूँघट मार लिया। तभी श्यामसुन्दर धीरे से बोले—"भाभी! मेरा यह हाथ भी दुखने लगा, अबके इसे पकड़ ले।" यह सुनकर घूँघट में से बिना देखे ही उसने हाथ बढ़ाया, श्रीकृष्ण ने तुरन्त पीछे आने वालों में से उसके देवर का हाथ उसके हाथों

में दे दिया। उसे पहिले ही सिखा पढ़ा दिया था, अतः वह कुछ बोला नहीं।"

श्रीकृष्ण पीछे मे दौड़कर दूसरे द्वार से मैया की गोद में जा बैठे। मैया ने कहा—"लाला ! इतना हाँप क्यों रहा है ?"

श्रीकृष्ण बोले—"मैं खिरक में से आ रहा था, सो वह कटखना बन्दर मेरे ऊपर खों-खों करके दौड़ा। मैं वहाँ से लैंया-पैंया दौड़ा आया हूँ।"

मैया ने भयभीत होकर कहा—"बेटा ! कहीं उसने दाँत तो नहीं मार दिया ?"

श्रीकृष्ण बोले—"ना, मैया ! दाँत कैसे मारता मैं तो ऐसा भागा कि वह मेरी परछाईं भी न पा सका। तनिक मैं तेरी गोदी में सोऊँगा !" 'सो जा बेटा !' कहकर माँ श्याम की सुन्दर सुचिक्कण पीठ को थपथपाने लगीं। इतने मे ही वह गोपी आ गयी और बोली—"मैया पाँइन लागूँ। तुम बहुत कहती थीं, कि कभी चोरी करते हुए मेरे लाला को पकड़कर लाओ। देखो, आज मैं इसे पकड़ लायी। अब तो तुम हमें झूठी न बताओगी।"

नन्दरानी ने कहा—"कैसे पकड़ लायी, किसे पकड़ लायी ? बात तो बता तैने भाँग तो नहीं पी ली है ?"

गोपी ने दृढ़ता के स्वर में कहा—"चोरी करते हुए तुम्हारे लाला को पकड़कर लायी हूँ, तुम्हारे लाला को। देख लो अभी तक इसके मुँह में माखन लिपटा है।"

मैया बोलीं—"अरी, सुतैमन ! घूँघट उठाकर देख तो सही यह मेरा लाला है या तेरा देवर है। मेरा लाला तो मेरी गोदी में सो रहा है।"

गोपी ने जो घूँघट उठाकर देखा, तो उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। बोली—"मैं पकड़कर तो कन्हाई को लायी थी यह बीच में देवर कैसे हो गया ?"

मैया ने हँसकर कहा—"आज तो देवर को पकड़ लायी है, कल अपने खसम को मत पकड़ लाना। तेरे हाथ लगने से बचा बदल जाता है, तो अपने पति को भी मत बदल देना।" यह सुनकर गोपी लज्जित हुई।

श्रीकृष्ण बोले—"मैया! यह बड़ी चोट्टी है, घर के दूध की मलाई को उतारकर चुपके-चुपके खा जाती है। इसके देवर ने अपने भाई से बता दिया होगा, इसीलिये उसे धमकाने यहाँ पकड़ लायी है, तू इसकी बात का विश्वास मत करना।"

यह सुनकर वह गोपी उल्टे ही पैरों लौट गयी। श्रीकृष्ण ठठाका मारकर हँसने लगे। बालकों ने भी तारी बजायी। तब श्रीकृष्ण बोले—"मैया! ये ग्वाल बाल इकट्ठे हो गये हैं, इन्हें आज भर पेट माखन खिला दे।" मैया ने बड़े प्यार से कहा—"आओ, बेटाओ! पेट भरके माखन खा लो।" सबको एक-एक लौंदा माखन एक-एक बड़ी डरी मिश्री की मैया ने दी। सब माखन मिश्री खाकर कूदते-उछलते अपने अपने घर चले गये। श्रीकृष्ण का साहस अब और भी अधिक बढ़ गया। वे दिन दहाड़े डाका डालने लगे। चोरी का माखन खाने में उन्हें भी आनन्द आता और जिनका माखन चुराते उन्हें भी अत्यधिक सुख होता।

एक गोपी चाहती थी, श्रीकृष्ण मेरे घर में नित्य माखन चुराने आया करें, किन्तु उनसे नित्य कुछ वाद-विवाद हो, रार हो कलह हो। एक दिन श्रीकृष्ण घूम रहे थे। उस गोपी ने कहा—"क्यों लालाजी कहाँ जा रहे हो?"

आप डाँटकर बोले—"कहीं जा रहे हों, तू पूछने वाली कौन होती है। हमारा सकुन बिगाड़ दिया। सवेरे ही सवेरे टोंक दिया।"

गोपी बोली—"मैं तुम्हारा सकुन सब जानती हूँ, यहाँ

तुम्हारी दाल नहीं गलने की, मेरे यहाँ चोरी नहीं कर सकते। यदि फिर इधर कभी आये तो अच्छा न होगा।"

आप बोले—"चल हट! तेरे बाप की गली है। हजार बार आवेंगे, तू मना करने वाली कौन है?" यह कहकर भाग गये। गोपी प्रतीक्षा करती ही रही। उसे पल-पल भारी हो गया। श्याम अब आते हैं अब आते हैं, करते-करते सूर्यास्त हो गया। सम्पूर्ण रात्रि तारे गिनते-गिनते उसने बितायी। प्रातःकाल माखन निकालकर आशा में बैठी रही। श्याम नहीं आये, उसकी व्याकुलता बढ़ने लगी। खाना-पीना कुछ भी नहीं सुहाता था, दूसरा दिन भी समाप्त हुआ बैरिनि राति फिर उसी तरह बितायी। अब श्यामसुन्दर पर नहीं रहा गया। वे आये और गोपी की मनोकामना पूर्ण की।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! गोपियों के मुख से नित्य ही श्याम की चोरी की बातें सुनकर माता के मन में भी इच्छा हुई श्याम को मैं कब चोरी का माखन खाते देखूँगी। वांछाकल्पतरु श्रीहरि ने माता की इच्छा पूर्ति का भी विचार किया।"

छप्पय

नँदरानी सुन हँसी कहैं मदमाती तुम सब।
कनुआ मम ढिँग रहे करे घर घर चोरी कब।।
ऊपर तैं करि रोष कहैं गोपी तुम रानी।
पच्छ करोगी पुत्र प्रथम ही हमने जानी।।
जो जिह बाहर करतु है, सो घर महँ हू करैगो।
चोरी पकरो दण्ड फिर, दैवो तुमकूँ परैगो।।

—○—

यशोदा मैया का दधिमन्थन

[८७७]

क्षौमं वासः पृथुकटितटे बिभ्रति सूत्रनद्धम्
पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं जातकम्प च सुभ्रूः ।
रज्ज्वाकर्षश्रमभुजचलत्कङ्कणौ कुण्डले च
स्विन्नं वक्त्र कवरविगलन्मालती निर्ममन्थः ॥*

(श्री भा० १० स्क० ६ अ० ३ श्लोक)

छप्पय

सोचें मन महँ मातु बने जिह कैसे छोरी ।
कैसे घर घर जाइ करे माखन की चोरी ॥
करि करि क्रीड़ा सरस श्याम सुख सबकूँ दीन्हों ।
मातु मनोरथ सिद्ध करहुँ हरि निश्चय कीन्हों ॥
भोर भयो जननी उठी, दधि परोंदि मथिवे लगी ।
घमर घमर को मधुर रव, सुनि हरि की निद्रा भगी ॥

ससार में सर्वत्र सौंदर्य ही सौंदर्य भरा है, किन्तु उसे देखने की

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं— 'राजन् ! यशोदा मैया की दधिमन्थन करते समय कैसी दर्शनीय अपूर्व शोभा है ? सुनिये, उनका कटि भाग स्थूल है, उसमें वे कटिबन्धन स युक्त रेशमी वस्त्र पहिने हुए हैं। उनके दोनों स्तन हिल रहे हैं, पुत्र स्नेह के कारण उनसे दुग्ध चू रहा है। बार-बार रज्जु के खींचने से श्रमित हुई भुजाओं के कङ्कण और कानों के कुण्डल हिल रहे हैं, उन सुन्दर भौंहो वाली यशोदाजी के मुख पर पसीना आ गया है और वेणी में गुंथे हुए मालती के पुष्प सिर हिलने से गिर रहे हैं।"

योग्यता चाहिये। सौंदर्योपासक कवि सर्वत्र सौंदर्य ही सौंदर्य देखते है, कवियों को फल-फूल वाले हरे-भरे वृक्षों से बड़ा सुख होता है। वे उनमें अनन्त सौन्दर्य का अनुभव करते हैं, उनसे बातें करते हैं, तथा उनकी बातों को सुनते हैं। वे प्रत्येक घटना में सौंदर्य देखते हैं, वनों में, उपवनों में, सरों में, सागरों मे, नदों में, नदियों में, गिरों में, गिरिशिखरों में, पुरों में, नगरों में, पढ़ों में, अनपढ़ों मे, बालकों मे, वृद्धों में, प्रौढ़ों में, युवकों में, नरों में, नारियों में, कालों में, गोरों में, रूपवानों में, कुरूपों में, हँसने में, रोने में जहाँ भी उनकी दृष्टि जाती है वहीं वे सौन्दर्य को निहारते हैं। उनकी दृष्टि में संसार एक सुन्दर खिलौना है। उसके सब घटनाएँ हँसने की सामग्री हैं, कोई आता है तो भी हँसते हैं, जाता है तो भी हँसते हैं। कोई हँसता है तो भी हँसते हैं कोई रोता है तो भी हँसते हैं। कोई प्रतिज्ञा करता है, तो भी हँसते हैं, प्रतिज्ञा भंग करता है तो भी हँसते हैं। आवश्यक साधनों के आने पर भी हँसते हैं, उनके अभाव में भी हँसते हैं, गम्भीरता को भी देखकर हँसते हैं, चञ्चलता को देखकर भी हँसते हैं। जिसे अनुकूलता, प्रतिकूलता दोनों ही सुखानुभूति हो, नमकीन और बिना नमकीन दोनों प्रकार के साग में भी स्वाद का अनुभव हो, वही कवि है। वास्तव में देखा जाय तो बिना नमक के साग में भी एक प्रकार का सौंधा-सौंधा स्वाद है। इन बातों को कवि ही अनुभव कर सकता है। हम संसारी लोग घटनाओं को जिन दृष्टियों से देखते हैं, कवि उससे भिन्न ही दृष्टि से देखता है। किसी स्त्री को रोते देखकर हमें भी दुःख होता है, किन्तु कवि उसकी चेष्टाओं का अध्ययन करता है। कैसे इसके अश्रु निकलते हैं, मुख की आकृति कैसी होती है, रुदन किस स्वर में करती है, अश्रु निकलकर कहाँ गिरते हैं। वह तो रुदन के सौन्दर्य चिन्तन में ही निमग्न हो जाता है।

एक कवि थे, उन्होंने एक छोटा सा बगीचा लगा रखा था, उसमें रङ्ग विरङ्गी मटर बो रखी थी। एक मोटा-सा साँड़ उस मटर के खेत में घुसकर उसे खाने लगा। कवि स्वभावानुसार लाठी लेकर साँड को खेत से बाहर निकालने चले, उन्होंने लाठी उठायी। साँड लाल-लाल आँखें करके अपने सींगों से कवि को मारने दौड़ा। उस समय उसका ककुद् हिल रहा था पैरों को कुछ टेढ़े करके सिर को नीचा करके वह क्रोध में भरकर कवि की ओर बढ़ा, कवि तो उस शोभा को देखकर आत्मविस्मृत से बन गये। उसकी क्रोध की मुद्रा का रसास्वादन करने लगे। जहाँ के वहाँ खड़े हो गये। यही कवि का हृदय है। कवि की दृष्टि को साधारण लोग नहीं समझ सकते। जिन घटनाओं को हम नित्य देखते हैं, हमारे ऊपर उनका कोई प्रभाव नहीं पडता। उन्हें ही कवि देखकर उनका वर्णन करता है, तो हम पढते पढते अघाते नहीं। जितने ये राम कृष्ण आदि अवतार हुए हैं, यदि इनके चारु चरित्रों को किसी कवि ने अन्तर्दृष्टि से न देखा होता, तो ये कथाएँ अमर कैसे बनी रहतीं। इतिहास के पात्रों को अमर करने वाले कवि ही हैं। साधारण घटनाओं में भी जो सरसता भर देता है, वही कवि है। स्त्रियों को दही मथते सभी निहारते हैं, नित्य उनके मन पर कोई प्रभाव नहीं पडता जब उसी मन्थन वर्णन को कवि की कृति में पढते हैं, तो शुष्क हृदय भी सरस सा बन जाता है। मैया यशोदा की दधि मथते समय कैसी अपूर्व शोभा है, इसका साकार रूपक भगवान् वेदव्यास ने अपने वर्णन में खडा कर दिया है। भाग्यशाली ही उस वर्णन को पढ़कर उसका अपने हृदय में अनुभव कर सकते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! श्रीकृष्ण के सम्बन्ध के नित्य ही उपालम्भ सुन-सुनकर माता यशोदा के मन में एक लालसा उत्पन्न हो गयी। वे सोचने लगीं—"कृष्ण गोपियों के घर से

माखन चुराता है, इसे मैं अपने नेत्रों से कैसे देखूँ ? कभी मेरे सम्मुख भी,चोरी करे, तो मैं इसे डाँटूँ फटकारूँ । बच्चों को डाँटने फटकारने में भी एक प्रकार का आनन्द आता है। सर्वान्तर्यामी प्रभु की समस्त चेष्टायें भक्तों को सुख देने के ही निमित्त होतीं हैं, वे माता के भाव को समझ गये अब उन्होंने निश्चय किया, कि माता के सम्मुख भी मैं वात्सल्य रस की अभूत पूर्व धारा बहाऊगा, उसे भी अपना चौर्यकर्म दिखाऊँगा। माता जितनी लीला देखने को उत्सुक थी, उससे अधिक ये लीलाधारी लीला करने को उत्सुक थे।

मैया यशोदा के समस्त कर्म अपने लाला की प्रीति के ही निमित्त होते थे। खिरक में लाखों गौएँ थीं, उनकी देख-रेख दास दासी करते। नन्दबाबा के संरक्षण में उनका समस्त कर्म होता। दस बास गौएँ माता भीतर पूजन के लिये घर में रखतीं। उनको मेवा मिश्री आदि खिलाती जाती। जल के स्थान पर दुग्ध पिलाया जाता उनका दूध बहुत गाढ़ा होता और उसमें पद्म की सी गंध आती, अतः वे सब गौएँ पद्मगन्धा कहलातीं थीं। उनके नाम थे, श्यामा, रामा, गंगा, यमुना त्रिवेणी आदि-आदि। माता उनकी देख-रेख स्वयं करतीं। उन गौओं का दूध नारायण की सेवा में आता। उनमें से एक दो के दूध को मैया स्वयं दुहतीं, स्वयं गरम करतीं, स्वयं उनके दहीं को जमातीं, और लालजी को गोद में लिये हुए स्वयं ही अपनी देख-रेख में अपनी आँखों के सम्मुख दही मथवाती और उसी को श्रीकृष्ण को खिलातीं। माता का हृदय ही जो ठहरा। मेरे लाला को माखन बहुत प्रिय है, अतः अच्छे से अच्छा सुन्दर से सुन्दर माखन उसके लिये बनाया जाय, यही माता की चिन्ता होती।

यद्यपि अब श्रीकृष्ण चार पाँच वर्ष के हो गये हैं, दूध, दही, माखन मलाई सब खाते हैं। रोटी, दाल, भात को भी उड़ाते हैं,

किन्तु माता के स्तनपान को इन्होने नहीं छोड़ा है। जब एक वर्ष के पश्चात् माता के दूसरा बच्चा हो जाता है, तो पहिले बच्चे का दूध छूट जाता है, यदि माता के दूसरा बच्चा न हो तो बहुत-से लड़के तो बहुत सयाने होने पर भी माता का दूध पीते रहते हैं। यही इनकी दशा थी, नित्य ही माता छप्पन प्रकार के भोग लगाती। विविध भाँति के पदार्थों को बनाती, अपने हाथों से श्यामसुन्दर को खिलाती, किन्तु जब तक ये दूध को न पी लेते, तब तक इनकी तृप्ति ही न होती। माता को भी इसमें बड़ा आनन्द आता, ये माता के साथ ही सोते थे, ये माता को कसकर पकड़े रहते, पलङ्ग पर पड़े-पड़े ही मैया दासियों से कहती रहतीं। देखना रई को गरम जल से धो लेना। बहुत शीघ्रता भी मत करना दही मथते समय ठंडा हो जाय, फैल जाय तो तनिक गरम पानी देने मे ठंड छूट जाती है, लौनी के दाने फैलकर लौंदा बन जाता है। शैया पर पड़े ही पड़े बतातीं रहतीं। जब माखन निकालने का समय आता, तो तुरन्त हाथ धोकर हाथ डालकर माखन निकाल लेतीं। दधि मन्थन और चक्की चलाने का काम अरुणोदय में होता है। जिस स्त्री का दही अरुणोदय तक बिलोया नहीं जाता, जो सूर्योदय तक चक्की चलाती रहती है, वह फूहर कहलाती है। लक्ष्मी उसके घर से भाग जाती है, अतः रई और चक्की की ध्वनि सूर्योदय से प्रथम ही बन्द हो जानी चाहिये। इसलिये प्रातःकाल तड़के मुँह अँधियारे माँ अपने लाल को थपथपाती जाती और दही मथवाती जातीं।

एक दिन कोई पर्व था, घर की सभी दासियाँ अन्यान्य कामों में व्यस्त थीं। अभी तक दही नहीं मथा गया। माता को तो एकमात्र चिन्ता अपने लालकी थी। उठते वह माखन माँगेगा। मैं कहाँ से दूँगी, क्यों नहीं आज मैं ही उठकर दही को मथ लूँ, वह ऊधमी जाग पड़ा, तो फिर कुछ भी काम न करने देगा, टटका

तुरन्त निकाला, सद मारन इसे न मिला, तो रोते-रोते घर भर देगा। इसीलिये माँ चुपके चुपके उठीं, जिससे श्रीकृष्ण को प्रतीत न होने पावे। वे तनिक उठतीं, फिर ठहर जातीं, बार बार बच्चे का मुख देख लेती, इसे मेरे उठने की बात विदित तो नहीं हो गयी है। श्रीकृष्ण तो आज विचित्र लीला करने वाले थे,अतः वे आज गहरी नींद में सो रहे थे, उन्हें पता ही न चला माँ मेरी शैया से कब उठ गयी है।

उठकर माता ने तुरन्त गरम जल से हाथ पैर धोये। मथनी को सुन्दर स्वच्छ जल से धोया। खिड़की में रखी हुई दही की मटकियों को उठा लायी। शब्द न हो, इस प्रकार दही में हाथ लगाकर उसे मथनी में परौंदा, फिर रई को धोया। रई की रस्सी को सम्हाला। मथने की रस्सी रई से लिपटी हुई थी, उसके दोनों कोनों पर सोने की खुँटी बँधी थी। मैया ने रई को दही में डुबाया और घमर-घमर कर के दही मथने लगीं।

जिस समय मैया दही मथ रही थीं, उस समय की उनकी शोभा दर्शनीय थी। दही मथते समय और चक्की चलाते समय माताएँ मधुर स्वर में गीत गाती रहती हैं, जिससे मन भी लगा रहता है, श्रम भी नहीं होता और काम भी मालूम नहीं पडता। मैया भी दही मथते समय अपने बच्चे की बाल लीलाओं का स्मरण कर-करके गाती जाती थीं। व्रज में एक गोपी थी, वह बड़ी सुन्दर कविता करना जानती थी। उसने श्रीकृष्ण के बाल-चरित्रों को बड़ी ही मर्म स्पर्शी भाषा मे वर्णन किया था। बड़े सुन्दर प्रसाद पूर्ण मधुर गीत बनाये थे। उन गीतों को मैया ने कण्ठस्थ कर लिया था। उसे अपने पुत्र की प्रत्येक बात परम प्रिय लगती थी, उसे उसकी लीला गाने में आन्तरिक सुख होता था। इसलिये जब भी उसे अवसर मिलता, तभी उन पदों को गुन गुनाया करती थी। आज दधि मथते-मथते माता मन्थन के घमर-

घमर शब्दों में अपने स्वर को मिलाती हुई गा रही थी। वह एक सुन्दर निवाड के पीढ़े पर बैठी थी। उसके चौखट पाये सब चन्दन के थे। बड़ी-सी मथनी मे गाढा-गाढा दही भर रहा था, उसमें मथनी को डालकर दायें बायें हाथों से दाम को क्रमशः खींचती। दही के मथे जाने से छींटे उडते थे, वे ऐसे लगते थे, मानों क्षीरसागर के मथे जाने पर उसमे से मोती उछल रहे हों। मैया का शरीर कुछ अपेक्षा कृत स्थूल था। उनका कटि भाग तो स्वभाविक ही अधिक स्थूल था, वे एक सुन्दर रेशमी साड़ी पहिने हुए थीं। एकान्त मे वहाँ कोई पुरुष तो था नहीं इसलिये सिर का वस्त्र खिसक गया था। जिससे उनकी मोटी चोटी इधर-उधर हिल रही थी। वह विधिपूर्वक गुँथी हुई थी। रात्रि में दासियों ने उसमे राजमालती के पुष्प गूँथ दिये थे। मालती की मालायें भी उसमें लगायी गयी थीं। मथते समय वेणी में गुँथे पुष्प नीचे भूमि पर गिर रहे थे, मानों आकाश से देवगण पुष्प वर्षा कर रहे हों। अथवा पुष्प पैरों में पड़कर भूमि मे गिरकर माता से मना कर रहे हों, कि माँ! यह तुम्हारा काम नहीं है। दासियों को आने दो, वे दधि मथेंगी। आप लाला के पास जाओ। अथवा माता को साधारण काम करते देखकर पुष्प लज्जित हो रहे हों कि जब माता इतने छोटे छोटे काम स्वयं करती हैं, तो हमें क्या अधिकार है, सबसे ऊपर माता के मस्तक पर बैठे रहें, हमें भी गिर जाना चाहिये। अथवा उन्होंने सोचा श्रीकृष्ण इसी मार्ग से आकर माता को पकडेंगे उनके पथ को पुष्पमय बना दो। अतः वे माता के सिर से उतरकर श्रीकृष्ण के मार्ग में लेट गये। अथवा पुष्पो ने सोचा व्रज में उच्चासन पर बैठना निषेध है, वहाँ तो व्रजरज में ही लोटने का सबसे बडा माहात्म्य है। गोपियों की पदधूलि को ही सर्वश्रेष्ठ मानकर उसमे लोट-पोट जाना चाहिये। माता ने हमें सबसे ऊपर मस्तकपर बिठा रखा है, अतः

अब हमें व्रज की रज में लोट पोट होना चाहिये। अथवा श्रम के कारण सिर हिलने के कारण पुष्प स्वाभाविक ही गिरते होंगे कुछ भी हो, माता के सिर से सुगन्धित पुष्प गिर रहे थे। यद्यपि माता की अवस्था ढल गयी थी, फिर भी शरीर में एक भी झुर्री दिखायी नहीं देती थी मुख उसी प्रकार चन्द्र के समान खिला हुआ था। माँग में सिंदूर शोभा दे रहा था। भाल पर सौभाग्य तिलक अंकित था, सिर का एक भी बाल सफेद नहीं था। कानों के कमनीय कुण्डल बार बार रज्जु के खींचने से हिल रहे थे, उनकी भौंहे सुन्दर और तिरछी थीं, वह चिकनाई लगाकर सम्हाली गयी थीं। बड़े-बड़े नेत्र अनुराग से छलक रहे थे। उनकी चुरी, ककण, बँगली, पहुँची, बाजूबन्द आदि आभूषणों से युक्त भुजायें नेति के खींचने से इधर-उधर हिलते थे, उनमें के आभूषण बज-बजकर मथने के शब्द में अपनी ताल मिला रहे थे। सोकर उठने के कारण माता ने कचुकी नहीं पहनीं है, अतः उनके निर्मुक्त पुष्ट, लम्बे और लटके हुए स्तन दो बड़ी मछलियों के सदृश चञ्चल हो रहे थे। निरन्तर पुत्र का ही स्मरण करते रहने के कारण उनका मातृस्नेह उमड रहा था, स्नेह के उद्रेक के कारण स्तनों से दूध चू रहा था, जिससे उनका रेशमी वस्त्र भीग रहा था। श्रम के कारण मुख पर स्वेद बिन्दु झलक रहे थे। पैरों को फैलाये वे स्नेहमयी सजीव प्रेम प्रतिमा ही दिखायी देती थीं। मथनी हिलने न पावे, इसलिये उसके चारो ओर पत्थर के उठखने लगे हुए थे। माता दधि मथती जाती थीं और शैया की ओर निहारती जाती थी, कि कहीं ऊधमी जाग न पड़े। वे चाहती थीं, श्रीकृष्ण के जगने के पूर्व ही मैं माखन निकाल लूँ। जहाँ यह जागा, कि फिर मथने नहीं देगा। इसीलिये वे शीघ्र शीघ्र हाथों को चला रही थीं। माता जिसके लिये चिन्ता कर रही थीं वही बात हुई, श्रीकृष्ण ने करवट बदली। शैया पर

उन्होंने इधर उधर माता को निहारा। माता को न पाकर वे उठ कर बैठ गये और आँख मलते हुए देखने लगे। सामने देखा माता दही मथ रही है। आप पाटी पकडकर पृथ्वी पर उतरे और माता की ओर चले।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जिन्हे योगी, यति, साधु, सन्यासी सदा खोजते रहते हैं, वे ही आज भोरे वन दूध पीने की

इच्छा से रोते हुए माता को खोज रहे हैं। उठते ही भगवान् को माता के स्तनपान की चटपटी लगीं। वे कुछ खुलो कुछ मुँदी

आँखों से मुख लटकाये माता की गोद की ओर दौड़े। समीप जाकर उन्होंने पट्ट से माता की रई को पकड़ लिया। अब माता दधि कैसे मथतीं, यदि किसी वस्तु को पकड़ते तो माता मथती रहतीं। किन्तु रई के पकड़ने से तो उन्हें रुकना ही पड़ा। दधि-मन्थन का बन्द करके माता ने लालाजी को गोदी में उठा लिया और उनके मन्द-मन्द मुसकान से युक्त मनोहर मुखारविन्द को निहारती हुई, स्नेह के कारण स्वतः ही झरते हुए अपने स्तनों का दुग्ध पिलाने लगीं।"

छप्पय

मातु मथहिँ दधि हिलहिँ कान कुण्डल बोबो कर।
स्वेद-बिन्दुयुत बदन कमल पै जनु हिमकन बर॥
राजमालती सुमन झरहिँ सिरतैं अति सुन्दर।
मनहुँ कुसुम बरसाइ करहिँ सुर मान निरन्तर॥
श्याम त्यागि शैया तुरत, मातु मथानी पकरिकैं।
अम्मा बोबो प्याइ दै, पुनि पुनि बोलें अकरिकैं॥

माखनचोर की करतूत

(८७८)

उलूखलाग्रेरुपरि व्यवस्थितम्,
मर्काय काम ददत शिचि स्थितम् ।
हैयङ्गव चौर्यविशङ्कितेक्षणम्,
निरीक्ष्य पश्चात् सुतमागमच्छनैः ॥*

(श्री भा० १० स्क० ९ अ० ८ श्लोक)

छप्पय

सम्मुख सुतकूँ निरखि नेहतैं मातु उठायो ।
अङ्क लाइ मुख चन्द्र चूमि पय-पान करायो ॥
इत जननी हिय हरषि कृष्णकूँ दूध पिआवे ।
घरयो बरोसी दूध उफनि उत आगि बुझावे ॥
दूध पूत इक सङ्ग ई, उफने माता सुतहिँ तजि ।
दूध उतारन आगितैं, लैया पैया गई भजि ॥

अपने प्यारे से अपने प्यारे के हितैषी का अधिक आदर किया जाता है। पुत्र को कोई रोग है, उसकी चिकित्सा कोई सुयोग्य

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! माता ने देखा श्रीकृष्ण उलटी ओखली के ऊपर खड़े हैं छींके पर रखे मक्खन को इच्छानुसार वानरों को बाँट रहे हैं। चोरी कर्म की आशंका के कारण उनके नेत्र चञ्चल हो रहे हैं, वे इधर उधर देख रहे हैं। पुत्र की ऐसी स्थिति में देखकर धीरे-धीरे माँ सुत के समीप गयीं।"

वैद्य कर रहा है, पूर्ण विश्वास है, पुत्र उसके उपचार से निरोग हो जायगा, तो उसका स्वागत सम्मान पुत्र से अधिक किया जाता है। कारण कि वह पुत्र का मङ्गलेच्छु है। सुत का उसके द्वारा कल्याण होगा। उस वैद्य से स्वयं सीधा कोई प्रेम नहीं है। उसमें जो आदर बुद्धि है, वह सुत के सम्बन्ध से ही है। उसे प्रसन्न करने में यदि सुत को दो-चार खरी-खोटी भी बातें कहनी पड़ें, तो इसमें प्रेम का आधिक्य ही समझना चाहिये। वैद्य को प्रसन्न रखना मानों पुत्र की निरोगता को ही उपार्जन करना है। छोटे बच्चे इस रहस्य को समझते नहीं। वे इसमें अपना अपमान समझते हैं, रोने लगते हैं, माता पिता से क्रुद्ध हो जाते हैं, रूठ जाते हैं, मचल जाते हैं और नाना प्रकार के उपद्रव करने लगते हैं। माता-पिता को भी फिर उसे शान्त करने के लिये शाम, दाम, दण्ड तथा भेद नीति का आश्रय लेना पड़ता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मैया यशोदा की रई आधे मथे हुए दही में ज्यों की त्यों पड़ी है। उनके हाथ से मथने की रस्सी कब छूट गयी, इसकी भी उन्हें सुधि नहीं थी। श्याम माता की गोदी में पड़े-पड़े दूध पी रहे थे। सम्मुख ही पद्मगधा गौ का दूध मिट्टी की बरोसी में गरम हो रहा था। नित्य तो दासियाँ बरोसी में कण्डे रखकर सुलगा देती थीं, जब वे निर्धूम हो जाते, तो दूध औटने की हंडी में दूध को छानकर उस पर रख देतीं। अग्नि शनैः-शनैः कम होती जाती दूध का उफान हंडी में आता-और उसी में उमड़-घुमड़कर शान्त हो जाता, फिर शनैः-शनै मलाई ऊपर जमने लगती, कलेवा के समय तक दूध औटकर लाल हो जाता, उस पर मोटी रोटी के सदृश मलाई पड़ जाती। श्रीकृष्ण को मलाई बड़ी अच्छी लगती थी, इसलिये मैया भोर में ही बहुत तड़के दूध दुहाकर उसे बरोसी पर गर्म करने रख देतीं। जब श्रीकृष्ण खेलकर आते और आते ही मलाई माँगते, तो अम्मा झट-

उतनी ही बड़ी रोटी पर मलाई रख देतीं। गेहूँ की लाल रोटी पर मानों सफेद मलाई की रोटी रखी हो। श्रीकृष्ण दोनों ही रोटियों को दाँतों से कतर-कतरकर खा जाते, इससे माता को अत्यन्त ही हर्ष होता। दूध जितना ही गाढ़ा होता है जितनी ही मन्द मन्द अग्नि से औटाया जाता है, उतनी ही मोटी मलाई पड़ती है। माता सब काम करते हुए भी दृष्टि दूध पर ही रखती। यद्यपि वह गोद में बिठाकर श्यामसुन्दर को दूध पिला रही थीं, फिर भी वह बार बार बरोसी की ओर देखती जाती थीं, आज शीघ्रता में किसी दासी ने अधिक कण्डे सुलगा दिये। निर्धूम होने के पूर्व ही जब अग्नि अपने यौवन पर थी, तभी उस पर दूध से भरी औटाने की हँडिया रख दी। अधिक अग्नि लगने से दूध उबला और उबलकर बरोसी में गिरकर जलने लगा। दूध का एक बिन्दु भी अग्नि में गिरकर जलने लगे तो माताएँ उसकी गन्ध ही से तुरन्त पहिचान जाती हैं, कि कहीं दूध उफन रहा है। अब तक माता दूध पीते हुए मनमोहन के मुस्कानयुक्त मनोहर मोहक मुखारविन्द को ममता भरी दृष्टि से निहार रही थीं। दूध के जलने की गन्ध पाते ही उसने जो देखा, उसे देखकर तो वह हक्की बक्की रह गयी। सब कुछ भूल गयी। तुरन्त बलपूर्वक श्रीकृष्ण को गोदी से उतारकर भूमि पर रखकर दूध को उतारने दौड़ी। बस, फिर क्या था अब तक तो दूध ही उफन रहा था अब पूत भी उफन पड़ा। 'अच्छा, मैया को मैं प्यारा नहीं, मुझसे प्यारा दूध है। मेरा कुछ भी शाल सकोच नहीं किया, मुझे अतृप्त ही छोड़कर बीच में से भागकर दूध को उतारने चली गयी। देखूँगा इसके दूध दही मक्खन को।' माता के इस व्यवहार से बाल-कृष्ण को क्रोध आ गया। भगवान् को क्रोध क्यों आया जी ? क्रोध आना तो कोई अच्छी बात नहीं ? अच्छी बात न हो, कुछ बात तो है ही। अच्छी-बुरी दोनों ही बातों के जनक वे हैं। दैवी

आसुर दोनों ही प्रकार की सृष्टि उनसे है, समस्त भावों के जनक वे ही हैं। जब उनमें शान्ति है, तो क्रोध भी होगा, किन्तु उनका क्रोध कल्याणप्रद है, क्योंकि वे कल्याण स्वरूप हैं। माता पर जो क्रोध आया उसमें कूट-कूटकर प्रेम भरा था। जैसे गङ्गाजल में आकर सभी प्रकार के जल गङ्गाजल बन जाते हैं, ऐसे ही प्रेम-गङ्गा में जो भी भाव आ जाते हैं, वे प्रेममय हो जाते हैं। प्रेम का कोप तो भाग्य-शालियों को ही प्राप्त होता है। प्रेम का कोप पराये पर नहीं किया जाता, वह तो अपनों पर ही आता है। कृष्ण जिसे अपना करके स्वीकार कर लें और फिर उस पर कोप करें, इससे बढ़कर सौभाग्य की बात कौन-सी हो सकती है।

हाँ, तो श्रीकृष्ण के कोप के कारण बन्धूक पुष्प की अर्धोन्मीलित कलिका के सदृश युगल ओष्ठ फरकने लगे, वे अपने छोटे-छोटे शुभ्र प्रकाशमय मनोहर दाँतों से बिम्बक-वर्ण के अधर को दबाकर इधर-उधर अपने क्रोध को व्यक्त करने का साधन ढूँढ़ने लगे। माता ने जो दही बिलोने के माँट में चारों ओर पत्थर के टुकड़े लगा रखे थे, उन पर उनकी दृष्टि पड़ी, उन्होंने एक बड़े से पत्थर को उठाकर दही से भरी मटुकिया में पूरा बल लगाकर मारा। पत्थर के लगते ही पुरानी चिकनी मटुकिया फट से फूट गयी। अललल करके उसका समस्त आधा बिलोया हुआ दही भूमि पर फैल गया। माता की बरौसी कुछ दूर पर दूसरे घर में रखी थी, वह दूध को उतार कर उसके ठंडे होने की प्रतीक्षा में बैठ गयी। हड़बड़ाहट में वह इस बात को भूल ही गयी, कि श्रीकृष्ण को मैं अतृप्त ही छोड़कर चली आयी हूँ।

श्रीकृष्ण ने क्रोध में भरकर मटुकिया में पत्थर तो मार दिया किन्तु उनके हाथ कुछ नहीं लगा। अभी तक मक्खन दही से पृथक् नहीं हुआ था। पृथक हो जाता लौंदा बन जाता, तो मट्ठा के फैल जाने पर भी कुछ न कुछ माखन मिल ही जाता,

किन्तु अभी तक तो वह उसमें एकाकार ही था। मटुकी के फूट जाने पर भगवान् को कुछ भय हुआ, वे भगे वहाँ से। सोचने लगे—"माता का अपराध भी किया और कुछ हाथ भी नहीं लगा।" तुरन्त वे घर में घुस गये, छींके पर कल का माखन रखा था। समीप ही धान कूटने का काठ की बड़ी ओखली उलटी रखी थी, श्याम ने शनैः-शनैः उसे खिसकाकर छींके के नीचे किया, फिर आप उस पर चढ़ गये, जैसे तैसे माखन की कमोरी को उतार लिया। एक गफ्फा मारा माखन बड़ा मीठा था। लाभ से लोभ बढ़ा सोचा—"यहाँ बैठकर खाऊँगा, तो सम्भव है, बीच में ही माँ आ जाय, खाने न दे उलटे दण्ड दे, इसलिये इस माखन की कमोरी को लेकर यहीं एकान्त में माखन खाना चाहिये, किन्तु बाहर जाते हैं, माँ देख लेगी। उसी समय उन्हें पिछली खिड़की दिखायी दी। संयोग से वह खुली हुयी थी। आप उस कमोरी को लिये हुये उस खिरकी के नीचे उतर गये। वहाँ तमाल, बकुल, कदम्ब तथा अर्जुन के बहुत से वृक्ष लगे हुए थे। उन पर श्रीकृष्ण के सखा बानर बैठे हुए थे। वहाँ भी एक काठ का ऊखल उलटा रखा था। उसे ही श्याम ने अपना मूँढ़ा बनाया। उस पर मटुकिया को लेकर बैठ गये। बानर तो लगे हुए ही थे। बानर और बालकों को जिससे एक बार खाने को माल मिल जाता है, उससे वे हिल मिल जाते हैं। श्रीकृष्ण को देखते ही बहुत बानर अपने परिवार सहित आकर उनके चारों ओर बैठ गये। श्रीकृष्ण को अकेले तो भोजन करने में आनन्द ही नहीं आता। भोजन का रस तो तभी आता है, जब अपने अत्यन्त प्रेमी सखा साथ बैठकर हँसते खेलते मीठी बातें करते-करते खाँय। भोजन की मिठास प्रेम की बातों से बहुत बढ़ जाती है। अपने बानर सखाओं को देखकर श्रीकृष्ण अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। वे स्वयं एक ग्रास खाते और एक लौंदा उनको भी

जाते। वे ऐसे सधे हुए थे, कि फेंकते ही गेंद की भाँति बीच में से ही माखन को लपक लेते और अपने गालों में भर लेते। इस प्रकार माखन का ज्योनार होने लगी।

इधर माता ने दूध को उतार कर ठंडा किया। अग्नि ठोक पीटकर उसका बल कम किया, जब वह मृत प्रायः सी हो गयी, उसका बल घट गया, तो उस पर पुनः दूध को रखा। फिर देखती रही, इसमें उबाल तो नहीं आती। जब उस पर पतली सी जाली पड गयी, मलाई आ गयी, तब वह निश्चिन्त हो गयी। दूध पर जब मलाई पड जाती है, तब फिर वह उफनता नहीं।

इस प्रकार दूध की भली भाँति व्यवस्था करके जब माता मथनी मटुकी के समीप आयी तो उसे ऐसा लगा, मानों आँगन में दधिसागर उमड रहा है। मटुकी फूटी पडी है, दही की कीच हो रही है। फूटे माँट के भीतर पत्थर देखकर, मन्थन-गृह से दूसरे घर में श्रीकृष्ण के दधि में सने पैर देखकर माता समझ गयी, कि यह सब उस ऊधमी की ही करतूत है। वे इधर उधर देखने लगीं, श्रीकृष्ण वहाँ नहीं हैं इससे तो उन्हें पूर्ण निश्चय हो गया वही फोडकर डर के कारण भग गया है। माता को पुत्र की ऐसी चपलता पर हँसी आ गयी। बच्चों की ऐसी चचलता देखने का सौभाग्य भाग्यशाली पुरुषों को ही मिलता है। फिर भी माता को ऊपरी मन से रोष प्रकट करना है, जिससे पुनः पुत्र ऐसा कार्य न करे। अब माता को पुत्र कहाँ चला गया, इस बात की चिन्ता हुई।

लालजी वैसे तो बडे बुद्धिमान बनते हैं, किन्तु माता के सम्मुख उनकी सिटिल्ली गुम्म हो जाती है। माखन चोराने गये भी तो उस दही की कीच में ही होकर गये। जिससे उनके चरणों के चिन्ह स्पष्ट दिखायी देते थे। माता उन चरण चिन्हों

के सहारे-सहारे घर में गयीं। जाकर उन्होंने देखा कल जिस मटुकी में माखन रखा था, वह मटुकी भी छींके पर नहीं है। समझ गयी आज श्रीकृष्ण ने मेरे घर मे भी चोरी की है। तब तो गोपियों की बात सत्य ही है। वे नित्य उपालम्भ देने आतीं, तो मुझे विश्वास नहीं होता था। जब यह मेरे सामने भी नहीं चूकता, तब अन्य गोपियों को तो अवश्य ही यह छकाता होगा आज इसे दड दूँगी, मारूँगी और रस्सी से बाँध दूँगी।"

इतने में ही उनकी दृष्टि खुली हुई बाहर की खिडकी पर पडी। वे सोचने लगीं हो न हो वह ऊधमी इसी ओर से निकल कर नीचे चला गया है। कहीं भय के कारण बन मे न भाग जाय, यही सब सोचकर माता उसी ओर चलीं। उन्होने अपने छडे कड़े पाइजेब ऊँचे कर लिये थे। जिससे वह बजने न पावे। पैंछर सुनकर वह चोर भाग न जाय। चरणों को सम्हाल-सम्हाल कर माता खिडकी के समीप गयीं। वहाँ जाकर उन्होंने जो देखा उस देखकर तो उन्हे बहुत हँसी आयी वानरों की ज्योनार हो रही है। चूतडों के बल मनुष्यों की भाँति बैठे हुए वानर हाथ मे लिये माखन के लौंदा को भोग लगा रहे हैं। श्रीकृष्ण बीच में बैठे-बैठे डाँट रहे हैं। यद्यपि वे एक परसने के महत्व पूर्ण कार्य में सलग्न हैं, तो भी वे असावधान नहीं हैं। कहीं मेरी चोरी खुल न जाय, इस भय से चौकन्ने होकर इधर-उधर देखते भी जाते हैं। इधर माता तो इस ताड में थी, कि इसे मेरे आने का पता न लगे और पीछे से चुपके चुपके जाकर मैं इसे पट्ट से पकड लूँ, उधर श्रीकृष्ण इस ताड़ मे थे, कि माता मेरी चोरी को देख न पावे। उसके आने के पूर्व ही मैं माखन को खा खवाकर समाप्त कर दूँ, किन्तु माता के सम्मुख पुत्र की कैसे चल सकती है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! माता तो श्रीकृष्ण को देख रही

थीं, किन्तु श्रीकृष्ण अपने बाँटने के कार्य में व्यस्त थे। सहसा उन्होंने चुपके-चुपके हाथ में छड़ी लिये हुए माता को अपने समीप ही आते देखा। तुरन्त ही आपने माखन की मटुकिया पृथ्वी पर पटक दी। ओखली पर से उछलकर मुट्ठी बाँधकर भगे। भय के कारण वे छिपना चाहते थे, माता उन्हें पकड़ना चाहती थीं। विजय किसकी होगी इसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

नहीं अघाये श्याम रोष मैयापै आयो।
लोढ़ा ढिँगई धरयो क्रोध करि ताहि उठायो॥
मारयो तकिके माट दही को फूट्यो फटई।
फुटति मथानी भगे श्याम माखन लै झटई॥
आइ यशोदा दृश्य लखि, हँसी पुत्र पकरन चली।
सोंचे मनमें श्याम की, चोरी की कलई खुली॥

श्रीकृष्ण पकड़े गये

(८७६)

न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम् ।
पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः ॥
तं मत्वाऽऽत्मजमव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम् ।
गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ६ अ० १३-१४ श्लो०)

छप्पय

माता चुपके चली चोर की चोरी पकरन ।
निरखत इत उत समय चपल दृग जनमनरञ्जन ॥
जननी आवत लखी ओखरी तजि हरि भागे ।
पीछें दौरी मातु कृष्ण डरि काँपन लागे ।
करमहँ छोटी-सी छरी, मार नितम्बनितैं नमित ।
खुले केश सिरतें सुमन, गिरहिँ मगहिँ तन अति श्रमित ॥

जितना भी कहना, सुनना, देखना, भालना, खेलना, कूदना, आदि व्यापार है, सब माया में ही सम्भव हैं। समस्त क्रियाएँ समस्त लीलाएँ माया में ही सम्भव हैं।

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन ! जिनका न बाहर है, न भीतर, न पूर्व है न पर तथा जो इस सम्पूर्ण जगत् के बाहर भीतर आदि अन्त में विद्यमान् हैं तथा जगत् स्वरूप ही हैं, उन इन्द्रियों से अतीत माया से मानव बने अव्यक्त अच्युत को मैया यशोदा अपना पुत्र ही मानकर प्राकृत शिशु के समान रस्सी द्वारा उलूखल से बाँधने लगीं।"

माया में कुछ भी असंभव नहीं। माया के बिना जो कोई ब्रह्म या जीव होगा, वह गुम्म सुम्म लीला से रहित, कहने सुनने से हीन, रस विहीन सूखे सत्तू के समान है। वही माया का आश्रय लेकर रस बन जाता है। रसगुल्ले के सदृश मधुर सुस्वाद कहने सुनने और रसास्वादन के योग्य बन जाता है। वैष्णवों ने माया के तीन भेद माने हैं, एक तो संसार को मोहने वाली काले मूँड़ की माया, दूसरी भक्तों को मोहने वाली रसमयी माया और तीसरी स्वयं भगवान् को मोहित करने वाली परम रस रूपा अभिन्न स्वरूपा माया। सख्य, दास्य और वात्सल्य रस का आस्वादन भक्तमोहनी माया के ही द्वारा होता है और मधुर रस की अनुभूति तो भगवान् को भी मोहित करने वाली माया के आश्रय से ही हो सकती है। उसे प्राप्त करने का अन्य साधन नहीं। सख्य, दास्य और वात्सल्य रस के रसिकों के सतीप ऐश्वर्य की अपेक्षा माधुर्य की मात्रा बढ़ती जाती है। दास्य, रस में जितना ऐश्वर्य है, उतना सख्य में नहीं, सख्य में कुछ शेष भी रह जाय, तो वात्सल्य में तो उसकी परिसमाप्ति हो ही जाती है। मधुर रस में तो ऐश्वर्य कुंज कुटीरों में छिपा पैर पलोटता रहता है, हा हा खाता है और सदा भयभीत बना रहता है। वात्सल्य में कभी अकड भी है, कभी क्रोध भी है और साथ ही साथ डर भी है। वहाँ ऐश्वर्य की गति नहीं। माता कृष्ण को डाँटती हैं, फटकारती हैं, मारने को उद्यत हो जाती हैं और डराने को उन्हें बाँध देती हैं। कृष्ण ऐसा जादू जानते हैं, कि वे किसी के पकड़ में नहीं आते स्वतन्त्र हैं सभी प्रकार के बन्धनों से विमुक्त हैं, किन्तु वे भी प्रेम रज्जु से बँध जाते हैं। भक्तों के बाँधने पर बन्धन में फँस जाते हैं। यही भक्तमोहकरी माया की कमनीय क्रीडा है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् की लीला में तर्क

काम नहीं करती, चोरी के अपराध मे यशोदा मेया उन श्रीकृष्ण को दौडकर क्षण में पकडना चाहती हैं, जिन्हे पकडने के लिये योगी, यति, साधक, सिद्ध तथा अन्यान्य साधनसम्पन्न सतत प्रयत्नशील बने रहते हैं और फिर भी पकडाई मे नहीं आते। वे सब केवल चित्त से ही पकडना चाहते हैं, किन्तु माता उन्हें प्रत्यक्ष पकडकर बाँधने पर उतारू हो गयी हैं। योगी आदि तो जन्म जन्मान्तरों असख्यों वर्षों तक जप, तप, योग, अनुष्ठान करने की आशा रखते हैं, किन्तु मोटा मैया चार पग भागकर शीघ्र से पकडने को उद्यत हैं। जिन श्रीकृष्ण के भय से भय भी भयभीत होकर भागता है, वे ही भक्तभावन भगवान् माता के भय से भाग रहे हैं। माता को भान ही नहीं यह ईश्वर है। ईश्वर होगा तो अपने घर का होगा। मैया के आगे तो वह मुनमुना-सा लाला है। उसे सब काम मैया की आज्ञा से करना चाहिये। माखन उतार कर खाने का बन्दरों को बॉटने का उसे क्या अधिकार है। उसकी यह अनधिकार चेष्टा है, इसके लिये उसे दण्ड देना आवश्यक है। दण्ड तो तभी दिया जाय जब चोर पकडा जाय, सम्मुख अपराधी नहीं तो दण्ड किसे दें। इसलिये प्रथम उसकी धर पकडी होनी चाहिये इधर माता का तो यह विचार था। उधर श्रीकृष्ण ने यह नहीं सोचा—"मैंने माखन मैया का ही तो खाया है।" मेया की समस्त वस्तु पुत्र की [illegible] है। पुत्र उसका अधिकारी है, इच्छानुसार उपयोग कर सकता है। [illegible] सकता है, दान दे सकता है, सग्रह कर सकता है, यह सब उसको इच्छा पर निर्भर है। मैया की [illegible] को [illegible] लाया, उसके मक्खन को स्वय खाया, [illegible] खिलाया, इसमे चोरी को कौन सी बात है [illegible] किन्तु श्रीकृष्ण को इतनी बुद्धि कहाँ। [illegible] बने हैं। मैं तो छोटा-सा बच्चा हूँ, मुझे [illegible]

कार्य करना है, उसकी आज्ञा से ही वस्तुओं को उठाना धरना है। मुझे भूख लगे तो माता से याचना कर सकता हूँ, वह जो खिलावे वह खा सकता हूँ। उसके बिना पूछे जो वस्तु मैं उठाता हूँ, वह चोरी है, इसके लिये माँ मुझे दण्ड देने में स्वतन्त्र है। जब चोर स्वयं ही अपने को चोर स्वीकार कर ले, तो फिर अपराध सिद्ध करने की आवश्यकता ही क्या है। जिस चोरी को करते हुए प्रत्यक्ष दण्ड देने वाले ने ही पकड़ लिया, तो उसके लिये साक्षी की क्या आवश्यकता ? तुरन्त उसे वहीं दण्ड दिया जा सकता है। श्रीकृष्ण तो अपने को चोर माने ही बैठे थे, इधर मैया अपने सर्वाधिकार से छड़ी लिये हुये आ हो रही थीं, कि बिना कुछ पूछे इसे पकड़कर दण्ड देना ही आरम्भ कर दूँगी। इसीलिये उनके हाथ में छड़ी थी। चोर शक्तिभर पकड़ाई नहीं देता। श्रीकृष्ण माता को समीप ही आया देखकर भगे। माता को तो गर्व था। यह छोकरा मेरे सामने कितना भाग सकता है। चार डग बढ़कर इसे पकड़ लूँगी। इसीलिये माता अपनी पूरी शक्ति लगाकर भगी। साहस तो माता ने बहुत किया किन्तु कहाँ बालक कहाँ बूढ़ी, कहाँ छरहरे शरीर का छोरा कहाँ मोटे शरीर की मैया। कहाँ सुकुमारी गोरी रानी, कहाँ नटवर कृष्ण वर्ण का आभीर-तनय।

श्रीकृष्ण के पीछे दौड़ते-दौड़ते माँ हाँपने लगीं। एक तो उनका सम्पूर्ण शरीर ही स्थूल था, फिर नितम्बों के अतिस्थूल होने से वे बालकों के साथ कैसे भाग सकती थीं आशा में भगी थीं, भागने से उनकी चोटी इधर से उधर झोटा खा रही थी, मानों माता को मना कर रही हो, कि माखन के पीछे माधव को मत मार, किन्तु माता उसकी ओर भी दृष्टिपात नहीं करती थीं। मुखारविन्द से अनन्य स्वेदकण निकल-निकलकर माता का क्रोध शान्त हो, उनकी कोपाग्नि हमारे शीतल कणों से शान्त हो,

अतः वे छिद्रों से निकल निकलकर बाहर आ रहे थे, किन्तु माता उनको क्रोध मे भरकर दड देती, तुरन्त अपने कोमल करो से उन्हें मिटा देती, उनके स्थान मे दूसरे आ जाते, अतः एक हाथ मे तो मैया स्वेद-बिन्दुओं से समर करती जाती, एक हाथ में छड़ी हिलाते हुए वह दौड़ी ही जाती थी।

श्रीकृष्ण ने देखा माता मानेगी नहीं। वे चाहते तो जिन सखाओं को अब तक माखन खिला रहे थे, उनकी ही सहायता से पेड़ पर चढ़ जाते। मैया पेड़ पर तो चढ़ ही नहीं सकती थी, इतने में ही बाबा आ जाते। वे मैया से बड़े हैं, वे बल-पूर्वक उसे मारने से रोक देते, किन्तु श्रीकृष्ण तो इतने डर गये, कि उन्हें भागने के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय ही न सूझा। अब मैया के आगे कितना भाग सकते थे, तुरन्त पकड़ाई में आ गये। श्रीकृष्ण का सब बल समाप्त हो गया। माता के सम्मुख वे अपराधी चोर के सदृश खड़े हो गये। जब जीव सब ओर से प्रयत्न करके हार जाता है, तब वह रोने लगता है, जिसके सम्मुख रोता है, यदि वह दयालु हुआ, तो रोने से उसे अवश्य ही दया आ जाती है। इसीलिये बालक प्रत्येक आवश्यक कार्य के लिये माता के सम्मुख रो जाते हैं। रोना ही निश्छल सरल बालकों का बल है। श्रीकृष्ण भी जब सब करके हार गये, तब माता के सम्मुख भय से थर-थर काँपते हुए रोने लगे अपराधी तो थे ही, दण्ड तो उन्हें मिलना ही चाहिए, अब रो धोकर दण्ड कुछ न्यून कराया जाय, इसके लिये वे मातृ हृदय में करुणा उत्पन्न करने का प्रयत्न करने लगे। रात्रि मे माता ने नेत्रों में मोटा-मोटा काजल लगाया था, वे चाहते थे, नेत्रों में आँसू आ जायें। आँसुओं को देखकर सहृदय पुरुषों का हृदय पसीज जाता है, किन्तु आज आँसुओं ने भी समय पर विश्वासघात किया, वे अपनी इच्छा से माता के सम्मुख नेत्रों से निकलते ही नहीं थे, मानों वे भी माता से डरते हों। अब

श्रीकृष्ण ने देखा, कि समय तो मेरे विपरीत हो गया, आँसू ये भी अवसर पर बाहर नहीं निकलते, तब तो वे अपनी लाल-लाल गुदगुदी हथेलियों से नेत्रों को मसलने लगे। मानों कह रहे हैं "दुष्टो ! तुम ऐसे समय क्यों सूख गये, तो दो चार निकल पड़ो। आँसू तो नेत्रों के भीतर थे, ऊपर तो काजल था। काजल फैल गया। उसने लाल हथेली को लाल कपोलों को काला कर दिया। किसी का भी सङ्ग करो उसका कुछ न कुछ रङ्ग तो चढ़ेगा ही।

अपराधी आँखें तो मिला नहीं सकता। श्रीकृष्ण पिटने के भय से व्याकुल नेत्रों से आकाश की ओर निहारने लगे। वे नीले आकाश की ओर देखकर मानों कह रहे हैं—"आकाश! मेरा तेरा वर्ण एक-सा है तू ही जल बरसा दे, तू ही इन नेत्रों को आर्द्र कर दे, जिससे चार बिन्दु जल तो इनमें निकल आवे।" किन्तु आकाश इस लीला को देखकर हँस रहा था। मानों कह रहा हो—"हम सब भूतों को आपने बाँध रखा है मिला-जुलाकर गड़बड़ घुटाला कर रखा है। अब तुम भी बँधकर देख लो बन्धन में क्या स्वारस्य है ?"

माता ने भय के कारण दृष्टि फेरे हुये श्रीकृष्ण के दोनों हाथ पकड़ लिये और धमकाती हुई बोलीं—"क्यों रे मेरे बाप! तू चोरी करना भी अभी से सीख गया है ? गोपियाँ मुझसे आ-आकर कहती थीं उनकी बात पर मुझे विश्वास नहीं होता था, किन्तु आज मैंने तुझे प्रत्यक्ष चोरी करते देखा है। अब मैं तुझे बिना मारे छोड़ूँगी नहीं।" यह सुनकर श्रीकृष्ण तो मारे डर के थर-थर काँपने लगे।"

माता का उद्देश्य पुत्र को डराना तो था नहीं वह चोरी पर चिढ़ी हुई थी। श्रीकृष्ण ने कहा नहीं, कि मैं चोरी न करूँगा। ये तो बोलते ही नहीं। मौनी बाबा बन गये हैं। माता अब स्वयं

डरने लगीं। उन्होंने सोचा—"छोटा बच्चा है, बहुत डर गया है, कहीं इसके हृदय में डर बैठ गया, तब तो अनर्थ हो जायगा।" यह सोचकर उन्होंने हाथ की छड़ी फेंक दी। मानों उन्होंने संकेत किया, कि तू मेरे शरीर से उत्पन्न हुआ है, अतः अन्यत्र उत्पन्न होने वाली छड़ी से तुझे नहीं मारूँगी।" छड़ी फेंकने से श्रीकृष्ण को कुछ कुछ सान्त्वना हुई।

मैया तो बड़ी पुत्रवत्सला थीं, हितैषिणी थीं वे पुत्र के हित के लिये ही दण्ड देना चाहती थीं। छड़ी की मार बड़ा दण्ड है, इसलिये, छड़ी फेंककर वे बोलीं—"अच्छा! तुझे मारूँगी तो नहीं, किन्तु रस्सी से बाँधूँगी, अवश्य। तू बड़ा चंचल हो गया है। यहीं तुझे बछड़े की भाँति बाँधकर रखूँगी, जिससे तू किसी दूसरे के यहाँ चोरी करने न जा सके।"

श्रीकृष्ण तो कुछ बोलते ही नहीं थे। माता ने निश्चय कर लिया इसे आज बाँधना ही है। एक दिन बाँधने से इसकी चोरी की लत छूट जायगी। नहीं तो यह और भी अधिक उच्छृङ्खल हो जायगा। सोचा—उन्होंने यह कि कुछ देर इसे बाँध रखूँगी। फिर गोपियाँ आकर अपने आप इसे छुड़ा देंगी।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! प्रेम की लीला तो देखिये, जिसका न भीतर है, न बाहर है, जो न पूर्व है न पर है, जो सभी प्रकार के बन्धनों से निर्मुक्त है, उन्हें माता रस्सी से बाँधना चाहती हैं। शरीर को बाँधकर उसे दूसरी वस्तु से कस देना यही बन्धन है। श्रीकृष्ण के लिये पर क्या अपर क्या? बन्धन क्या मोक्ष क्या? किन्तु ये सब तो ज्ञान की बातें हैं, यहाँ तो माता पुत्र में प्रेम की वात्सल्यमयी लीला हो रही है। इसका आस्वादन द्वैत के बिना नहीं हो सकता। बन्धन तो प्रेम का स्वरूप है। 'बन्धनात् बन्धुरुच्यते, जो अपने प्रेम पाश में हमें कसकर बाँध ले, वही बन्धु है। प्राणियों के एक मात्र बन्धु श्री हरि ही हैं,

इसीलिये मैया ने अपनी वैंणी में से अपने केशों की बटी रस्सी खोली और पुत्र को बाँधने के लिये उद्यत हुईं।"

छप्पय

जिनको जप, तप, ध्यान, योगतैं पकरि न पावें।
तिनकूँ जननी छरी लिये डर सहित भगावें॥
देह थूल सुकुमार श्रमित जब जानी माता।
स्वय पकड़महँ आइ गये तब भव भय-त्राता॥
निज करतैं हरि-कर पकरि, बोली क्यों चोरी करी?
रोये आँखिनि मीड़ि प्रभु, तब जननी फेंकी छरी॥

दामोदर की दयालुता

[८८०]

स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः ।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत्स्वबन्धने ॥
एवं सन्दर्शिता ह्यङ्ग हरिणा भृत्यवश्यता ।
स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ९ अ० १८-१९ श्लोक)

छप्पय

कसिकें पकरे श्याम दई मीठी सी गारी ।
हरिकूँ बाँधन हेतु कचनि तैं डोरि निकारी ॥
दयो लपेटा एक कमर महँ बाँधन लागी ।
द्वै अंगुल कम रही जेवरी दूसरि माँगी ॥
पुनि द्वै अंगुल कम रही, पुनि बाँधी पुनि कम भई ।
घर की सब रस्सी चुकी, हँसी मातु विस्मित भई ॥

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! श्रीकृष्ण ने जब देखा मेरी माता के शरीर पर पसीना आ गया है, उनकी चोटी में गुथे फूलों की मालायें अस्त व्यस्त हो गयी हैं। माता को इस प्रकार परिश्रम युक्त देखकर भगवान् को कृपा आ गयी और व अपने आप बँध गये। महाराज ! इस प्रकार भगवान् अपनी भृत्यवश्यता दिखावें नहीं तो ब्रह्मादि ईशों के सहित विश्व जिनके अधीन है, उन स्वाधीन श्रीकृष्ण को कौन बाँध सकता है ?"

बंधन के बिना रस नहीं। जो बन्धन से मुक्त है, वह रस का आस्वादन कैसे करेगा। अंतर इतना ही है, कि जीव जब विषयों के साथ बँध जाता है, तब वह बद्ध बन जाता है, जब उसका संयोग शिव के साथ हो जाता है, तब उसकी मुक्ति संज्ञा होती है, किन्तु एक रस इससे भी भिन्न है, जिसमें न जीव विषयों से बँधता है न ब्रह्म से। वह स्वयं ब्रह्म को बाँध लेता है। इसी का नाम है पंचम पुरुषार्थ। इसे रागमार्ग रसअध्वा या प्रेमपन्था कहते हैं। इसमें जीव शिव के साथ सायुज्य लाभ नहीं करता, किन्तु उसे ही बाँधकर इच्छानुसार नचाता है। कोई दास बनकर सेवा से अधीन करके स्वामी को नचाते हैं, कोई सखा बनाकर मित्रता जोड़कर बाहुपाश में बाँधकर मित्र के हृदय से अपने हृदय की तन्त्री को बाँध लेते हैं। कोई स्वयं माता-पिता बनकर उन सर्वेश्वर को सुत बनाकर उनका लालन-पालन करते हैं, लाला कहकर बुलाते हैं, अपराध पर डाँटते फटकारते हैं। अपराध करने पर उसके उदर को प्रेम की दाम से बाँध देते हैं। और कोई उन्हें कान्त, प्रेष्ठ, प्रिय, प्राणनाथ तथा पति मानकर रति के बन्धन से बाँधकर इच्छानुसार नचाते हैं, रुलाते हैं और उससे बार-बार हा-हा खवाते हैं। प्रेम का बन्धन बड़े भाग्य से होता है इसमें बँधकर जीव भी कृतार्थ हो जाता है और ब्रह्म भी अपने को धन्य-धन्य मानता है। यह बन्धन अत्यन्त भाग्य से प्राप्त होता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! माता ने श्रीकृष्ण को पकड़ लिया। बालक को अत्यन्त भयभीत देखकर उन्होंने छड़ी फेंक दीं और बोलीं—"तुझे बाँधूँगी।" यह कहकर वह अपने जूड़े में से बालों की बनी रस्सी खोलने लगीं। माताएँ जब केश को झाड़ती हैं, तब उनमें से जो टूटे-फूटे बाल निकलते हैं उन्हें सम्हाल-सम्हाल कर रखती जाती हैं। जब वे बहुत हो जाते हैं,

तब उन्हें बटकर उनकी रस्सी बनाती हैं, उसी से अपने जूड़े को बाँधती हैं। माता ने सोचा यह, कि मैं अपने तनय को तन से उत्पन्न बालों को ही रस्सी से बाँधूगी। भिन्न वस्तु का बन्धन भिन्नता करता है।

श्रीकृष्ण कैसे भी शिशु थे, फिर भी थे तो वे ईश्वर ही कोई राजा चाहें भिखारी बनकर प्रजा में घूमें, किन्तु उसका राजापना तो नष्ट न होगा। भगवान् की ऐश्वर्यादि जो शक्तियाँ थीं वे तो कहीं चली नहीं गयीं थीं। वे तो उनके साथ ही थीं, किन्तु उनका उन्होंने उपयोग नहीं किया। वे उनसे काम नहीं लेते थे। भक्त-वत्सलता के वशीभूत होकर भोरे बालक बने थे। ऐश्वर्यादि शक्तियाँ अणिमादि सिद्धियाँ सदा श्याम के मुख को जोहती रहतीं, कि कुछ हमारी भी सेवा स्वीकार की जाय, किन्तु जब बालक ही बन गये, तो विचित्र शक्तियों अणिमादि सिद्धियों का क्या काम? फिर भी बीच-बीच में जब श्रीकृष्ण को अत्यन्त सकट में फँसा हुआ ये शक्तियाँ देखतीं, तो उनसे रहा नहीं जाता, वे तुरन्त श्रीकृष्ण की सहायता को दौड़तीं। श्रीकृष्ण की क्षुद्र शक्तियाँ क्या सहायता कर सकती हैं जी?" न कर सकें सहायता यह दूसरी बात है, किन्तु सकट के समय उनसे रहा नहीं जाता। एक अत्यन्त ही सुकुमारी कोमलाङ्गनी पतिपरायणा रानी है, उसका परम पराक्रमी शूर-वीर विश्वविजयी पति है, उसके साथ जल विहार कर रहा है। जल विहार करते-करते वह गहरे जल में जाकर डूबने लगता है। यद्यपि उसकी प्राणप्रिया अत्यन्त ही सुकुमारी है, तैरना भी नहीं जानती, फिर भी पति को सकट में फँसा देखकर उससे रहा नहीं जाता, वह उसे संकट से उबारने दौड़ती है। यद्यपि उसका प्रयास निष्फल है, बचाने कूदा जायगी स्वयं ही डूब जायगी, एक नया खेल हो जायगा, भले ही हो जाय, किन्तु हरि को नेत्रों के सम्मुख विपत्ति में देख;

कर उससे रहा नहीं जाता, वह अपनी पूरी शक्ति लगाकर उसे बचाने का प्रयत्न करती है न बचा सके यह दूसरी बात है।

श्रीकृष्ण अनन्तकोटिब्रह्माण्डों के ईश्वरों के भी ईश्वर हैं, आज वे बालक बने माता यशोदा के अधीन हैं, ऐश्वर्यादि शक्ति अपने स्वामी की इस लीला को देखकर लज्जित हैं। हमारा स्वामी स्वतन्त्र ईश्वर है वह किसी की मानने वाला तो है नहीं। उसे जब जो धुनि सवार हो जाय, उसे वह पूरा ही करके छोड़ेगा। अब वह फँसा भी तो कहाँ, एक गोकुल की गँवारिनी गोपी के यहाँ। यह गोपी इसकी महत्ता को जानती नहीं, इससे ऐश्वर्यादि शक्तियों को बड़ा दुःख होता है। जब माता वत्सलता की परा-काष्ठा कर देती है। सर्वेश्वर को दण्ड देने के निमित्त प्रस्तुत हो जाती है, तब शक्तियो का साहस छूट जाता है। वे श्रीकृष्ण की सहायता करने दौड़ती हैं। मिट्टी खाने के समय भी ऐश्वर्य शक्ति ने श्रीकृष्ण के मुख में अपना चमत्कार दिखाया, किन्तु माता पर उसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। उसने समझा न जाने मेरे लाल के मुख में यह क्या अलाई बलाई दिखायी देती है। जननी ने उसे जंजाल ही माना।

अब इस समय भी जब इतने भयभीत कृष्ण को भी माता छोड़ती नहीं, उसे बाँधने पर ही तुली हुई है, तो ऐश्वर्य शक्ति का बाँध टूट गया। उससे श्रीकृष्ण की ऐसी दुर्दशा न देखी गई। उदर में आकर बैठ गयी। माटी खाने के अवसर पर तो उसने मुख में विश्व ब्रह्माण्डों के दर्शन कराये थे, अब उदर में अनन्त शक्ति को बिठाया। कृष्ण की कमर तो ज्यों-की-त्यों ही रही। जैसे अर्जुन को विश्वरूप दिखाते समय भगवान् का शरीर भी विश्वमय बन गया था। यहाँ वह बात नहीं। श्रीकृष्ण की कमर उतनी ही है; उनके अंगो में कोई वृद्धि नहीं, कोई परिवर्तन नहीं, किन्तु उसका अन्त नहीं।

उलटे आनन्द ही आया कि इस प्रेममयी खिलवाड़ को हमें स्वयं आँखों से देखने का सुअवसर प्राप्त होगा। इसी विचार से झुण्ड की झुण्ड गोपियाँ क्षण भर में एकत्रित हो गयीं। श्रीकृष्ण अपराधी की भाँति खड़े थे। उनके उदर में माता ने दाम लपेट रखी थी, वह दोनों हाथों से रस्सी के दोनों छोरों को पकड़े दूसरी रस्सी की प्रतिक्षा कर रही थी, कि इतने में ही दासी दूसरा जूड़ा लेकर आयी और बोली—"रानी! रहने दो, बच्चा है, कोई बात नहीं आपके माखन की कमी थोड़े ही है।"

झिड़ककर मैया बोलीं—"चल हट, बड़ी हेजवाली बनी है। माखन की क्या बात है। चाहे जितना खावे; चाहे जितना लुटावे। इसे जो चोरी की लत पड़ गयी है, यह बहुत बुरी बात है, आज मैं इसे बिना बाँधे छोड़ूँगी नहीं।" दासी अब और क्या कहती, वह तो दासी ही ठहरी। मैया के माँगने पर रस्सी दे दी। मैया ने पहिली रस्सी में इस रस्सी को जोड़ा, फिर एक चक्कर लगाकर गाँठ देने को उद्यत हुयी, तो फिर दो अंगुल छोटी पड़ी। फिर दूसरी रस्सी मँगायी उसे भी जोड़कर बाँधी, दो अंगुल कम हुई। इस प्रकार माता जितनी भी रस्सी जोड़ती दो अंगुल कम रह जाती।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! रस्सी दो ही अंगुल कम क्यों होती थी?"

हँसकर सूतजी बोले—"महाराज! जीव में और ईश्वर में दो ही अंगुल का अन्तर है। एक अंगुल तो जीव की कमी है, कि वह अपने अहंकार को नहीं छोड़ता। एक अंगुल भगवान् की भी कमी है, कि वे कृपा नहीं करते। जीव अपने कर्तृत्व के अभिमान को छोड़ दे और भगवान् कृपा कर दें, तो फिर कमी शेष नहीं रह जाती।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! भगवान् की ओर से तो कुछ

कमी नहीं है, उनकी कृपा की दृष्टि तो निरन्तर समान भाव से जीवों पर होती रहती है। उसे ग्रहण करने की पात्रता ही न हो, तो भगवान् क्या करें ? स्वाति की वर्षा सर्वत्र होती है। सीपी मे पात्रता है, तो उसमे पडते ही स्वाति की बूँद मोती बन जाती है। हाथी के मस्तक पर पडने से गजमुक्ता हो जाती है। केला में पड़ने से कपूर, बाँस मे पडने से वंशलोचन तथा गो पर पड़ने से गौरोचन बन जाती है। वही तालाब, मोरी कीच आदि में पड़ने से व्यर्थ बन जाती है। इनमे उसे ग्रहण करने की पात्रता नहीं। इसलिये कमी जीव की ही है, ईश्वर की कुछ कमी नहीं।"

सूतजी बोले—"हाँ, महाराज ! आपका यह कहना सत्य है, भगवान् की कृपा की वृष्टि तो प्राणि मात्र पर समान रूप से होती है, किन्तु पात्रता कोई उनकी कृपा के बिना अपने पुरुषार्थ से प्राप्त थोड़े ही कर सकता है। जीव पुरुषार्थ किये बिना रह ही नहीं सकता। उसकी उत्पत्ति ही पुरुषार्थ के लिये है। पुरुष का जो अर्थ-प्रयोजन है वही पुरुषार्थ कहलाता है। पुरुषार्थ करते-करते जहाँ जीव थक जाता है। सब प्रकार से असमथ अपने को अनुभव करने लगता है, तब श्रीकृष्ण स्वयं कृपा करते हैं और बँध जाते हैं। अतः जीव का धर्म है अपनी ओर से कुछ उठा न रखे। निरन्तर अखड पुरुषार्थ करता रहे। पुरुषार्थ करते-करते जब थक जाय उनके उदर का पार न पावे, तब भगवान् एक अंगुल बढ़कर कृपा करते हैं और उसको प्रेम पाश को पूरी करके स्वय बँध जाते हैं। माता को गर्व था, मेरे यहाँ इतनी रस्सियाँ हैं, कि उनसे मैं कृष्ण को बाँध लूँगी। कृष्ण हँसते रहे देखते रहे। माता ने रस्सियाँ मँगायी। जब उसकी सब रस्सियाँ समाप्त हो गयीं। असफलता के कारण दुखी नहीं हुई मुस्कारा गयीं, आश्चर्य चकित होकर कृष्ण की ओर देखने लगीं।"

माता अपनी पूरी शक्ति लगा चुकी थीं, उसने अपनी ओर

से कोई कोर कसर नहीं छोड़ी थी। घर की तो सब रस्सियाँ समाप्त हो गयी थीं। पास पड़ोस की गोपियाँ भी कुतूहल वश अपने अपने घर से रस्सियाँ उठा लायीं। वे कृष्ण को बँधा हुआ देखना चाहतीं थीं। "श्रीकृष्ण हमें नित्य छकाते हैं, आज उन्हें भी तो चोरी का फल मिलना चाहिये। वे छल से गोपियों को बाँध कर हँसते रहते हैं, आज इन्हें भी हम बँधा देखकर हँसेंगी। मैया रस्सी के अभाव में बाँध नहीं पाती। हम मैया की सहायता करेंगी। उन्हें यथेष्ट रस्सियाँ देंगी। किन्तु उनकी सहायता किसी काम न आयी श्रीकृष्ण नहीं बँधे नहीं बँधे। दो अगुल की कसर रह ही गयी। रस्सियों को जोड़ते-जोड़ते मैया थक गयी थीं। उनका सपूर्ण शरीर स्वेद से लथपथ हो गया, उनकी वेंणी में गुथीं हुईं मनोहर मालायें अपने स्थान से खिसककर ढीली हो गयीं। मुख पर चिन्ता और विषण्णता के चिन्ह स्पष्ट दिखाई देने लगे। माता की ऐसी दशा देखकर श्रीकृष्ण को कृपा आ गयी। उनके हृदय में कृपा का संचार हुआ। कृपा के उदय होते ही ऐश्वर्य शक्ति डर गयी। उसने सोचा—"जहाँ कृपा है वहाँ मेरी दाल न गलेगी। दया में तो कर्तव्य पालन किया भी जा सकता, किन्तु कृपा के वश होने पर तो सब कुछ भुला दिया जाता है।"

यह सुनकर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! हम तो दया कृपा को एक ही समझते थे। अब आप इन्हें दो बता रहे हो?"

सूतजी ने कहा—"महाराज! दया कृपा वास्तव में एक ही वस्तु है। कहीं-कहीं इन दोनों को पर्यायवाची माना गया है, किन्तु फिर भी कृपा और दया में कुछ अन्तर है। दया तो सब पर समान रूप से होती है, दूसरों को दुखी देखकर उनके दुःख को दूर करने की जो भावना है वही दया कहलाती है, किन्तु वही दया जब अपने सम्बन्धियों पर होती है, तो उसका नाम कृपा है। दया में सम्बन्ध की अपेक्षा नहीं। कृपा में सम्बन्ध आवश्यक

है। कोई हमारी सेवा करता है, उससे स्वामी सेवक का सम्बन्ध हो गया है। उस सेवा परायण व्यक्ति के दुःख को देखकर उसे दूर करने की जो भावना है उसी का नाम कृपा है। अथवा जिन्होंने किसी से ममतापने का सम्बन्ध जोड़ लिया है, जो पुत्र हैं पति हैं पत्नी हैं उन्हें दुखी देखकर होने वाली करुणा कृपा है। अर्जुन को युद्ध में अपने सगे सम्बन्धियों को देखकर मोहवश यही कृपा उत्पन्न हुई थी। कृपा से बन्धन होता है। भगवान् दया तो प्राणीमात्र पर करते हैं, किन्तु कृपा उन्हीं पर करते हैं जो उनसे सख्य, वात्सल्य, दास अथवा मधुर सम्बंध स्थापित कर लेते हैं। इन सम्बन्धियों का जब श्रीकृष्ण थका हुआ देखते हैं तो "कृपयासीत् स्वबन्धने" अपने आप ही कृपा करके बन्धन में बँध जाते हैं।"

श्रीकृष्ण ने सोचा—"मेरी माता अब अधिक दुखी हो गयी है, उन्होंने टेढी भ्रुकुटि करके ऐश्वर्य शक्ति की ओर देखा भगवान् की कुटिल भ्रुकुटि को देखते ही ऐश्वर्य शक्ति भग गयी। अनन्त का शरीर पुनः सीमित हो गया। वे साधारण गोपकुमार से हो गये। माता ने उन्हें एक ही रस्सी में बाँध लिया।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! श्रीकृष्ण को भला संसार में कौन बाँध सकता है। बाँधने में तो वही समर्थ हो सकता है, जो बँधने वाले से रूप में, आकर्षण में, गुण में, ऐश्वर्य में, सरलता में उससे अधिक हो। श्रीकृष्ण से बढ़कर सुन्दर कौन हो सकता है। उनके समान आकर्षण संसार की किसी भी वस्तु में सम्भव नहीं। सद्गुणों की तो वह खानि ही हैं। समस्त सद्गुण उन्हीं से उत्पन्न हुए हैं, वे गुणों के नियामक हैं। ऐश्वर्य उनके समान किसका हो सकता है, उन्हें किसी वस्तु का अभाव भी नहीं, कोई उनसे बड़ा भी नहीं। जहाँ उस वस्तु को देखते हैं, वहीं रीझ जाते हैं, वहीं बँध जाते हैं। वह वस्तु है 'प्रेम' वे प्रेम के अधीन होकर भक्तों

के वश में हो जाते हैं। इस प्रकार माता के द्वारा स्वयं ही बँधकर उन समस्त बन्धनों से मुक्त करने वाले सर्वेश्वर ने यह दिखला दिया, कि "मैं भक्तों के वश में हूँ। भक्त मुझे जैसी नाच नचावेंगे, वैसी ही नाच मैं नाचूँगा। जहाँ रखेंगे वहीं रहूँगा। वे जो कहेंगे वही करूँगा। उनके बाँधने पर बँध जाऊँगा।" अतः अपनी माता पर कृपा करके वे स्वयं ही बन्धन में बँध गये।

छप्पय

चकित चकित ह्वै मातु लाल को उदर निहारें।
पुनि पुनि पकरें पेट भयो का समय बिचारें॥
भयो स्वेद सब अंग थके खुलि बाल गये सब।
माला खिसकी गिरे फूल हरि रीझि गये तब॥
कृष्ण कृपा जिन पै भई, तिनके कारज सध गये।
श्याम नेह वश आपु ही, प्रेमपाशमहँ बँध गये॥

जीवोद्धारिणी-लीला

[८८१]

कृष्णास्तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः।
अद्राक्षीदर्जुनौ पूर्वं गुह्यकौ धनदात्मजौ ॥*
(श्रीभा० १० स्क० ६ अ० २२ श्लोक)

छप्पय

गोपी कीही विदा करें गृह कारज मैया।
ग्वाल बाल मिलि कहें खेल कछु होवै भैया॥
दाम उदरमहँ कसी उलूखल महँ सो बाँधी।
उलट्यो गाड़ी बनी बैल बनि प्रभु ने साधी॥
ग्वाल बाल तिकि तिकि करें, हाँके हरि खींचन लगे।
सम्मुख यमलार्जुन लखे, धनदपुत्र धनमद ठगे॥

कोई रोटी बनाने वाला है, भोजन तो वह सबको बनाकर खिलाता है, उसका काम ही है, सबकी तृप्ति करना। किन्तु जिससे उसकी एकान्तिक मित्रता है, उसे वह प्रेम पूर्वक खिलाता है। पदार्थ वे ही हैं, उनमें कोई विशेषता नहीं। परसने वाला भी वह है, किन्तु उसमें कर्तव्य के पालन के अतिरिक्त प्रेम और मिला दिया है। प्रेम वस्तुओं में तो नहीं होता, वह तो भिन्न

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जब माता अपने गृह कार्यों में व्यग्र हो गयी, तो प्रभु श्रीकृष्णचन्द्र ने सम्मुख अर्जुन के दो वृक्ष देखे। ये दोनों पूर्वजन्म में यक्षों के पति कुबेरजी के पुत्र थे।"

वस्तु है उसे चाहे जिस वस्तु मे मिला दो, वही सरल बन जायेगी। मुक्तिदाता श्रीहरि सबको मुक्ति देते हैं। उनका काम ही मुक्ति देना है। वे योगी, यति, संन्यासी, त्यागी, ज्ञानी, ध्यानी तथा सभी प्रकार से साधकों को मुक्ति प्रदान करते हैं, किन्तु भक्तों को जिस सुख से वे प्राप्त होते हैं, उस सुख का शुष्क तत्वज्ञानी भला कैसे अनुभव कर सकते हैं। पतिव्रता पत्नी घर भर के लोगों की सेवा करती है, सबकी रसोई बनाती है, सबके स्थान को लीपती है, सबसे हँसकर बोलती है, ऊपर से देखने में पति के साथ कोई विशेष व्यवहार नहीं करती, किन्तु पति के साथ जो उसका ऐकान्तिक सम्बन्ध है वह पति को ही प्राप्त हो सकता है। जो श्रीकृष्ण के साथ सम्बन्ध स्थापित करके भक्ति करते हैं, वह सुख ब्रह्मादि देवों को, योगियों को तथा आत्मस्वरूप तत्व ज्ञानियों को भी दुर्लभ है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! श्यामसुन्दर कृपा के वशीभूत होकर स्वयं ही बँध गये। माता ने उनके सुन्दर पीपल के सदृश चढ़ाव उतार के नीचे जहाँ कौंधनी पहिनी जाती है, वहीं एक छोटी-सी रस्सी बाँध दी। मानों माता ने काले कृष्ण को कृष्ण वर्ण की दूसरी कौंधनी पहिना दी हो। जिस काठ के उलूखल पर श्याम बैठे थे वह डमरू के समान ऊपर नीचे गोल था बीच में पतला था। माता ने एक दूसरी बड़ी रस्सी लेकर उसका एक छोर तो श्याम की कटि में बँधी डोरी में बाँध दिया और उसका दूसरा छोर खड़े हुए उलूखल के बीच में बाँध दिया, जिससे कृष्ण कहीं भाग न जायँ। इस प्रकार माता ने पुत्र को बाँध ही दिया। गोपियाँ सैनों में ही श्याम को खिजा रही थीं। कोई-कोई मुँह मटकाकर सैंन चलाकर कह रहीं थीं—"कहो लालाजी! कैसे बँधे। नित्य हमें छकाया करते थे। कहाँ गई अब तुम्हारी हेकड़ी? अब बोलो, तुम्हें कौन छुड़ाता है?"

माता यद्यपि बूढ़ी थी, फिर भी इन युवती गोपियों की सैनों में की हुई बातों का वह अर्थ समझती थीं। उसने सोचा—"ये यौवन के मद में मदमाती गूजरियाँ जब तक रहेंगी, मेरे लाल को चिढ़ाती ही रहेंगी अतः वह बोली—"वीर! अब अपने-अपने घर जाओ। घर का भी तो काम धन्धा देखना चाहिये। गोपियाँ जाना नहीं चाहती थीं, किन्तु जब घरवाली स्वयं ही युक्तिपूर्वक खदेड़ रही है, तो कैसे बैठें, फिर भी वे जाने में कुछ आना कानी करने लगीं। यह देखकर मैया स्वयं उठी और अपने घर के कार्यों में लग गयीं। गोपिकाओं ने समझ लिया, इस बुढ़िया को हमारा यहाँ बैठना अखर रहा है। इसलिये वे भी एक-एक करके सब चली गयीं। श्रीकृष्ण के बहुत से सखा भी एकत्रित हो गये थे। माता यह चाहती थी। बहुत से बालक श्याम के समीप रहें, उसका मन लगा रहे। अतः बच्चों को उन्होंने एक एक बड़ा लड्डू दिया और कहा—"बेटाओ! यहीं खेलना भला!"

बच्चे बड़े प्रसन्न हुए, माता हाथों से तो काम करती जाती थीं, किन्तु दृष्टि उनकी श्रीकृष्ण के ही ऊपर लगी थी। वह बार-बार सोच रही थी—"अब बहुत हो गया खोल दूँ, किन्तु फिर सोचती, कुछ देर तो बँधा रहे। बँधने मे उसे कोई कष्ट भी नहीं बालकों के साथ आनन्दपूर्वक हँस खेल रहा है। जब रोने लगेगा, तब खोल दूँगी।" यही सब सोचकर वह चुपचाप काम में जुटी थी।"

लड़कों ने कहा—"कनुआ भैया! लड्डू खायेगा?"

श्याम बोले—"भैया! तुम दे दोगे तो खा लूँगा।"

कोई बोला—"भैया! हमने तो दाँत गड़ा दिया है।"

श्याम ने कहा—"तो क्या हुआ मैं नीचे से खा लूँगा।"

यह सुनकर सब अपने-अपने लड्डू में से श्याम को देने लगे। श्याम ऐसे खा रहे थे, मानो बहुत दिनों के भूखे हों। ओ यशों में

विधि विधानपूर्वक बनाये, चरु को भी वेद मन्त्रों से बार-बार स्तुति करने पर नहीं खाते, वे ही आज जंगली गोप ग्वारियों के छोराओं की जूठन खा रहे हैं।

खा पीकर सखाओं ने कहा—"भैया, अब तो कुछ खेल होना चाहिये।"

श्रीकृष्ण ने कहा—"अरे, भैया! मुझे तो मैया ने बाँध दिया है, खेल क्या हो।"

एक चतुर-सा गोप बालक बोला "बन्धन का ही खेल हो। खेल में भी तो बन्धन ही है। हम सब इस उलूखल को उलटे देते हैं, यह तो गाड़ी बनी बनाई है, तू बैले की भाँति बँधा ही है। गाडी का ही खेल हो। तू खींच हम सब हाँकेंगे।"

भगवान् बोले—"हाँ, भैया! यह तुमने अच्छी सुझायी। खींचने में तो मैं बड़ा निपुण हूँ। कर्षण करने से ही मुझे कृष्ण कहते हैं। मैं खींचूँगा, तुम लोग हाँकना।"

अब क्या था, बन्धन में भी खेल आरम्भ हुआ। श्रीकृष्ण खेलने के अतिरिक्त कुछ जानते ही नहीं। कौतुकी ही जो ठहरे। हुआ खेल का आरम्भ। ग्वाल बाल तिक-तिक करके वृषभ बने बालकृष्ण को हाँकने लगे और कहने लगे—"हाँ, भैया! कनुआ खींच गाड़ी को, देखें, तैंने अपनी मैया का कितना दूध पीया है।" यह सुनकर श्रीकृष्ण ने मन बल लगा दिया। गाड़ी आगे नहीं बढ़ी सब ताली बजाने लगे—"अड़ियल बैल है अड़ियल।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! जो इन अगणित विश्वब्रह्माडों को ढो रहे हैं, उनसे ओखली नहीं खिसकी, इसका क्या कारण है? भगवान् ओखली को क्यों नहीं खींच सके?"

हँसकर सूतजी बोले—"महाभाग! खेल में 'क्यों' का प्रश्न नहीं उठता। खेल तो खेल ही है। जो लोग खेल को खेल न समझ कर सत्य मानते हैं, वे ही क्यों क्यूँ के चक्कर में फँस जाते हैं।

सब श्रीकृष्ण की क्रीड़ा है, सब उन खिलाड़ी का खेल है, सब उन वृन्दावन विहारी का विहार है, सब उन परम कौतुकी का कौतुक है, इसे देखते जाओ, हँसते जाओ, यही श्रेष्ठ साधन है।"

यह सुनकर शौनकजी ने कहा—"सूतजी! जहाँ हम श्रीकृष्ण के स्वरूप को भूल जाते हैं, वहीं 'क्यों' कहने लगते हैं, वह रुक जाते हैं, हाँ तो फिर गाड़ी चली या नहीं ?"

सूतजी बोले—"चली क्यों नहीं, महाराज! चलाने को ही तो श्रीकृष्ण रुके थे। रस वृद्धि के लिये ही तो निर्बल बने थे। ग्वालों के उपालम्भ को सुनकर श्रीकृष्ण ने सम्पूर्ण बल लगाया। वे हाथ और पैरों के बल बैल के सदृश बने हुए थे। एक झटका मारा गाड़ी चल निकली। ओखली लुढ़कने लगी बच्चों ने ताली बजायी। सब चिल्लाने लगे—"बलवान् बैल है, बलवान् बैल है।"

श्रीकृष्ण कुछ-कुछ आगे बढ़े। वहाँ उन्होंने दो जुड़ौले अर्जुन वृक्षों को सम्मुख देखा। वे पहिले उत्तर दिशा के लोकपाल यक्ष-पति कुबेर के पुत्र थे, नारदजी के शाप से ये वृक्ष बन गये थे। उन पर भगवान् की दृष्टि पड़ी।"

शौनकजी ने कहा—'सूतजी! आप कह रहे हैं। ये दोनों वृक्ष श्रीकृष्ण के द्वार पर ही थे। इतने दिनों तक भगवान् इनके नीचे होकर निकले होंगे, अब तक इन पर दृष्टि नहीं पड़ी थी क्या ? अब तक इनको भगवान् ने नहीं देखा ?"

सूतजी बोले—"हाँ, महाराज! देखा क्यों नहीं। भगवान् नित्य ही देखते थे, किन्तु आज कृपा भरी दृष्टि से देखा। आज उनका वृक्ष योनि से उद्धार करने के विचार से अवलोकन किया। आज उन्हें शाप बन्धन से मुक्त करना चाहा।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! आज ही भगवान् ने ऐसा विचार क्यों किया ? आज ही उन्हें इनकी याद क्यों आयी ?"

हँसकर सूतजी बोले—"अब महाराज ! इन नटवर के मन का बात कौन जाने। कब इनकी कृपा दृष्टि पड़ जाय। सबका समय बँधा रहता होगा। समय आने पर ही ये कृपा दृष्टि की वृष्टि करते होंगे। या और कुछ बात होगी, मुझे तो ऐसा लगता है, अपना बन्धन देखकर भगवान् को इन कुवेर पुत्रों के शाप बन्धन की याद आ गयी।" 'जाके पैर न फटी बिवाई, सो का जाने पीर पराई।' आज अपने को बँधा देखकर इन वृक्षों की याद आयी अरे ये कितने दिनों से मेरे द्वार पर बँधे खड़े हैं। जब मैंने ही इनका बन्धन नहीं खोला, तो फिर मैं माता से बन्धन खोलने की आशा कैसे करूँ। यदि मैं इनका बन्धन खोल दूँगा, तो मेरा भी बन्धन खुल जायगा। संसार तो व्यवहार पर ही चला रहा है। इस हाथ दो उस हाथ लो। यही सोचकर भगवान् को उनके उद्धार का बात याद आ गयी होगी। भगवान् तो कृपा के सागर हैं, वे माता पर कृपा करने के लिये स्वयं बँधे और यमलार्जुन वृक्षों पर कृपा करने आगे बढ़े।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! बँधना यह माता पर क्या कृपा हुई ?"

यह सुनकर सूतजी के नेत्रों से नेह का नीर बहने लगा। उनकी वाणी गद्‌गद् हो गयी। अत्यन्त करुण स्वर मे बोले—"भगवन् ! प्रेम के बन्धन में भी भगवान् का अनन्त प्रसाद भरा है। भगवान् लक्ष्मीजी के पति हैं। पत्नी पर पति जितनी अनुग्रह करता हैं, उतनी और किसी पर कर नहीं सकता। अपना सर्वस्व उसे समर्पित कर देता है। अपने अंग में उसे मिला लेता है, इसीलिये वह अर्धाङ्गिनी कहलाती है। भगवान् ने लक्ष्मीजी को अपने हृदय मे रहने का स्थान दिया। चरण पलोटने की सर्वोत्कृष्ट सेवा प्रदान की इससे बढकर प्रभु का प्रसाद क्या हो सकता है। प्रभु प्रसाद की पराकाष्ठा है, किन्तु इतनी

कृपा करने पर भी लक्ष्मीजी का इतना साहस तो है नहीं, कि वे भगवान् को बाँध दें। उनके मुख की ही ओर जोहती रहती हैं। मनुष्य अपने पुत्र पर भी सबसे अधिक कृपा करता है। पुत्र अपनी आत्मा है, पिता की समस्त चल-अचल सम्पत्ति का अधिकारी है। भगवान् ने अपने पुत्र ब्रह्माजी पर भी उतनी कृपा नहीं की, जितनी यशोदा मैया पर। देखिये, उनके अधीन हुए उनके स्तनों को पान किया, उनके भय से थर-थर काँपे और उनके बाँधने पर बँध गये। इसलिये भगवान् अपराध के फलस्वरूप नहीं बँधे। वे तो सर्वेश्वर हैं विश्वपति हैं उनसे अपराध क्या हो सकता है। माता को वात्सल्य सुख देने को वे बँधे थे और नलकूवर मणिग्रीव जो धनद कुबेर के पुत्र वृक्ष बने चिरकाल से उनके द्वार पर खड़े थे, उनका उद्धार करने उलूखल को खींचते आगे बढ़े थे।"

यह सुनकर शौनकजी ने कहा—"सूतजी! यह दामोदर लीला तो बड़ी ही रसमयी है, महाभाग! इस लीला में तो भगवान् ने वात्सल्य रस की पराकाष्ठा ही दिखा दी। यशोदा मैया के भाग्य की जितनी भी प्रशंसा की जाय, उतनी ही कम है। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक पुत्र बनकर जिनके स्तनों का पान करें, उनसे बढ़कर बड़भागी संसार में कौन हो सकता है। हम यमलार्जुन उद्धार की कथा तो पीछे सुनेंगे। भगवान् उलूखल से खेल कर रहे हैं, तो उन्हें तब तक खेल करने दीजिये। आप हमें यह बतावें, नन्दजी और यशोदाजी ने ऐसा कौन-सा सुकृत किया था, जिसके द्वारा उन्हें भगवान् के माता पिता होने का देव दुर्लभ पद प्राप्त हुआ था। यशोदा मैया ने ऐसा कौन सा कर्म किया था जिसके फलस्वरूप उन्होंने अपने बड़े-बड़े स्तन श्रीकृष्ण के मुख में दिये।। इस प्रश्न का उत्तर देकर तब आप आगे की कथा कहें।"

यह सुनकर सूतजी गम्भीर हो गये और बोले—"महाभाग!

ऐसी पद्वी कर्मो द्वारा प्राप्त नहीं होती । यह पद साधन साध्य नहीं कृपा साध्य है । भगवान् जाने कब रीझ जायँ, कब कृपा की वृष्टि कर दें। श्री नन्दजो और मैया यशोदाजी के सम्बन्ध में एक पौराणिक कथा है, उसे मैं आपको सुनाता हूँ आप दत्तचित्त होकर श्रवण करें।

छप्पय

बड़ो अटपटो पथ प्रेम को नहिं सब जानें।
जिनकूँ जोगी जती जगन्मय जगपति मानें॥
तिनिकूँ मैया पकरि बाँह मारें धमकावें।
पिट पिटाइकें श्याम गोद ताही की आवें॥
जिनकी लीला ललित सुनि, सब जग आनन्दमहँ भरयो।
जगदीश्वर जिनि सुत बने, कौन सुकृत यशुमति करयो॥

श्रीहरि ने महाभागा यशोदा मैया का स्तन पान क्यों किया ?

[८८२]

नन्दः किमकरोद् ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम् ।
यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥*
(श्री भा० १० स्क० ८ अ० ४६ श्लो०)

छप्पय

नन्द द्रोण द्विज हते धरा पत्नी सँग बनमहँ ।
भिक्षा पै निर्वाह करहिँ धरि श्रीहरि मनमहँ ॥
करन परीक्षा विष्णु अतिथि द्विज बनि बन आये ।
धरा करयो सत्कार मातु पितु विप्र पठाये ॥
करी याचना अन्न की, धरा अधिक चिन्तित भई ।
पति अभावमहँ अन्नहित, स्वयं वनिक द्वारे गई ॥

दरिद्रता में गुण ही गुण है और धन मे दोष ही दोष है। धन बड़े कष्ट से उपार्जन किया जाता है। प्राणों का प्रण लगाकर पैसा प्राप्त हो जाने पर उसकी रक्षा में बडा कष्ट होता है। धनी पुरुष को रात्रि में निद्रा नहीं आती, खुटका बना ही रहता

---

* महाराज परीक्षित श्री शुकदेवजी से पूछ रहे हैं—"ब्रह्मन्! महाभागा यशोदा मैया ने ऐसा कौन-सा पुण्य कर्म किया था, जिससे भगवान् ने उनका स्तन पान किया। और नन्दजी ने भी कौन-सा बडा भारी पुण्य किया था, जिससे उन्हें ऐसा सौभाग्य प्राप्त हुआ ?"

है। धनी का सबसे सदा शङ्का बनी रहती है। मेरे धन को चोर न चुरा ले जायँ, कोई आकर याचना न कर बैठे, भाई बन्धु धन के लिये झगड़ा न करें, राजा कर न बढ़ा दे, मैं स्वयं ही कहीं रखकर न भूल जाऊँ इस प्रकार रक्षा करने में भी दुःख, पास में रखा रहे तो भी दुःख, कि यह वैसे ही रखा है, किसी व्यापार में लगावें तो वृद्धि हो। व्यय करना हो तो दुःख होता है, हाय व्यर्थ ही व्यय हो रहा है। यदि नष्ट हो गया, तब तो प्राणान्त दुःख होता है, धनी कभी निश्चिन्त नहीं बैठ सकते। उन्हें निरंतर चिन्ता ही लगी रहती है कोई बिरले ही धनिक होंगे, जो किसी न किसी रूप में चोरी न करते होंगे। दूसरों को कष्ट पहुँचाकर ही धन एकत्रित होता है। धनिकों के लिये मिथ्या भाषण तो एक सामान्य-सी बात है। बात बात पर झूठ बुलवा लो, उनसे कहो तो कह देंगे अजी, क्या करें झूठ बोले बिना काम ही नहीं चलता। व्यापार तो झूठ सच दोनों के ही आधार पर चलता है। धनिक लोग कहेंगे कुछ करेंगे कुछ। धन पास में रहने से काम का वेग बढ़ता है, धनी बड़े अहंकारी होते हैं वे अपने सम्मुख किसी को कुछ समझते ही नहीं। उनके प्रतिकूल तनिक सी भी कोई बात हुई, कि वे क्रोध में भर जाते हैं। अभिमान के तो वे पुतले ही होते हैं। यह बड़ा है यह छोटा है, इससे बात करनी चाहिये, इससे न करनी चाहिये, यह भेद बुद्धि धन वृद्धि से हो ही जाती है। धनी पुरुषों का बहुतों से वैर हो ही जाता है, क्योंकि उन्होंने आवश्यकता से अधिक वस्तुओं पर अधिकार जमा रखा है। धनिकों को सहसा किसी पर विश्वास नहीं होता, माता, पिता, पत्नी तथा भाई बन्धु सभी पर अविश्वास हो जाता है। धन में स्पर्धा स्वाभाविक है, कोई मेरी बराबरी कैसे कर सकता है। धन बढ़ने पर स्त्री जूआ तथा मद्यादि मादक द्रव्य का व्यसन बढ़ जाता है। इस प्रकार धन में अनेक दोष हैं।

दरिद्रों की ओर कोई देखता ही नहीं इससे वे इन सब अवगुणों से इच्छा रहने पर भी बचे रहते हैं। इस प्रकार दरिद्रता में सब गुण होने पर भी एक बड़ा भारी दुर्गुण है। अतिथि सत्कार समुचित रूप से नहीं हो सकता। जो दरिद्री होकर भी घर पर आये अतिथि का तन, मन तथा सवस्व अर्पण करके उसका सत्कार करते हैं, उनसे बड़ा सुकृति संसार में दूसरा कोई हो ही नहीं सकता। इस सुकृति के बदले में भगवान् को क्रय कर लेते हैं, उन्हें अपने अधीन बना लेते हैं। भगवान् उनके हाथों बिक जाते हैं, क्योंकि वे सबमें अपने स्वामी के स्वरूप के दर्शन करते हैं। जिन्होंने अतिथि का सर्वस्व समर्पण करके सत्कार कर लिया उन्होंने सब कुछ पा लिया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! महा भाग्यवती यशोदा मैया के किस कर्म से परात्पर प्रभु रीझ गये, इस विषय की मैं एक गाथा आपको सुनाता हूँ।"

एक अत्यन्त ही शान्त एकान्त वन था। उस वन में एक जीर्ण शीर्ण पर्णकुटी थी। उसमें एक द्विज दम्पति निवास करते थे। ब्राह्मण का नाम द्रोण था और उनकी पत्नी का नाम था धरा। दोनों ही बड़े भगवद् भक्त विषयों से विरक्त, कृष्ण प्रेम में अनुरक्त और भगवान् के रूपासव में आसक्त थे। ब्राह्मण भिक्षा करके तीसरे पहर जो भी कुछ लाता, ब्राह्मणी उसकी रसोई बनाती आगत अतिथि अभ्यागतों और पति को खिलाकर जो कुछ बचता उसे खा लेती, न बचता तो भूखी ही सो जाती। उसने गाँव देखा नहीं था, वह वन में ही रहकर भगवान के ध्यान में निमग्न रहती। भगवान् ने उसे इतना अधिक सौन्दर्य व्यर्थ ही दे रखा था। वह उस वन्य प्रदेश की मालती कलिका के सदृश थी, जिसके सौन्दर्य की प्रशंसा करने वाला कोई नहीं था। यौवन ने आकर उसे झकझोरा हिलाया डुलाया। किन्तु उसके ऊपर

उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। वह सती-साध्वी अपने पतिको ही परमेश्वर मानकर उसी की आज्ञाओं का अनुसरण करती, पति की सेवा में ही वह अपने कर्तव्य की इतिश्री मानती पति की आज्ञा ही उसके लिये वेदाज्ञा थी, पति इच्छा के ही अनुसार वह बिल्वपत्र, तुलसीदल तथा भाँति-भाँति के पुष्पों को एकत्रित करती। पति ने कह रखा था अतिथि ईश्वर का रूप है। अतिथि का अनादर ईश्वर का अनादर है। अतिथि जिस द्वार से भग्नाशा होकर लौट जाता है, उसके समस्त सुकृत नष्ट हो जाते हैं। सर्वस्व न्योछावर करके अतिथि की पूजा करनी चाहिये।" पति की यह बात उसने गाँठ में बाँध ली थी। पति की अनुपस्थिति में भी कोई अतिथि आ जाता, तो उसका वह यथाशक्ति स्वागत सत्कार करती।

एक दिन उसका पति भिक्षा लेने समीप के ग्रामों में गया था, उसी समय एक युवक विप्र अपनी वृद्धा माता तथा वृद्ध पिता को साथ लिये हुए उस पतिव्रता की कुटी पर आया। सती ने उन तीनों का श्रद्धा सहित स्वागत सत्कार किया।

युवक ने कहा—"देवि! ये मेरे वृद्ध पिता माता हैं। आज कई दिनों से इन्हें खाने को कुछ नहीं मिला, भूख के कारण ये तड़प रहे हैं, इनके प्राण कण्ठगत हैं तुम्हारे पास कुछ खाने को हो, तो दो।"

पतिव्रता ने कहा—"विप्रवर! आप कुछ काल विश्राम करें, मेरे पति अभी भिक्षा लेकर आते होंगे, उनके आते ही पहिले मैं आपके माता-पिता को ही भोजन कराऊँगी।"

युवक ने पूछा—"उनके आने में कितनी देरी है?"

शीघ्रता के साथ प्रतिव्रता ने कहा—"अब वे आने ही वाले हैं।" युवक चुप हो गया। कुछ काल के पश्चात् उसने पुनः पूछा—"अभी तक तुम्हारे पति आये नहीं?"

पतिव्रता ने चिन्ता प्रकट करते हुए कहा—"अब तक उन्हें आ जाना चाहिये। न जाने क्यों आज विलम्ब हुआ?"

युवक ने कहा—"मुझे अपनी चिन्ता नहीं है। मुझे तो इन बूढ़े माता पिता की चिन्ता है। इन्हें यदि शीघ्र भोजन न मिला तो ये परलोक प्रयाण कर जायँगे। वृद्धों ने सत्य ही कहा है भिक्षुक के यहाँ भूखे को कभी अतिथि न होना चाहिये। मैंने बहुत प्रतीक्षा की, अब मैं यहाँ से चला जाऊँगा, किसी अन्य का द्वार खटखटाऊँगा।"

पतिव्रता ने कातर भाव से कहा—"आप मेरे द्वार से निराश होकर लौटेंगे?"

विवशता प्रकट करते हुए युवक ने कहा—"और दूसरा कोई मार्ग भी तो नहीं।"

पतिव्रता ने कहा—"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। इस दशा में इनका जाना निरापद नहीं।"

युवक ने कृतज्ञता भरी वाणी में कहा—"देवि! आपकी सहानुभूति के लिये धन्यवाद है, किन्तु मैं विवश हूँ मुझे अति शीघ्र आहार का प्रबन्ध करना है, मैं तुम्हारे पति की अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकता।"

यह सुनकर देवी कुछ चिन्तित हुई फिर सोच समझकर बोली—"यहाँ से समीप ही एक ग्राम है, मैं वैसे कभी गयी तो हूँ नहीं, किन्तु मैं जानती हूँ ग्राम सन्निकट ही है। आप कुछ देर प्रतीक्षा करें मैं कुछ आहार लाती हूँ।" यह कहकर वह ज्यों की त्यों उठकर चल दी।

ग्राम समीप ही था, उसमें एक युवक वणिक् की दूकान थी। पतिव्रता घरा देवी उसी पर जाकर खड़ी हो गयी। अन्य बहुत से स्त्री पुरुष सौदा ले रहे थे। युवक वणिक सबको तोल-तोलकर दे रहा था। उसने पतिव्रता से भी पूछा—"तुम्हें क्या चाहिये?"

पतिव्रता ने कहा—"मेरे पति भिक्षा लेने गये हैं; वे अभी लौटे नहीं। मेरी कुटी पर तीन अतिथि आये हैं उन्हें अभी आहार चाहिये। उनके लिये मैं आहार लेने आयी हूँ।"

युवक भिक्षुक ब्राह्मण को जानता था। उसे यह भी पता था, द्रोण द्विज के समीप एक फूटी कौडी भी नहीं है, उसकी पत्नी को उसने नहीं देखा था। एक बार उसने पतिव्रता को ऊपर से नीचे तक देखा। असहाय को देखकर सभी उससे अनुचित लाभ उठाना चाहते हैं, सौन्दर्य को देखकर अच्छे अच्छों का मन विचलित हो जाता है। कामवासना काम सामग्री को देखकर बढ़ती है। युवक वणिक् के मन में पाप वासना का उदय हो गया। उसने पूछा—"तुम्हें क्या-क्या चाहिये ?"

युवक वणिक् ने आवश्यकता से अधिक आटा, दाल, चावल, घृत, नमक, मिरच मसाले तथा साग एक पात्र में भरकर सती के सम्मुख रखा और बोला—"यह तो सामग्री मैंने दी, अब तुम मुझे क्या दोगी ?"

दीनता के स्वर में देवी ने कहा—"मैं कंगालिनी भिक्षुकी हूँ, मेरे पास देने को क्या है ?"

सतृष्ण नेत्रों से अपनी दुर्भावना को व्यक्त करते हुए उसने कहा—"मैंने सदावर्त तो खोल ही नहीं रखा है, व्यापार करता हूँ। एक वस्तु के बदले में दूसरी वस्तु देना यही व्यापार है। तुम पर दाम नहीं है, तो जो भी कुछ है वही दो।"

विवशता के स्वर में सती ने कहा—"मेरे पास देने को और है क्या। मेरे पास यह फटी साड़ी है।" यह कहकर उसने अपनी फटी साड़ी दिखायी। फटी कंचुकी से सुवर्ण के सदृश उभरे हुए उसके पयोधर दिखायी दिये।"

वणिक् ने कहा—"जो तुम्हारे पास है उसे दोगी ?"

देवी ने कहा—"मैं भगवान् की शपथ खाती हूँ मेरे पास जो भी कुछ हो तुम ले लो।"

यह सुनकर उस कामी ने अपनी कामुक भाषा में माता के स्तनों की ओर सकेत किया। देवी का सतीत्व चमक उठा। उसने क्रोध नहीं किया। बुरा भी नहीं माना। जब मैंने भगवान् की शपथ खाकर सब कुछ देने की प्रतिज्ञा की है, तो मुझे उससे हटना न चाहिये। यह इन मांस के उभरे हुए दो लोथड़ों को ही तो माँग रहा है। इन्हें देकर यदि अतिथियों का सत्कार होता है, तो ये तो व्यर्थ ही छाती के भार हैं।" यह सोचकर सम्मुख पड़ी हुयी एक तीक्ष्ण छुरी को देवी ने दृढता के साथ उठा लिया बात की बात में उसने अपने दोनो स्तन काट डाले। स्तनों को उस युवक के ऊपर फेंककर वह भोजन सामग्री को लेकर शीघ्रता के साथ कुटी की ओर दौड़ी। छाती से रक्त की दो धाराएँ बह रही थीं। जिससे उसके वस्त्र रक्तरंजित हो गये। मार्ग भी रक्त वर्ण का हो गया। लाकर सामग्री उसने युवक को दी। आवेश में वह चली तो आयी थी, किन्तु कुटी पर आते ही अधिक रक्त निकलने से मूर्छित होकर गिर गयी।

कुछ देर में उसने आँखें खोलकर जो कुछ देखा उसे देखकर तो वह अत्यन्त ही विस्मित हुई। जिस युवक के लिये वह सब कुछ लायी थी, वह युवक अब चतुर्भुज विष्णु के रूप में परिणत हो गया। वृद्धा माता सिंह वाहिनी महामाया देवी हैं। वृद्ध पिता त्रिलोचन शकर हैं। भगवान् ने सती को अभय दान देते हुये कहा—"माता! तुमने हमारे लिये अपने स्तनों का दान दिया है, अतः द्वापर के अन्त में आकर हम तुम्हारे पुत्र होंगे, और इन स्तनों को पान करके आपको अत्यन्त सुख देंगे।"

सिंहवाहिनी भगवती देवी ने भी वर दिया—"हम भी तुम्हारी पुत्री बनकर प्रकट होंगी।" शिवजी ने भी वर दिया हम

भी ब्रज में उत्पन्न होंगे। इस प्रकार वर दे ही रहे थे, कि तब तक द्रोण द्विज भी आ गये। वे भी भगवान् के दर्शन करके कृतार्थ हुए। ये ही द्रोण फिर आठ वसुओं के रूप में हुए धरा इनकी भार्या हुई। ब्रह्माजी ने इनसे कहा—"अब तुम पृथ्वी में उत्पन्न होकर गोवंश का पालन करो।"

द्रोण वसु ने कहा—"हम आपकी आज्ञा को तो शिरोधार्य करते हैं, किन्तु जब हम पृथ्वी पर उत्पन्न हों, तो देवाधिदेव विश्वपति श्रीहरि मे हमारी अविचल भक्ति हो, जिस भक्ति के द्वारा जीव सहज मे ही इस दुर्गति से पार हो जाता है।"

ब्रह्माजी ने कहा—"अच्छी बात है, ऐसा ही होगा। भगवान् तुम्हारे पुत्र होकर प्रगट होंगे और तुम्हें सुखी करने को भाँति-भाँति की क्रीड़ाएँ करेंगे।"

इस प्रकार ब्रह्माजी की आज्ञा और इनका वर पाकर द्रोणजी ब्रज में श्रीनन्दजी के रूप में उत्पन्न हुए और उनकी पत्नी धरा देवी ही यशोदाजी के रूप मे प्रकट हुईं। इसीलिये भगवान् में इनकी सबसे अधिक भक्ति थी। भगवान् को तो अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनी ही थी, इसीलिये उन्होंने श्रीकृष्ण रूप से माताजी के स्तनों के पय का पान किया। श्रीबलदेवजी तथा अन्यान्य सखाओं के सहित भाँति-भाँति की क्रीडाएँ कीं। इसी सुकृत से माता का साहस बढ़ गया। यह तो एक व्यावहारिक रूप से कथा है। वास्तव में तो श्रीकृष्ण नित्य हैं, उनका धाम नित्य है, नन्द यशोदाजी समस्त गोप, गोपी ग्वाल और गौएँ सभी नित्य हैं। उनकी लीला भी नित्य ही हैं। नित्य ही माँ उलूखल से इन्हें बाँधती है, इसीलिये तो इनका नाम दामोदर नित्य है।"

शौनकजी ने कहा—"हाँ, सूतजी! यह बात तो समझ ली। अब आप यमलार्जुन वृक्षों के उद्धार की कथा कहिये। उलूखल से बँधे श्रीकृष्ण ने आगे क्या किया?"

सूतजी बोले—"अब, महाराज ! मैं वही यमलार्जुन उद्धार की कथा ही तो सुना रहा हूँ। उसे आप दत्तचित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

वणिक अन्न घृत दयो रूपने जादू डारो।
लखि कुच करि संकेत मूल्य माँगत मतवारो॥
सती प्रतिज्ञा करी काटि कुच दोऊ दीन्हें।
लै सामग्री आइ अतिथि पद वन्दन कीन्हें॥
अतिथि विष्णु बनि वर दयो, मम हित कुच काटे जननि।
पुत्र बनूँ स्तन पिऊँ, तू प्रकटे मम मातु बनि॥

यमलार्जुन उद्धार

(८८३)

बालेन निष्कर्षयतान्वगुलूखलं तद्,
दामोदरेण तरसोत्कलिताङ्घ्रिबन्धौ।
निष्पेततुः परम विक्रमितातिवेप-
स्कन्धप्रवालविटपौ कृतचण्डशब्दौ ॥*
(श्री भा० १० स्क० १० अ० २७ श्लो०)

छप्पय

वसु बनि पुनि द्विज द्रोण भये ब्रज नन्द गोपपति।
धरा यशोदा भई बने सुत कृष्ण जगत्पति ॥
बाँधि उलूखल दये कृष्ण खींचें गाड़ी सम।
बाल वृषभ सम चलें श्याम शोभा अति अनुपम ॥
यमलार्जुन के मध्य हरि, गये उलूखल फँसि गयो।
खींच्यो बलतें बाल प्रभु, गिर्यो वृक्ष अति रव भयो ॥

श्रीकृष्ण की समस्त लीलाएँ प्राणिमात्र के हित के निमित्त जीवों के उद्धार के ही निमित्त होती हैं। वे जिससे जो भी कराते हैं,

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जिनके उदर में दाम बँधी है, उन बाल कृष्ण ने उलूखल को ज्योंही बलपूर्वक खींचा त्योंही लुढ़ककर अटके हुए उसके परम पराक्रम से शाखा प्रशाखा तथा पत्तों सहित विचलित हुआ वह वृक्ष बड़े वेग से घोर रव करता हुआ, जड़ सहित उखड़कर गिर गया।"

स्वयं करते हैं उसमें सब आनन्द ही आनन्द है। सब कुछ आनंद के ही लिये करते हैं, निरानन्द का तो वे नाम भी नहीं जानते। तो जो पत्त वृत्त पर लगे हैं वे एक दिन अवश्य ही गिरेंगे। जो जीव श्रीकृष्ण के सम्मुख पड़ेंगे उन सबकी मुक्ति अवश्य होगी। चींटी से ब्रह्मा पर्यन्त सभी जीवों को एक दिन मुक्त होना है। कोई देर में कोई सवेर में। देर सवेर का भी कोई अर्थ नहीं। आज ही सब खिलौने टूट जायँ तो खेल सदा कैसे चले, श्रीकृष्ण को तो सदा खेलना ही है। खेलने के अतिरिक्त दूसरी बात वे जानते ही नहीं, एक खिलौना टूटा दूसरा आ गया। यही गुण प्रभाव है। इसमें क्या शाप क्या अनुग्रह ?

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! यशोदानन्दन श्यामसुन्दर के उदर में रस्सी बँधी है। दूसरी रस्सी उसमे बाँधकर वह उलूखल में बाँध दी है। बालकों ने उलूखल को उलट दिया है। वह गाड़ी के सदृश बन गया है। श्रीकृष्ण दोनों हाथों और दोनों पैरों के बल-बैल के सदृश चल रहे हैं। ग्वाल पीछे से ताली बजा रहे हैं। गाड़ी का खेल हो रहा है। श्याम सुन्दर उधमी ही जो ठहरे। उन्हें कोई न कोई विचित्र बात सदा सूझती रहती है। सामने अर्जुन के दो जुड़ले वृक्ष खड़े थे उनके स्कन्ध परस्पर में एक स्थान से निकले थे। उनके बीच में कुछ अन्तर था। श्रीकृष्ण भूमि से होकर न जाकर उन वृक्षों के बीच से निकले उन्हें अपने श्रीअंग के स्पर्श से कृतार्थ करने के निमित्त बन्दर के बच्चे के सदृश खिसककर निकले। स्वयं तो निकल गये, किन्तु आपकी कमर की रस्सी में बँधा हुआ उलूखल टेढ़ा होकर उन दोनों के बीच में अटक गया।

गाड़ी की गति रुक गई। वृषभ बने बनवारी का यह बड़ा अपमान था। लड़के ताली पीटेंगे "अड़ियल बैल है, फिर अड़ गया।" इसीलिये आपने अपना पूरा बल लगाया। अब क्या,

था, जिसे खींचने को श्रीकृष्ण अपना बल लगा दें और वह न खींचे तो आश्चर्य ही है। श्रीकृष्ण के बल लगाते ही यमलार्जुन का वह बड़ा भारी वृक्ष अड़ड़धम् करके पृथ्वी पर गिर पड़ा। वह जड़ मूल से उखड़ गया। उसकी शाखायें टूट गईं। पत्ते चकनाचूर हो गये। उसके गिरने का भयंकर शब्द समस्त व्रज में छा गया। पीछे आने वाले बच्चे डर गये। श्रीकृष्ण उनके बीच में खड़े-खड़े हँस रहे थे। उन्हें कोई चोट फेंट नहीं आई थी। उन्हें क्या चोट आनी थी, वे तो चोट फेंट से परे हैं। उन्होंने तो उन्हें कृपा भरी दृष्टि से देखते ही सोचा था—"अरे, ये धनद कुबेर के प्यारे पुत्र हैं। धन के मद में मत्त होने के कारण मेरे परम भक्त नारदजी का इन्होंने अपमान किया था, इसीलिये उन्होंने इनके कल्याण के निमित्त शाप देकर इन्हें वृक्ष योनि में भेज दिया था। इनकी बहुत विनय करने पर मेरे द्वारा उद्धार का संकेत कर दिया था। देवर्षि नारदजी मेरे अनुगत हैं, भागवतों में श्रेष्ठ हैं, मेरे परम भक्त हैं, अतः मैं नारदजी के वचनों को सत्य करूँगा, इन लोकपाल कुबेर के पुत्रों का उद्धार करूँगा।" यही सोचकर भगवान् उन दोनों वृक्षों के बीच से निकले और अपने संकल्प से उन्हें गिराया, नहीं तो इतने भारी-भारी वृक्ष तनिक से बच्चे की तनिक सी कटि में बँधी रस्सी से कैसे गिर सकते थे।

उन वृक्षों के गिरते ही उनमें से अग्नि के समान प्रकाशवान् परम तेजस्वी दो देवकुमार तुरन्त उत्पन्न हुए। वे दोनों सिद्ध पुरुष अपनी परम दिव्य कान्ति से दशों दिशाओं को देदीप्यमान कर रहे थे, वे अपनी प्रभा से सूर्य को भी तिरस्कृत कर रहे थे, उन मलहीन देवकुमारों ने चराचर जगत् के एकमात्र स्वामी सच्चिदानन्द घन स्वरूप सौन्दर्य विग्रह रस रूप श्रीकृष्णचन्द्र के

पादपद्मों में विनम्र होकर प्रणाम किया और गद्गद् वाणी से उनकी स्तुति करने लगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! कुबेर पुत्र नलकूबर मणिग्रीव दोनों भाइयों ने भगवान् की दिव्य स्तोत्र से स्तुति की। उसका वर्णन मैं समयानुसार फिर करूँगा। वे दोनों हाथ जोड़े विनीत भाव से उनकी स्तुतिकर रहे थे और कृष्ण भोरे बालक की भाँति उनकी ओर निहार रहे थे।

दोनों भाइयों ने दंडवत् प्रणाम करके स्तुति के अंत में कहा—"हे सर्वेश्वर! आप तो सर्वज्ञ हैं, सब जानते ही हैं, कि हम दोनों गुह्यक तथा यक्षों के अधिपति लोकपाल कुबेर के पुत्र हैं। हमारा नाम नलकूबर और मणिग्रीव है। हमें आप अपना अकिञ्चन अनुचर समझें। प्रभो! हम तो ऐश्वर्य के मद में सदा मदमत्त बने रहते थे, आप तो अकिञ्चन गोचर हैं। हम जैसे अभिमानियों को आपके दर्शन कैसे हो सकते हैं। यह तो देवर्षि भगवान् नारदजी ने ऐसी कृपा की कि आपके दर्शन हो गये। वे परोपकारी संत हमारे ऊपर अनुग्रह न करते, तो हम आपके देव दुर्लभ दर्शन कैसे प्राप्त कर सकते थे। अब आप हमें अपने लोक में जाने की आज्ञा दें।"

भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है, आप मुझसे कोई वर माँगें।"

दोनों भाइयों ने कहा—"भगवन्! ये संसारी विषय तो आप से दूर हटा देते हैं। इस ऐश्वर्य और विषय भोगों की चाह आपसे क्या करें? आपके दर्शन हो गये, तो मानों सब कुछ मिल गया।"

भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है, यश ऐश्वर्य [illegible] और कुछ माँग लो।"

नलकूबर मणिग्रीव यह सुनकर बोले—"हे [illegible]

हे भक्तवत्सल ! हे कारण रहित कृपालो ! हे स्वामिन् ! आप हमें यही वर दें, कि हमारी वाणी सदा आपकी ही विरुदावली का बखान करती रहे। जिह्वा से दूसरे के गुण दोषों का कथन न हो। हमारे श्रवण आपकी सुन्दर सुखद श्रवणप्रिय लीला कथा के श्रवण में ही सदा संलग्न रहें। हमारे कर सदा आपका कैंकर्य कार्य ही करते रहें। हमारा मन मधुप आपके अरुण वरण के चरण कमल मकरन्द के पान में ही सदा व्यस्त बना रहे। सिर सदा आपके सदन स्वरूप संसार की सेवा और सत्कार में नत बना रहे। नेत्र सदा आपके श्रीविग्रहों तथा साधुजनों के दर्शनों में ही निमग्न रहें। आपके अचल रूप प्रतिमादिकों और चल रूप सन्त महात्माओं को छोड़कर किसी अन्य की ओर दृष्टि-पात ही न करें। हे सर्वेश्वर ! यही वर हमें आप कृपा करके दीजिये।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब धनद कुबेर के पुत्रों ने प्रभु के पुनीत पादपद्मों में प्रणत होकर ऐसी प्रार्थना की, तो प्राणिमात्र के प्रेमास्पद परेश प्रसन्नता पूर्वक रस्सी से उलूखल में बँधे ही बँधे हँसते हुए उनसे बोले—'लोकपाल कुबेर के प्यारे पुत्रो ! मैं इन सब बातों को तुम्हारे बताने के पूर्व ही जानता था, तुम धन के मद में मदमत्त होकर दृष्टिहीन से हो गये थे। इसीलिये तुम्हारे ऊपर कृपा करके परम कारुणिक मेरे प्रिय भक्त देवर्षि नारदजी ने तुम्हें शाप दिया। उनका शाप क्रुद्ध क्रोध जनित आवेग मात्र ही नहीं था। उसमें तुम्हारा परम हित निहित था। तुम्हें ऐश्वर्य का ज्वर चढ़ा हुआ था। धन का घमंड ही वात का बाहुल्य था। उसमें तुम अंड़-बंड बक रहे थे, देवर्षि तो संसार रोग के सुनिपुण चिकित्सक हैं। उन्होंने तुम्हारी समुचित चिकित्सा करके दरिद्रता रूपी औषधि देकर तुम्हें मद रहित निरोग बना दिया। यह उनके अनुरूप ही था। क्योंकि साधुजनों के दर्शनों से पुरुषों

का ससार बन्धन रहता नहीं। अब तुम ही सोचो अँधेरे में कुछ भी दिखाई नहीं देता, क्योंकि नेत्रों को ज्योति प्रदान सूर्य ही करते हैं। वे जगत् को भी प्रकाश देते हैं और नेत्रों को देखने की शक्ति भी देते हैं इसी प्रकार जिनका चित्त अहर्निशि निरन्तर मुझमें ही लगा रहता है ऐसे सन्त दर्शन करने वालों के अज्ञान को भी दूर करते हैं और हृदय में मेरी परम ज्योति का प्रकाश करते हैं।"

दोनों भाइयों ने लज्जित होकर कहा—"प्रभो! हमने तो भगवान् नारदजी के सम्मुख बड़ा अशिष्ट व्यवहार किया था, किन्तु उन कृपा के सागर ने तो हमारे ऊपर अहैतुकी कृपा की। ससार बन्धन को काटने वाले आपके दुर्लभ दर्शन प्राप्त हुए। अब हमारा जो कर्त्तव्य हो, उसकी शिक्षा हे स्वामिन्! आप हमें दें।"

भगवान् ने कहा—"कोई बात नहीं, कैसे भी जीव सन्तों के सम्मुख आ जाय, उसका बेड़ा पार ही है। सन्तों का समागम, राग से, द्वेष से, क्रोध से, सद्भावना से, दुर्भावना से, कैसे भी किसको हो जाय फिर उसके उद्धार में कोई सदेह नहीं रह जाता। अब तुम जाकर मुझमें चित्त लगाकर सुखपूर्वक वहाँ निवास करो।"

दोनों भाइयो ने कहा—"महाराज! घर में तो बन्धन ही बन्धन है वहाँ हम फिर मदोन्मत्त हो जायेंगे।"

भगवान् ने प्रेम के साथ कहा—"ना भैया! अरे, जिस पर मेरी एक बार कृपा हो गई, क्या वह फिर सदा के लिये विषयों मे फँस सकता है? तुम्हें तो मेरा ससार बन्धन को विच्छेदन करने वाला परम प्रेम प्राप्त हो चुका है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् के मुख से यह वचन सुनकर वे दोनों भाई परम प्रसन्न हुए और उलूखल मे बँधे हुए

श्रीकृष्णचन्द्र के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम करके, उनकी आज्ञा लेकर अपने पिता की दिशा उत्तराखण्ड की ओर चले गये। यह मैंने अत्यन्त सत्तेप मे कुवेर के पुत्र नलकूबर मणिग्रीव के शापोद्धार की कथा सुनायी, अब आप और क्या पूछना चाहते हैं ?"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! नलकूबर मणिग्रीव ने नारदजी का क्या, अपराध किया ? उन्होंने उन दोनों भाइयों को क्यों शाप दिया, कृपा करके इस कथा को आप हमें और सुनावें।"

सूतजी बोले—"अच्छी बात है, महाराज ! मैं अब इसी कथा को आपको सुनाता हूँ, आप सावधान होकर श्रवण करें।"

छप्पय

टूटत तरु अति सुघर देवसुत प्रकट भये तहँ।
करत प्रकाशित दिशनि नम्र है आये हरि जहँ॥
नलकूबर मणिग्रीव धनद सुत बुद्धि गँवाई।
पायो नारद शाप भये तरु दोऊ भाई॥
कृष्ण दरश तैं दुख कटे, विषय वासना हू जरी।
तनु पुलकित गद्गद् गिरा, दामोदर विनती करी॥

नलकूवर मणिग्रीव के शाप की कथा

[८८४]

कथ्यतां भगवन्नेतत्तयोः शापस्य कारणम् ।
यत्तद् विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेस्तमः ॥*

(श्री भा० १० स्क० १० अ० १ श्लो०)

छप्पय

प्रभु प्रसन्न है परम प्रेम दुर्लभ वर दीन्हों ।
आयसु हरि की पाइ गमन निजपुर तिनि कीन्हों ॥
पूछें शौनक—सूत ! धनद सुत का अघ कीयो ।
क्यों मुनि नारद शाप वृक्ष बनिवे को दीयो ॥
हँसिकें बोले सूतजी, भगवन् धन मद अति विकट ।
तिहि मदमहँ मदमत्त बनि, विहरहिँ दोऊ सर निकट ॥

बहुत सी ऐसी वस्तुएं हैं जिन्हें पान से एक ही इन्द्रिय के सुख का साधन प्राप्त होगा, किन्तु धन ऐसी वस्तु है, कि इसके द्वारा चाहे जिस इन्द्रिय के विषय को मँगा लो। कुछ काल में सुरा का मद उतर जाता है, जाति का मद भी शिथिल पड़ जाता है, विद्यामद अधिकार का मद ये सभी मद आदमी को सदाचार

---

* महाराज परीक्षित श्रीशुकदेव जी से पूछ रहे हैं—'हे भगवन् ! नलकूवर मणिग्रीव के शाप के कारण को कृपा करके हमसे कहिये। उन्होंने ऐसा कौन-सा निंदित कर्म किया जिसके कारण देवर्षि नारद को क्रोध आ गया, उसे भी कहिये।''

से गिरा देते हैं, किन्तु धन का तो सबसे अधिक भयंकर है। धन-मद में फँसकर प्राणी शील, सकोच, सदाचार, कुलाचार, तथा सद्गुण सभी को खो बैठता है। धन कोई बुरी वस्तु नहीं उसका मद ही बुरा है। धन पाकर किसी विरले को ही अभिमान नहीं होता। धनिकों में कुछ इने-गिने ही ऐसे वन्दनीय पुरुष होंगे, जो धन पाकर भी स्त्री, द्यूत और सुरा, इन व्यसनों में न फँसे हों। नहीं तो धन बढ़ते ही ये व्यसन पीछे लग जाते हैं। जहाँ ये व्यसन लगे, तहाँ धन का ह्रास हुआ। ये व्यसन घोर अधकार की ओर नरक की ओर ले जाने वाले हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! आपने मुझसे कुवेर पुत्र नल-कूवर मणिग्रीव के वृक्ष योनि पाने और नारदजी का शाप देने का कारण पूछा था, उसे मैं आपको सुनाता हूँ। बात यह है चार दिशा हैं और चार उपदिशा। इन आठों दिशाओं के आठ लोकपाल हैं। इनमें उत्तर दिशा के लोकपाल धनद कुवेर हैं। ये देवताओं की सभी सम्पत्ति के स्वामी हैं। यक्ष, राक्षस, गुह्यक तथा रुद्रगणों के ये स्वामी हैं। त्रिलोकी में कुवेर से बढ़कर कोई सम्पत्तिशाली नहीं है। देवताओं के भडारी ही ठहरे। समस्त सम्पत्तियों के स्वामी ही जो ठहरे इनके यहाँ किसी भी वस्तु की कमी नहीं है। लोकपाल धनद के दो पुत्र थे, जिनमें से एक का नाम नलकूवर था और दूसरे का नाम मणिग्रीव। धनिकों के पुत्र प्रायः सुन्दर होते हैं, फिर तिसमें ये तो देवपुत्र थे। ये दोनों अत्यन्त ही सुन्दर थे देवता कभी बूढ़े नहीं होते सदा सोलह वर्ष के ही बने रहते हैं, इसलिये इन्हें निर्जर कहते हैं। इसलिये इनका यौवन भी स्थायी था। यौवन, धन, सम्पत्ति और प्रभुत्व यदि इनके साथ अविवेक भी हो तो ये एक एक ही असख्यों अनर्थ कर सकते हैं। फिर जहाँ ये चारों हों, वहाँ की तो बात ही क्या कहनी। इनके समीप ये चारों बातें थीं। अविवेक ने इन्हें

अपने वश में कर रखा था। ये दोनों अत्यन्त विषयी थे। स्वर्ग की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी अप्सराओं को सदा लिये हुये ये देवोद्यानो में विहार करते रहते। सुन्दर सुन्दर सरोवरों के तटों पर सुन्दरियों के साथ जल केलि करते, उनके साथ वारुणी मदिरा का पान करके मदोन्मत्त होकर हँसते खेलते गाते बजाते। शिवजी, कुवेरजी को अपना सखा ही मानते हैं, अतः सखा के सुतों के नाते शिवजी भी इन्हें अपना सेवक ही मनाते। इन सब बातो के कारण ये दोनो अपने सम्मुख किसी को कुछ समझते ही नहीं थे। इन्हें अपने ऐश्वय का बडा अभिमान था।

एक दिन ये दोनों स्वर्गीय सुन्दरी अप्सराओं को लिये हुए वन विहार के लिये गये। यहाँ विभ्राजक, चैत्ररथ, तथा नन्दन काननादि वनों मे स्वच्छन्द विहार करने लगे। इन दोनो ने वारुणी नाम की मदिरा यथेष्ट पी रखी थी। साथ की अप्सराओं को भी पिला रखी थी, उसके मद मे ये मदमाते वने हुए थे। इन्हें अपने शरीर की भी सुधि नहीं थी। सुरा के कारण इनकी कामाग्नि प्रदीप्त हो रही थी। मन जब काम के आधीन हो जाता है और कामिनी को भी सम्मुख पाता है, तो वह कुत्सित चेष्टायें विना किये रह नहीं सकता। उन कुवेर के कुमारों ने उन अप्सराओं के सम्पूर्ण वस्त्र उतरवा दिये उन्हे नितान्त नग्नकर दिया। स्वयं भी नगे हो गये वारुणी के मद में उन्हे शील, संकोच तो रहा नहीं मद के कारण उनके नेत्र घूम रहे थे। दोनों मदोन्मत्त बने कैलाश के परम रमणीय उपवन में इधर से उधर चक्कर लगाने लगे। नगी अप्सरायें गाती बजाती थीं, ये उनके स्वर मे स्वर मिलाकर गाने का अनुकरण करते फिर ठठाका मारकर—हा! हा! हा! करके हँसने लग जाते। वह पुष्पित वन बड़ा ही सुन्दर था, उसमें सदा वसन्त निवास करते। कल कल नादिनी पुण्यतोया विष्णु पादाब्जसम्भूता श्रीगङ्गाजी का वह तट था।

भगवान् चन्द्रशेखर के जटा-जूट से निकलकर भगवती त्रिपथगा यहीं से पृथ्वी, पाताल, और स्वर्ग में गई हैं। कहीं-कहीं कैलाश की उपत्यकाओं मे गङ्गाजल रुककर गङ्गाजी के मध्य में ही ह्रद बन गये थे। वे यक्षाधिप कुवेर कुमार उन कमनीय कमलों को लेने के लिये श्रीगङ्गाजी के एक ह्रद में घुस गये, उन अप्सराओं ने भी उनका अनुसरण किया। जल में वरुण देवता का निवास होता है, जल को प्रसन्नता होती है। उन काम पीडित अप्सराओं और कुवेर कुमारों ने साथ ही ह्रद मे प्रवेश किया था। अब उन्हें जल क्रीडा की सूझी, दोनों अपने हाथों जल उलीचकर उन्हें न्हिलाने लगे। वे व्रीडा का भाव दिखाती हुई भागतीं उन्हें कसकर पकड लेतीं, उनके ऊपर स्वय जल उलीचतीं, इस प्रकार बडी वेला जल विहार होता रहा। सयोग की बात दैवयोग से देवर्षि नारदजी वीणा बजाते हरिगुण गाते उधर से आ निकले।

वैसे नारदजी किसी की ओर विशेष ध्यान नहीं देते। यह तो ससार है, इसमे सभी प्रकार के प्राणी हैं, सभी अपने अपने स्वाभाव और सस्कारों से विवश हैं, कहने से कौन मानता है, अच्छे-अच्छे साधक इच्छा न रहने पर भी पूर्वसस्कारों के अधीन होकर विषयों मे फँस जाते हैं। फिर देवयोनि तो भोग योनि है ही, इसमें तो इन्द्रियों को तृप्त करना ही प्रधान उद्देश है। भाग्यवश नारदजी की इन दोनों पर दृष्टि पड गयी। सर्वान्तर्यामी नारदजी देखते ही इन कुवेर पुत्रों को पहिचान गये। शिवजी की सभा मे सदा ही ये कुवेर के साथ नारदजी को मिलते थे। इनके पिता नारदजी को देखते ही उठ खडे हो जाते। इन दोनों को पैरों में डालते थे, ये भी जब कभी नारदजी को देखते तो चरण वन्दना करते। आज नारदजी ने देखा—"ये छोकरे मुझे देखकर हँस रहे हैं। प्रणाम नमस्कार तो दूर रही, ये मुझे देखकर वस्त्र तक नहीं पहनते। नंगे, धडगे इन नगी अप्स-

राओं के साथ मेरे देखने पर भी निर्लज्ज होकर विहार कर रहे हैं। ओ हो! ये तो वारुणी के मद में मतवाले बने हैं। ऐश्वर्य मद ने इन्हें नेत्र रहते हुए भी अन्धा बना दिया है। अच्छी बात है मैं इनके मद को चूर करूँगा।"

अब तक अप्सराओं की दृष्टि नारदजी पर नहीं पड़ी थी। स्त्री कैसी भी क्यों न हो उसमें कुछ न कुछ लज्जा रहती ही है। वेश्याओं तक में कुछ शील सकोच स्त्री सुलभ लज्जा का अंश बना रहता है। नारदजी को देखते ही दौड़कर उन अप्सराओं ने

अपने अपने वस्त्र पहिन लिये। किन्तु नलकूबर मणिग्रीव को तो अपने ऐश्वर्य का अभिमान था। वे सोचते थे—"यह तूमड़िया भिखारी नारद हमारा क्या करेगा। हम स्वतन्त्र हैं, धनद लोकपाल के पुत्र हैं, हमारी जो इच्छा होगी सो करेंगे। नारद हमारा शासक तो है ही नहीं।" यही सोचकर वे नारदजी के सम्मुख वैसे ही नंगे-धड़ंगे खड़े रहे।

ऊपर विमान में चढी अप्सरायें इस कामक्रीडा को देख रही थीं, उनके मन में भी काम भाव उत्पन्न हो रहा था। बहुत से देवगण भी आकाश मे विमानों पर बैठे इस जल विहार को देखकर सिहर रहे थे, केवल नारदजी ही चिन्तित और दुखी हुए खड़े थे।"

शौनकजी ने पूछा—' सूतजी ! नारदजी के दुखी होने का क्या कारण था ? महाभाग यह तो ससार है। इसमें अच्छे-बुरे, खोटे-खरे सभी प्रकार के जीव होते हैं। कोई किसी कार्य से अपनी वासना की पूर्ति कर रहा है कोई किसी कार्य से। नारदजी चुप चाप कृष्ण कीर्तन करते हुए चले जाते। उन्हें इन विषयों के बीच में पडने की क्या आवश्यकता थी। सब अपने स्वभाव से विवश होकर कार्य करते हैं।"

सूतजी ने कहा—"भगवन् ! यह सत्य है, प्राणी विवश है, वह सस्कारों के आधीन होकर ही कार्य करता है। किन्तु सन्तों का स्वभाव भी तो परोपकार है। वे प्राणियों पर कृपा किये बिना रह नहीं सकते,जेसे दुष्टों का स्वभाव ही पर पीडा देना होता है। उनका चाहे कुछ भी स्वार्थ न हो किन्तु इन्हे प्राणियो को पीडा देने में एक प्रकार का आनन्द आता है, इसी प्रकार सन्तों को परोपकार करने में, दीन, दुखियों के दुखों को दूर करने में, भूले भटकों को सुमार्ग में लगाने में, अज्ञों को उपदेश करने में, आनन्द आता है। कहीं वे प्रसन्नता प्रकट करके कृपा करके हैं, कहीं शाप

देकर भी अनुग्रह करते हैं। उनकी प्रत्येक चेष्टा में परहित निहित रहता है वे जो भी करते हैं प्राणियों के कल्याण के ही निमित्त करते हैं। नारदजी को इनकी ऐसी दुर्दशा देखकर दया आ गयी। वे समझ गये मद में उन्मत्त बने ये यह समझाने बुझाने से मानने वाले नहीं इन पर तो शाप देकर ही कृपा करनी है। रोग के उपद्रव अधिक बलवान हों तो प्रथम अनुभवी वैद्य को उपद्रव को शान्त करने की चेष्टा करनी चाहिये, फिर शनैः-शनैः उपद्रवों के कारण रोग को जड़ मूल से मेंट देना चाहिये। मुझे प्रथम शाप देकर इनके ऐश्वर्य मद को नष्ट करना है। अब ऐश्वर्य से हीन हो जायँगे। तब ये प्रभु प्रसाद प्राप्त करने के अधिकारी बन जायँगे। इतने बड़े लोकपाल के पुत्र होकर ये ऐसे निर्लज्ज हो गये हैं, यह बड़े दुःख की बात है।" यही सब सोच विचार कर नारदजी अपने आप ही आकाश चारी देवता और अप्सराओं को सुनाते हुए शून्य से बातें करने लगे।

नारदजी कहने लगे—"महामुनि च्यवन ने इन्द्र को मारने के लिये 'मद' नाम का एक पुत्र उत्पन्न किया था। इन्द्र को जब पता चला, कि मुनि ने मुझे मारने मद को उत्पन्न किया है, तो वे मुनि के चरणों में गिरकर उनसे क्षमा माँगने लगे। तब इन्द्र की अनुमति से मुनि ने मद को अनेक स्थानों में बाँट दिया। हाथियों में, स्त्रियों में, सुरापियों मे, धन मे, विद्या में, द्यूत में, तथा अन्य भी बहुत से यौवनमद, ऐश्वर्यमद, विद्यामद, कुलमद, सुरामद, तथा धनमद,आदि अनेक मद हुए। इन सबमें ऐश्वर्यमद जितना बुद्धि को भ्रष्ट करने वाला है उतना और कोई भी मद नहीं है। ऐश्वर्य के मद मे तो प्राणी अपने पराये के विवेक को ही खो बैठता है। हास्यादि रजोगुण के कार्य हैं, किन्तु ऐश्वर्य मद होने वाले अनर्थों की तो कोई सीमा ही नहीं। ऐश्वर्य मद में स्त्री संग, द्यूत और मदिरा इनकी तो प्रधानता रहती है। जो मदिरा पान करेगा

मास अवश्य चाहिये, मांस विना हिंसा के प्राप्त होता नहीं। जो अपने नश्वर शरीर के पोषण के लिये दूसरों के प्राणों की हिंसा करता है वह अपने शरीर को तो अजर-अमर समझता ही है। उसे पुष्ट बनाने को प्राणियों का वध करता है। यह शरीर कितना भी सुन्दर हो, कितना भी कुलीन हो सबकी तीन ही गति है। ब्राह्मण का शरीर हो या चांडाल का, काला हो अथवा गोरा, स्त्री हो या पुरुष, कुलीन हो अथवा अकुलीन, रोगयुक्त हो अथवा निरोग, मरने पर तीन ही इसकी गति है। अग्नि में जला दो तो मुट्ठी भर राख हो जायगी, गाड़ दो तो सड़कर कीड़े पड़ जायँगे। वन में, जल में, फेंक दो तो मांस भोगी जल जन्तु उसे खाकर विष्ठा बना देंगे। ऐसे नश्वर अनित्य क्षणभंगुर शरीर के लिये जो पुरुष प्राणियों से द्रोह करता है, वह अपने हाथों ही नरक के मार्ग को परिष्कृत करता है। क्या वह अपने वास्तविक स्वार्थ से परिचित है ?

नारदजी इस प्रकार शून्य में कह रहे थे। समीप ही कुबेर पुत्रों के अग रक्षक यक्ष दूर बैठे थे। उनमें से एक यक्ष ने आकर हाथ जोडकर नारदजी के चरणों मे प्रणाम किया और अत्यन्त ही विनीत भाव से बोला—"भगवन्! आप इस देह को अनित्य क्षणभगुर बता रहे हैं। यह तो सत्य ही है, किन्तु यह शरीर हमें वश परम्परा से प्राप्त हुआ है। हमारे माता पिता ने इसे उत्पन्न किया है, उन्हीं का इस पर अधिकार है।"

नारदजी ने कहा—"अच्छा पहिले यही निर्णय हो जाय, इस शरीर पर किसका अधिकार है। यदि अन्न न मिले तो न तो यह शरीर बढ सकता है और न रह सकता है अधिकार की ही बात है, तो इस शरीर पर अन्नदाता का ही अधिकार होना चाहिये। अन्नदाता को भी पिता कहा है।"

यक्ष ने कहा—"अन्न तो तभी खायगा, जब पहिले शरीर

बनेगा। शरीर बनाने वाले का भी तो अधिकार होना चाहिये ?"

नारदजी ने कहा—"अन्न से ही तो वीर्य बनता है, पुरुष अपनी पत्नी की योनि में वीर्य का आधान करता है, माता के रज और पुरुष के वीर्य के सम्मिश्रण से शरीर उत्पन्न होता है। माता उसे उदर में धारण करती है। अतः वीर्यदाता पिता उदर में धारण करने वाली माता का भी इस शरीर पर अधिकार है। वे कहते हैं यह मेरा पुत्र है। पिता का पिता कहता है मैं पुत्र को पैदा न करता तो पौत्र कैसे होता, इसी बात को उसका पिता कहता है। अतः सभी पूर्वजों का भी इस पर अधिकार है। माता की माता नानी कहती है मैं अपनी पुत्री को पेट मे न रखती तो यह धेवता, कैसे होता अतः नानी इस शरीर पर अपना अधिकार जमाती है। इसी प्रकार माता के पिता नाना, इस पर अपना स्वत्व प्रकट करते हैं। भगवान् कहते हैं कोई भी पैदा करो यह शरीर मेरी कृपा से सुरक्षित है, मैं चाहूँ तो अभी इसे नष्ट कर सकता हूँ। अतः मेरा अधिकार है। जिसके यहाँ नौकरी चाकरी करते हैं वह कहता है—"मैंने इस शरीर को क्रय कर लिया है। मैं जो चाहूँ इससे काम लूँ, मैं इसका स्वामी हूँ।" सबकी बात सुनकर कुत्ते, गीदड़, चील, कछुआ, कीड़े आदि जीव तथा अग्नि देव कहते हैं—"स्वामी तो वही है जिस पर वह वस्तु पहुँच जाय, तुम बकते रहो, अंत में तो यह शरीर ही पेट में आना है, अतः हम ही इसके सच्चे स्वामी हैं। अब बताओ, इस शरीर को किसका कहें, किसे इसका स्वामी मानें।

यक्ष ने पूछा—'तब महाराज! यह वास्तव में शरीर है किसका ? कौन स्वामी है ?"

नारदजी ने कहा—"अरे, भाई यह देह अव्यक्त से उत्पन्न हुआ है। समस्त भूत आदि में अव्यक्त ही थे। बीच में व्यक्त हो गये। अन्त में भी अव्यक्त में मिल जायँगे। जहाँ की वस्तु तहाँ

चली गई तो इसमें शोक और चिन्ता करने की तो कोई बात ही नहीं। स्वप्न में हमने सर्प देखा हम डर गये। स्वप्न भग हुआ, भय चला गया। स्वप्न के पूर्व भी वहाँ सर्प नहीं था। स्वप्न के अन्त मे भी उसका अस्तित्व नहीं रहा। केवल स्वप्नावस्था मे उसकी प्रतीति मात्र हुई। ऐसा ही यह देह है। बनने से पूर्व इसकी समस्त सामग्री पंचभूतों मे थी। मरने पर भी ज्यों की त्यों पचभूतों मे मिल जाती है। यह देह असत् है। ऐसी साधारण वस्तु के लिये कौन बुद्धिमान पुरुष जीवहिंसा आदि पाप कर्म करेगा। एकमात्र आत्मा ही सत्पदार्थ है। अज्ञानी पुरुष शरीर को ही आत्मा माने बैठे हैं। इसलिये शरीर को सदा बनाये रखने की, सुखी रखने की, निरन्तर चेष्टा करते रहते हैं। ऐश्वर्य के मद में उन्मत्त होकर पाप कर्म करते हैं। अपने संस्कारों को कुत्सित करके आत्महा बनकर नरकों की यातनायें भोगते हैं। ऐश्वर्य का मद एक प्रकार का रोग है। जैसे वात रोग में आदमी अड-बड बकता है, इधर-उधर हाथ पैर फटफटाता है, उसी प्रकार धनमद में मतवाला मनुष्य मोहवश मूर्खता करता है। बड़ों का अपमान करता है। सदाचार का उल्लंघन करता है।"

यक्ष ने पूछा—"भगवन्! इस धनमद रोग की कुछ औषधि भी तो होगी?"

नारदजी बोले—"हाँ, औषधि है, क्यों नहीं। धनके मद में मत्त हुये रोग की दरिद्रता ही एकमात्र औषधि है। ऐश्वर्यमद आँखों में जाले के समान छा जाता है। आँखों की पुतलियों पर जब जाला आ जाता है, तो मनुष्य को कुछ सूझता नहीं, वह अन्धा हो जाता है। उस आँख के पके हुए जाले को किसी अजन से या शस्त्र से काट दो, तो पुनः आँखों में ज्यों की त्यों ज्योति आ जाती है, पुनः दिखाई देने लगता है। इसी प्रकार धनमद में मदान्ध हुये पुरुषों को दरिद्रता दे दी जाय तो उनकी बुद्धि ठिकाने

आ जाती है। दरिद्र बिना बने दरिद्रों के दुःख नहीं जाने जाते। जब स्वयं दरिद्र बन जाता है तो वह सबके दुखों को अपने ही समान अनुभव करने लगता है।"

यक्ष ने कहा—"भगवन्! सुनकर भी तो बहुत बातों का अनुभव होता है ?"

नारदजी ने कहा—"कुछ बातों की सुनकर भी जानकारी हो जाती है। किन्तु स्वयं अपने ऊपर बीतती है, तब उसका अनुभव यथार्थ होता है। अपने पैर मे बिवाई फटती है तब उसकी पीर का अनुभव भली-भाँति होता है। अपने पैर में जब काँटा लगता है, और कष्ट में सी-सी करते हैं, तब ज्ञान होता है, कि दूसरों को भी काँटा लगने पर ऐसा ही कष्ट होता होगा। जिनको समय पर आवश्यकता से अधिक भोजन, वसन, वाहन, विलास की वस्तुएँ प्रचुर मात्रा मे प्राप्त हो जाती हैं, वे निर्धनों की आवश्यकताओं का और उनके अभाव में जो पीड़ा होती है उसका अनुभव कैसे कर सकते हैं ? दरिद्रता दैव की दी हुई स्वाभाविकी तपस्या है। दरिद्री में और तपस्वी में ऊपर से कोई अन्तर नहीं। निर्धन के पास न धन बल है न जन बल। पेट भरने पर ही व्यभिचार द्यूत तथा मद्य पान की बातें सूझती हैं। निराहार प्राणी की इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं। सम्मुख भोग वस्तुएँ होने पर भी इच्छा नहीं होती। अहकार, अकड आदि तो धन के मद से ही हुआ करते हैं। निर्धन किस आधार पर अहंकार करे। दरिद्रता देवी की दया से सब दुर्व्यसनों से स्वतः ही बचा रहता है।"

यक्ष ने पूछा—"भगवन्! आपने निर्धन को तपस्वी की उपमा कैसे दी ?"

नारदजी बोले—"अरे! भाई! तपस्वी और क्या करते हैं ? हम अन्न नहीं खायेंगे, केवल फलाहार पर ही रहेंगे, बाल नहीं

बनवायेंगे। आहार छोड़कर केवल जल पीकर ही रहेंगे। जाड़ों में दिगम्बर बनकर रहेंगे। पञ्चाग्नि तापेंगे। इन्हीं सब बातों का नाम तपस्या है। निर्धन की यह तपस्या अपने आप हो जाती है। उस पर वस्त्र नहीं होते, जैसे-तैसे पेट में घोंटू देकर, चिथड़ों को ओढ़कर रात्रि भर जागता रहता है। अन्न नहीं मिलता, तो जल पीकर ही रह जाता है। दिन भर परिश्रम करता है। दैव योग से उसे जो कष्ट प्राप्त होते हैं यही उसका परम तप है। अन्तर इतना ही है, कि वह तपस्या अपने आप मन से की जाती है, यह तपस्या दैवेच्छा से अपनी इच्छा न रहने पर की जाती है। वह भी तपस्या इच्छा से कहाँ होती है। उसे करने को भी पूर्व संस्कारों के कारण प्राणी विवश हो जाता है। सभी तो उस तस्पया को नहीं कर सकते। उसमें भी पूर्व संस्कारों से, भाग्य से किसी विरले पुरुष की ही प्रवृत्ति होती है। दरिद्रता से जो दुःख सहते हैं उनसे भी पाप तो कटते ही हैं, अशुभों का नाश तो उनसे भी होता है, अतः दरिद्रता भोगना एक प्रकार का तप है। जिनको अजीर्ण, मन्दाग्नि, अथवा संग्रहणी हो जाती है। उनको चिकित्सक लोग उपवास कराके अथवा अल्प आहार देकर उनके दोषों को पचाते हैं। जैसे अजीर्ण की उपचार उपवास है वैसे ही धनमद से अंधे हुए पुरुषों की आँखों केलिये दरिद्रता ही सर्वश्रेष्ठ अचूक अंजन है। जिसकी देह क्षुधा से जर्जर हो जाती है, जिसे सदा सर्वदा अन्न की ही चाह बनी रहती है, ऐसे निर्धन पुरुष की समस्त इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं। वाणी में करुणा आ जाती है, मुख पर दीनता छा जाती है। वह किसी से न कड़वा वचन ही बोल सकता है न उसमें हिंसा करने की सामर्थ्य ही रहती है।

यक्ष ने कहा—"महाराज! निर्धनता में एक बड़ा दोष है। जिसके पास धन न होगा, तो साधु सन्त भी उसके पास न

आवेंगे। साधु सन्त न आवेंगे तो वह सत्संग से वंचित रहेगा। जो सत्सग से वञ्चित रहेगा, उसकी सद्गति भी न होगी। इससे तो निर्धनता इस लोक, परलोक दोनों को ही बिगाड़ने वाली है।

नारदजी ने कहा—"अरे, भैया! यह बात नहीं समदर्शी साधु गण कुछ धनिकों के क्रीत दास तो होते नहीं धनिक तो धन के मद में भरकर साधुओं से भली भाँति बोलते तक नहीं। वे तो अंधे हो जाते हैं, माता पिता गुरु तथा स्वजनों तक का तिरस्कार करते हैं। ऐसे अभिमानी पुरुषों के समीप साधुजन जाकर उनकी लल्लो-चप्पो क्यों करने लगे। उनकी दृष्टि में तो धनी-निर्धन समान ही हैं। जो भी उनके पास जाय उसी से वे प्रेम करते हैं। धनी तो अपनी पद प्रतिष्ठा के मद मे भरकर उनके समीप जाते नहीं, उन अकिञ्चनों के समीप जाने में वे अपना अपमान समझते हैं। जाते भी हैं तो नम्रता नहीं दिखाते, उनके समीप श्रद्धा से बैठते नहीं, अभिमान में अकड़े रहते हैं। निर्धन तो डरता रहता है। वह जहाँ चाहता है वहाँ निरभिमान होकर चला जाता है। निःसकोच पैर छूता है सेवा करता है। इस प्रकार धनिकों की अपेक्षा निर्धनों को साधु समागम का अधिक सुयोग प्राप्त होता है। उनका संग करते-करते वह विषयों में जो अब तक तृष्णा बनी हुई थी, उसे भी शनैः शनैः त्याग देता है। धन तो पहिले ही नष्ट हो चुका था। साधु संग से जहाँ तृष्णा का भी नाश हुआ, तहाँ वह जीवन मुक्त बन जाता है। प्रभु के सर्वश्रेष्ठ प्रेम को वह प्राप्त कर लेता है। इस कारण निर्धनता बुरी वस्तु नहीं है। वह साधु समागम से भी वञ्चित नहीं करती। जो साधु होकर धन का लोभी है वह साधु ही नहीं। जो भगवच्चरणारविन्दों के रस के रसिक हैं, उन समदर्शी साधु पुरुषों को दुर्गुणों से युक्त एव धन के मद से मत्त दुर्जनों से क्या प्रयोजन है?

उनके लिये तो ऐसे अविनम्र अहंकारी उपेक्षणीय ही होते हैं। ये कुबेर के पुत्र वारुणी मदिरा का पान करके प्रमत्त बने हुए हैं, ऐश्वर्य मद से मदान्ध हो रहे हैं। स्त्रियों में अत्यंत आसक्त हो गये हैं, ऐसे इन्द्रिय लोलुप, स्त्री परायण यक्षों का मैं अज्ञान जनित मद दूर कर दूँगा। इन्हें इनके मद से भ्रष्ट करके स्थावर बना दूँगा।"

यक्ष ने कहा—"महाराज! आप क्यों क्रुद्ध होते हैं। आप इनको स्थावर योनि में शाप देकर क्यों भेजना चाहते हैं?"

नारदजी ने कहा—"देखो, भाई! कोई साधारण विषयासक्त बद्ध जीव होते, तो मैं उनकी उपेक्षा भी कर सकता था। ये तो प्रसिद्ध लोकपाल के पुत्र हैं। देवयोनि में होने से पूजनीय और वन्दनीय हैं। ज्ञान तथा भगवद्भक्ति के अधिकारी हैं। इतने उच्च अधिकारी होने पर भी अत्यन्त मद के कारण अज्ञान में ऐसे डूबे हुए हैं इन्हें अपने वस्त्रों तक की सुधि नहीं मेरे सम्मुख भी नङ्ग-धडंगे वृक्ष के समान खड़े हैं। अतः ये वृक्ष ही बनें। इन दोनों में परस्पर में बडा ही स्नेह है। जिनका आपस में स्नेह होता है, वे किसी योनि में जन्म लेंगे दोनों साथ ही रहेंगे। अतः ये वृक्ष बनकर भी जुडैले होंगे। दोनों की जड़े आपस में सटी होंगी। दूर से देखने में ये दो होने पर भी एक ही दिखाई देंगे।" यक्ष ने हाथ जोड़कर कहा—"प्रभो! ये हमारे स्वामी हैं। इनसे कोई अविनय हो भी गई है, तो उसे आप क्षमा करें। आप तो दया के सागर हैं। इन्हें ऐसा कठोर शाप न दें।"

नारदजी ने कहा—"भाई, देखो! मैं तो कभी हँसी में भी झूठ नहीं बोलता। मेरी वाणी अमोघ है, वह कभी मिथ्या हो ही नहीं सकती। इन्हें वृक्षयोनि में तो जाना ही होगा, किन्तु तुम बहुत विनय करते हो, तो मैं इतना किये देता हूँ कि इन्हें वृक्षयोनि में भी मेरी कृपा से इस जन्म की स्मृति ज्यों की त्यों बनी रहेगी।

यह दड मैं इन्हें इसलिये देता हूँ, कि जिससे ये फिर कभी अज्ञान में फँसकर ऐसा अनर्थ न करें।

यक्ष ने कहा—"महाराज! पूर्वजन्म की स्मृति बनी रहना तो और भी बुरी बात है। सदा इन्हें अपनी पूर्व दशा स्मरण करके दुःख बना रहेगा।"

नारदजी ने कहा—"यही तो तप है। अपने पापों का स्मरण करके सदा चिंतित बने रहना, पश्चात्ताप करते रहना यही तो सर्वश्रेष्ठ साधन है। जिसे पाप करके हृदय से पश्चात्ताप बना रहता है और उसके प्रायश्चित स्वरूप तपस्या में लगा रहता है, वह शीघ्र पापों से मुक्त हो जाता है। इन्हें सदा यह स्मृति बनी रहेगी, कि हमने ऐश्वर्य के मद में भरकर ऐसा अनर्थ किया, तो वृक्ष योनि में भी इनकी तपस्या हो जायगी। तपस्या में स्थान का बडा प्रभाव होता है पुण्य स्थानों में की हुई तपस्या अन्य स्थानों से शतगुणी बलवती होती है। अतः ये वृक्ष भी होंगे तो परम पुण्य प्रद व्रज भूमि में होंगे। व्रज में भगवान् की जन्म स्थली गोकुल में इनका जन्म होगा। गोकुल में भी भगवान् के भवन के द्वार पर ये रहेंगे। द्वापर के अंत में भगवान् नद यशोदा के पुत्र बनकर इनके नीचे खेलेंगे।"

यक्ष ने कहा—"भगवन्! फिर इनके उद्धार का भी तो कोई उपाय बता जाइये।"

हँसकर भगवान् नारदजी ने कहा—"अरे, अब भी उद्धार का उपाय शेष रह गया क्या? वृन्दावन धाम में ये निवास करेंगे, ग्वाल बालों से सुमधुर श्रीकृष्ण नाम का कीर्तन सुनेंगे। भगवान् की माखन चोरी आदि लीलाओं को ये देखेंगे, उनके सुमधुर त्रैलोक्य पावन रूप का ये अवलोकन करेंगे। नाम, रूप लीला और धाम चारों ही साधन तो इन्हें प्राप्त हैं। केवल कृष्ण धाम में ही विश्वासकर पडे रहें, केवल कृष्ण नाम

ही रटते रहें, केवल कृष्ण रूप में ही मन को अटकाये रहें, केवल कृष्ण लीलाओं का ही चिंतन, मनन श्रवण करते रहें। इन चारों में से एक का ही आश्रय लेने से उद्धार हो जाता है, फिर इन्हें तो चारों ही प्राप्त होंगे। इनके उद्धार में तो कोई सदेह ही नहीं।"

यक्ष ने पूछा—"फिर इनकी वृक्षयोनि कब छूटेगी।"

नारदजी ने कहा—"यशोदा मैया जब श्रीकृष्ण को माखन चोरी के अपराध पर बाँधेगी, तब वे अपराधी बने इन अपराधियों के बीच से निकल जायँगे, तब इनका अपराध क्षमा हो जायगा। ये वृक्षयोनि से छूट जायेंगे। ब्रह्मादिक देवताओं को भी जो कृष्ण प्रेम दुर्लभ है वह परम प्रेम पद इन्हें प्राप्त होगा। देवताओं के वर्षों से सौ वर्ष तक ये वृक्षयोनि में रहेंगे। तदनन्तर सौ वर्ष बीत जाने पर आनन्दकन्द ब्रजचन्द श्रीकृष्णचन्द्र की इन्हें सन्निधि प्राप्त होगी। उसी समय ये भगवान् की भक्ति प्राप्त करके फिर अपने लोक के अधिकारी हो जायँगे। फिर कुबेर लोक में रहकर भगवान् की सेवा पूजा और परिचर्या में लगे रहेंगे। यह शाप मैंने इनके कल्याण के लिये ही दिया है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! ऐसा कहकर इच्छानुसार सभी लोकों में घूमने वाले देवर्षि नारदजी भगवान् के दर्शन करने के लिये बदरीवन की ओर चले गये। उधर ये दोनों कुबेर के पुत्र यमल अर्जुन होकर गोकुल में नन्दजी के द्वार पर देवताओं के वर्षों के सौ वर्षों तक खड़े रहे। भगवान् जब इनके बीच में से निकले, तब इनका उद्धार हुआ और ये भगवान् की स्तुति करके, उनकी आज्ञा लेकर अपने लोक को चले गये।"

शौनकजी ने पूछा—"हाँ सूतजी! फिर क्या हुआ? भगवान् बँधे ही रहे या उन्हें किसी ने खोला।"

हँसकर सूतजी ने कहा—"महाराज! भगवान् को न कोई बाँध सकता है, न खोल ही सकता है। वे अपनी इच्छा से ही

बँधते हैं, इच्छा से ही खुलते हैं। अब जो हुआ उसे आगे कहूँगा।"

छप्पय

संग अप्सरा वस्त्र हीन नंगे है न्हावें।
हरि गुन गावत परम रसिक नारद मुनि आवें॥
लखि मुनि युवती निकरि पहिन पट ऋषि सन्माने।
किन्तु धनद सुत मत्त नग्न ठाढ़े भौं ताने॥
शाप दयो मुनि तरु बनो, यमलार्जुन ते है गये।
पुनि द्वापर के अन्त महँ, परसि प्रभुहिँ पावन भये॥

श्रीकृष्ण की बन्धन मुक्ति

[८८५]

उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं स्वमात्मजम् ।
विलोक्य नन्दः प्रहसद्वदनो विमुमोच ह ॥*

(श्रीभा० १० स्क० ११ अ० ६ श्लोक)

छप्पय

वृक्ष पतन रव सुनत नन्द गोपादिक धाये ।
बँधे उलूखल कृष्ण करत क्रीड़ातहँ पाये ॥
कहैं परस्पर गिरे वृक्ष नहिँ आँधी पानी ।
बालनि सच सब कही बातें काहू नहिँ मानी ॥
गिरे दूध के दाँत नहिँ, जिह छोटो सो छोकरा ।
तरु उखारि कैसे सके, कहैं युवक अरु डोकरा ॥

यह बात बार-बार दुहरानी पड़ती है, कि यह प्रेम का पंथ निराला है। इसमें जो कहा जाय वही थोड़ा है। परात्पर सच्चिदानन्द घन विग्रह श्रीकृष्णचन्द्र को संसार बन्धनों से मुक्त करने वाला सभी वेद शास्त्र बताते हैं। उन्हें भी माता रस्सी से बाँध देती थी। जो 'कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं शक्यः' हैं सर्वसमर्थ हैं, वे

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! व्रजराज नन्दजी ने अपने पुत्र को ओखली में रस्सी से बँधा देखा तथा यह भी देखा कि वह उस ओखली को खींच रहा है, तो हँसते हुए उन्होंने अपने लाला के बन्धन को खोल दिया।"

अपने बन्धन को स्वय खोलने में समर्थ नहीं। वे इस प्रतीक्षा में इधर से उधर घूमते हैं, कि आकर मेरे कोई बन्धन को खोल दे। अब जो सबको बन्धन में बाँधने वाला है उसके बन्धन को भला कौन खोल सकता है, जो सबको नाक में नकेल डालकर नचा रहा है उसे कौन बचा सकता है कौन छुड़ा सकता है। या तो जिसने बाँधा होगा वही छुड़ावेगा। तीसरे की क्या सामर्थ्य कि उसके बन्धन को बन्धन भी कह सके।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! उन यमलार्जुन वृक्षों से नलकूबर मणिग्रीव ये दो दिव्य पुरुष निकले इस बात को तो बालकों ने देखा, किन्तु उन्होंने क्या स्तुति की और श्रीकृष्ण ने उनसे क्या कहा—इस बात को वे अबोध बालक भला क्या समझ सकते थे। जब वे दोनों धनदकुमार चले गये और वृक्षों के गिरने का शब्द चौपाल पर बैठे हुए गोपों ने सुना तो वे तुरन्त जैसे बैठे थे, वैसे ही दौड़े हुए चले आये। नन्दजी भी सबके साथ थे। उन्हें आशंका थी कहीं वज्रपात तो नहीं हुआ। आकर उन्होंने देखा खिलाड़ी श्रीकृष्ण बैल बने उस उलूखल को गाडी के समान खींच रहे हैं। सब उन वृक्षों के अकस्मात् गिर जाने से चिन्तित तथा भयभीत थे। आते ही बूढ़े-बूढ़े गोपों ने समीप ही खेलने वाले बालकों से पूछा—"बालको! ये वृक्ष सहसा कैसे गिर गये? आँधी नहीं पानी नहीं, इतने बड़े वृक्ष अपने आप कैसे गिर सकते हैं?"

बालकों ने अपनी जानकारी प्रकट करते हुए बड़े दृढ़ता के स्वर में कहा—"यह जो कनुआ है यह ओखली को खींच रहा था। इन दोनों वृक्षों के बीच से यह ज्यों ही निकला त्यों ही ओखली टेढ़ी हो गयी इसने बल लगाया। इसके बल लगाते ही ये वृक्ष टूटकर गिर गये। हमारे देखते-देखते इसने ही ये वृक्ष गिराये हैं। इसमें से बड़े सुन्दर किरीट मुकुट पहिने दो परम

तेजस्वी पुरुष निकले थे। वे कुछ देर तक कनुआ भैया से बात करते रहे फिर आकाश में उड़ गये। हमारे सामने ही इसने इन वृक्षों को गिराया है।"

बालकों की बात सुनकर कोई हँसने लगे, कोई कहने लगे ऐसा कैसे हो सकता है। ये तो लड़के हैं ऐसे ही अंट-सट बकते हैं। कोई अत्यन्त सम्भ्रम के साथ कहते—"इस बच्चे ने नहीं गिराये तो यह फिर किसका काम है। अपने आप तो इतने बड़े वृक्ष बिना प्रबल आँधी के गिर नहीं सकते। ऐसा हुआ कैसे ?" कोई कहता सहसा इस प्रकार वृक्षों का गिरना घोर अनिष्ट का सूचक है।

अब तक बड़े बड़े गोप यही समझ रहे थे, कि जैसे लड़के खेल-खेल में किसी को घोड़ा बना देते हैं, किसी को गाड़ी बना देते हैं, वैसे ही बालकों ने श्रीकृष्ण को बैल बना दिया है। इसीलिये एक ने कहा—"तुमने इस कनुआ को क्यों बाँध रखा है ?"

उनमें से एक चपल सा बालक बोला—"हमने काहे को बाँधा है। इसे तो यशोदा मैया ने बाँधा है।"

उसने पूछा—"मैया ने क्यों बाँधा ?"

वही बोला—"इसने मैया का माखन चुराया था, उसके पुराने माट को फोड़ दिया था। इसी पर कुपित होकर माता ने इसकी कमर में रस्सी बाँधकर इसे उलूखल से बाँध दिया है।"

नन्दजी भी खड़े-खड़े यह सब सुन रहे थे। अब ये वृक्ष के टूटने की बात तो भूल गये। उनका हृदय भर आया। यशोदाजी के ऊपर मन ही मन बड़ा क्रोध आया। मेरे इतने सुकुमार बालक को तनिक से माखन के पीछे इस अहीरिनि ने बाँध दिया है। उनके नेत्रों में अश्रु आ गये। फिर सोचा—"यदि मैं ही रोने लगूँगा, तो कृष्ण तो मुझे रोते देखकर ढाह मारकर रोने लगेगा। वह दृश्य बड़ा कारुणिक होगा। मुझे बालक के सम्मुख अपनी

दुर्बलता व्यक्त न करनी चाहिये।" यही सब सोचकर हृदय से वो रो रहे थे, किन्तु ऊपर से हँसते हुए श्यामसुन्दर के समीप गये और बोले—"कनुआ बेटा! क्या बात है?"

आप अपने भोरे स्वभाव से बोले—"बाबा! बाबा! मुझे मैया ने बाँध दिया है।"

नन्दजी ने अत्यन्त प्यार से कहा—"तैंने कोई अपराध किया होगा?"

आप अत्यन्त भोरे बनकर बोले—"बाबा! मैंने कोई अपराध नहीं किया। मैया का दूध उफन गया था। वह शीघ्रता में उसे उतारने चली उसके पैर के कङ्कले के ठोकर से माट फूट गया, इसी पर मुझे बाँध दिया है। और मारा भी है।"

नन्दजी ने कहा—"कोई बात नहीं बेटा! अब मैं तेरी मैया को मारूँगा। ला मैं तेरा बन्धन खोल दूँ।"

यह कहकर नन्दजी ने उदर में बँधी रस्सी को खोल दिया। गोद में लेकर बार बार श्रीकृष्ण के मुख को चूमा। जहाँ रस्सी बँधी थी, वह स्थान लाल पड गया था, नन्दजी उसे अपने हाथ से सहलाने लगे और बोले—"बेटा! चल मैया के पास।"

आप बोले—"बाबा! मैया तो मुझे मारती है, अब मैं मैया के पास न जाऊँगा।"

नन्दजी ने भोरे भारे श्रीकृष्ण का मुख चूमा और बोले—"अरे, बेटा! मैया तो दूध पिलाती है। मैं तुझे दूध कहाँ से पिलाऊँगा।" आप बोले—"बाबा! मैं श्यामा गैया का दूध पी लिया करूँगा। और तेरे साथ ही चौपाल पर सो रहा करूँगा।"

वृक्षों के गिरने के शब्द को सुनकर यशोदा मैया भी दौडी आयीं। उन्होने देखा दोनों वृक्ष उखड़े पड़े हैं। उसके आस-पास बालक वृद्ध सहस्रों स्त्री पुरुष खड़े हैं और वृक्ष के गिरने के ही सम्बन्ध में बातें हो रही हैं। नन्दजी की गोद में, सकुशल

श्रीकृष्ण को देखकर मैया के प्राणों में प्राण आये। उन्होंने हाथ के संकेत से श्रीकृष्ण को अपनी गोदी में बुलाया, किन्तु श्रीकृष्ण ने मैया की ओर से मुख फेर लिया। मातृ हृदय धक धक कर रहा था। उन्हें अपने कृत्य पर रह-रहकर पश्चात्ताप हो रहा था। "हाय! मेरी कैसी मति मारी गयी। तनिक से माखन के पीछे इतने सुन्दर सुकुमार बालक को रस्सी से बाँध दिया। माट तो मिट्टी का था। उसे तो फूटना ही था। मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। मेरे ऊपर क्रोध का भूत चढ़ गया। यह तो नारायण ने ही रक्षा की, कि बच्चे का कुछ अनिष्ट नहीं हुआ, नहीं तो इतना भारी पेड़ गिर गया। बालक नीचे ही दब जाता। हे भगवान् मेरे बच्चे का कल्याण करना।" इस प्रकार सोचते-सोचते माता का हृदय भर आया। वे बालकों की भाँति रोने लगीं। गोपियाँ आकर उन्हें समझाने लगीं—"ब्रजेश्वरी! कोई बात नहीं। नारायण ने बड़ी रक्षा की। बच्चे का बाल भी बाँका नहीं हुआ। तुम अपने मनको मैला मत करो। भगवान् करें आपका बच्चा युग-युग जीता रहे।"

माता को वृक्षों के गिरने का तो ध्यान भी नहीं रहा था। उन्हें तो अपने कृत्य पर पश्चात्ताप हो रहा था। वे तो मन ही मन अपने को धिक्कार दे रही थीं। मेरा बच्चा मुझसे रूठ गया है मेरी गोदी में नहीं आता। मैं माता कहलाने के योग्य नहीं। जो माता अबोध बच्चे पर क्रोध करके उसे दण्ड दे वह माता कैसी? माता का शासन तो प्रेम का होता है। पिता भले ही डाँटे फटकारे, किन्तु माता तो अपने प्रेम से ही पुत्र को वश में कर लेती है। मेरे मनमें प्रेम का लेश भी नहीं। मैं प्रेमहीना हूँ।"

यह सोचते सोचते उन्हें संसार सूना ही सूना दिखाई देने लगा। श्रीकृष्ण को लेकर नन्दजी अथाँई पर चले गये। उन्हें भी यशोदाजी पर क्रोध आ रहा था, जैसे-तैसे तो इस वृद्धावस्था

में हमें पुत्र का मुख देखने को मिला है, यह कुछ समझती ही नहीं। बच्चे को बाँध दिया। आज वे भी भीतर भोजन करने नहीं आये। ब्रजराज चौपाल पर ही रहे वहीं श्रीकृष्ण को स्वय दुहकर मिश्री मिलाकर श्यामा गौ का दूध पिलाया।

बलदेवजी उस समय कहीं बाहर चले गये थे, उन्होंने जब सुना मैया ने मेरे छोटे भैया को रस्सी से बाँध दिया था और उसके ऊपर अर्जुन वृक्ष गिर गये, तो उनके दुःख का ठिकाना नहीं रहा। रोते रोते नन्दबाबा के पास गये नन्दजी ने उन्हें बार बार पुचकारा किन्तु बलदाऊजी की हिचकियाँ ही बन्द नहीं होती थीं, श्रीकृष्ण को देखकर व रोहिणीजी के पास गये और रोप में भरकर बोले—"माँ ! मैया ने कन्हैया को तनिक से माखन के पीछे ओखली से बाँध दिया था, यह अच्छा हुआ मैं वहाँ नहीं था, नहीं तो मेरा तो हृदय फट जाता। अब वह तो मैया ही ठहरी उससे तो हम कुछ कह ही नहीं सकते। दूसरा कोई श्याम के श्री अंग से क्रोध में भरकर हाथ भी लगाता, तो मैं उसे उसका फल चखाता।"

रोहिणीजी ने अत्यन्त प्यार से उनके आँसू पोंछते हुए कहा—"कोई बात नहीं है बेटा ! बच्चों को ऐसे धमकाया न जाय, तो काम कैसे चले।"

इस प्रकार समस्त ब्रज में हल्ला मच गया। बूढ़ी बूढ़ी गोपियाँ कहने लगीं—"यशोदा अति कर देती है। कभी बालक को आँखों में धमका दिया। यह नहीं कि उसे छड़ी लेकर मारे या रस्सी से बाँध दे। मारने बाँधने से बालक ढीठ हो जाता है। इस प्रकार जितने मुख थे, उतने प्रकार की बातें थीं। यशोदा मैया ने प्रातः से मुख में जल तक नहीं दिया। वे श्रीकृष्ण के लिये तड़फने लगीं। कुछ ही प्रहरों का समय उन्हें युगों के सदृश प्रतीत होने लगा। श्रीकृष्ण कभी क्रोध नहीं करते, वे कुछ काल हटकर

उत्कंठा की अग्नि को तीव्र कर देते हैं। वियोग से प्रेम के रसास्व को बढ़ा देते हैं। वियोग के अनन्तर जो संयोग होता है वह अत्यन्त सुन्दर मधुमय होता है।

श्रीकृष्ण ने देखा मैया की उत्कठा पराकाष्ठा पर पहुँच गयी है तो वे व्रजराज से बोले—"बाबा! बाबा! मैं तो मैया के पास जाऊँगा।"

व्रजराज बोले—"अरे ऊधमी! अभी तो कहता था, मैं चौपाल पर ही सोऊँगा।"

आप बोले—"बाबा! तेरे पास बोबो तो हैं ही नहीं। मैं तो बोबो पीऊँगा।"

नन्दजी बोले—"धत्तेरे नटखट की। यह बात तो मैंने तुमसे पहिले ही कही थी, तू मैया के बिना नहीं रह सकता।" यह कहकर श्रीकृष्ण को लेकर व्रजराज अन्तःपुर में गये। यशोदा मैया ने अत्यन्त स्नेह से श्याम को गोदी में बिठाया और मातृ-स्नेह के कारण झरता हुआ अपने स्तनों का दूध प्रेमपूर्वक उन्हें पिलाया। श्रीकृष्ण प्रातः की सब बातें भूल गये, वे फिर पूर्ववत् हँस हँसकर बातें करने लगे। विस्मृति ही सुख की जननी है पुरानी बातों को भूलकर हम नयी में ही निमग्न हो जायँ, तो फिर आनन्द ही आनन्द है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! व्रज में रहकर श्रीकृष्ण ऐसे ही अनेकों सुखद लीलाएँ करने लगे। अब उनमें से कुछ का वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

बँधे बिलोके श्याम नन्द बाबा ढिँग आये।
दाम खोलि मुख चूमि प्रेमतैं हृदय लगाये॥
बाबा बोले—'वत्स! गोद मैया की जा अब'।
'मैया मारे मोइ न जाऊँ' बोले-हरि तब॥
यशुमति मन सन्ताप अति, तब मम मति मारी गई।
नहिँ सुत आयो अब तलक, सुमिरि मातु व्याकुल भई॥

श्याम की प्रेममयी लीलाएँ

[८८६]

गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद् भगवान् बालवत् क्वचित्।
उद्गायति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयन्त्रवत् ॥*

(श्री भा० १० स्क० ११ अ० ७ श्लो०)

छप्पय

साँझ भई पुनि श्याम मातु के हिय लपटाये।
उमग्यो पुत्र सनेह नयन के नीर न्हवाये॥
यों ब्रजमहँ हरि नित्य नई ई धूम मचावें।
साधारन शिशु सरिस हरिहिँ युवती फुसलावें॥
वेद विदित वन्दित जगत, भोरे शिशु सम बनि गये।
जाके वश महँ सब जगत, ते ब्रजवासिनि वश भये॥

भगवान् को कोई चाहे, कि हम अपनी विद्या बुद्धि से वश में कर लेंगे, तो उसका सोचना व्यर्थ है। वेद भी जिसका पार न पा सके, ब्रह्मादिक देव भी सहस्रों वर्ष की घोर तपस्या और समाधि द्वारा जिनके यथार्थ तत्व को नहीं समझ सके, उन्हें यह अल्प

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—' राजन्! वे भगवान् कभी तो गोपियों के फुसलाने से बच्चों की भाँति नाचने लगते, और कभी कठपुतली के समान उनके अधीन होकर उनकी प्रेरणा से भोरे बालक की भाँति उच्च स्वर से गाने लगते।'

मति अल्पायु और अल्प गुणों वाला मनुष्य नामक जन्तु अपनी स्वल्प बुद्धि और साधारण विद्या के द्वारा कैसे पा सकता है। भगवान् से अधिक चतुर कोई हो, तो वह अपनी चतुराई से उन्हें जीत सकता है, किन्तु वे तो चतुरों के भी चतुर हैं। वे चतुराई से नहीं जीते जा सकते। उन्हें तो भोरेपन से कोई वश में कर सकता है। भोरे के वश में होकर ये भी साधारण शिशु के समान भोरे बन जाते हैं। निष्कपट सरलता जिनमें देखते हैं, उनके अधीन हो जाते हैं। अधीन होकर ऐसी रसमयी लीलायें करते हैं। जिनके श्रवणमात्र से चराचर विश्व परम पावन बन जाता है। व्रजवासियों के सदृश भोरा कौन होगा, भगवान् उनके भोरेपन पर रीझ गये और उनके अधीन बन गये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अर्जुन वृक्षों के गिरने का गोपों के मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा वे परस्पर में आश्चर्य के सहित उन्हीं के गिरने के सम्बन्ध में बातें करने लगे, किन्तु यशोदाजी के मन पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा, उन्हें तो तभी तक दुःख था जब तक श्यामसुन्दर उनकी गोद में नहीं आये थे। श्याम के अंग का स्पर्श होते ही उन्हें छाती से चिपटाते ही मैया सब बातों को भूल गयी। श्याम की मोहनी मूरत में ऐसा जादू था, कि एक बार जो उनकी ओर देख लेता, वह देखता का देखता ही रह जाता, उसकी तृप्ति ही न होती थी। श्याम के रूप का जादू वैसे तो सभी के ऊपर था, किन्तु व्रजवासिनी गोपियों ने तो अपना सर्वस्व उनके ऊपर वार दिया था। उन्हें बिना श्याम को देखे चैन नहीं पड़ता था। कोई मठा के मिस से, कोई दीपक जोरने के हेतु से, कोई अन्य कुछ कारण से नन्द महल में आती ही रहतीं। झुण्ड को झुण्ड गोपियाँ श्याम-सुधा सागर में अवगाहन करके आत्म-विस्मृत बनी ठगी-सी इधर-उधर फिरती रहतीं। श्याम का व्रज में प्रकट होने का एक मात्र प्रयोजन व्रज सुन्दरियों को सुख देना ही

था। अतः वे एक घर से दूसरे घर में दूसरे घर से तीसरे घर में फिरते ही रहते। भोरे बालकों की-सी चेष्टा बना रखी थी। भीतर से तो बड़े टेढ़े थे, किन्तु ऊपर से बड़े भोरे दिखायी देते। गोपियाँ उनके ऊपर बलि-बलि जातीं, उन्हें देखते ही घर के सब काम काज भूल जातीं इन्हीं से उलझ जातीं।

न जाने इन्होंने कहाँ से नाचना सीख लिया था। पैरों में बजने घुँघुरू तो मैया ने ही बाँध दिये थे। आप उन्हें बजाते हुए ठुमुक-ठुमुककर चलते। मैया कहतीं—"कनुआ! नाच तो दिखा दे।" तब आप दोनों हाथों को उठाकर, कमर को लचाकर, मुँह को मटकाकर, सैन दिखाकर, भाव दिखाकर नाचने लगते। गोपिकाएँ इनके नृत्य को देखकर हँसते-हँसते लोट-पोट हो जातीं और बूढ़ी-बूढ़ी गोपिकायें कहतीं—"यशोदारानी! तैंने तो बड़ा नचकैया पूत जाया है। यह तो बड़े-बड़े नाचने वालों के भी कान काटता है।"

तब मैया कह देतीं—"बच्चा ही जो ठहरा, ऐसे ही दिन भर खिलवाड़ करता रहता है।" गोपियाँ सदा श्रीकृष्ण के नृत्य को देखने के लिये समुत्सुक बनी रहतीं। जब नंदजी आते और मैया कहतीं—"कनुआ! बाबा को नाच तो दिखा दे।" तब आप लज्जित हो जाते और मैया की गोदी में बैठकर उसके अंचल से मुख ढक लेते। तब मुख चूमकर मैया कहतीं—"अरे, तू तो बड़ा लजीला है रे, कहीं घर में लाज करते हैं। ऐसे लजावेगा, तो तेरी कोई सगाई भी न करेगा।"

श्यामसुन्दर लुगाइयों में तो हृदय खोलकर नाचते, किन्तु लोगों को देखते ही सकुचा जाते। घर-घर जा जाकर नाच दिखाते। गोपियाँ कहतीं—"लालाजी! तुम नाच दिखाओगे, तो हम तुम्हें टटका सद-हालका निकाला माखन देंगी।" बस, फिर क्या था माखन के तो ये प्रेमी ही ठहरे। नाचने लगते।

फिर दूसरी कहती—"लालाजी ! नाचना ही जानते हो, या गाना भी ?"

तब आप अभिमान पूर्वक कहते—"हाँ, गीत गाना भी जानता हूँ।"

गोपियाँ कहतीं—"अच्छा, सुनाओ कोई गीत। रसिया जानते हो ?"

आप कहते—"हाँ, रसिया भी जानता हूँ सुनो—"कटीले कजरावारी तनिक रस दै जैयो।" यह सुनकर गोपियाँ हँसते-हँसते लोट पोट हो जातीं। छोटे से गोल गोल भोरे मुख से कुछ तोतली वाणी में ये शब्द ऐसे लगते, मानों अमृत में पगे हों, इन वचनों को सुनकर गोपियाँ अपने आपे में न रहतीं। श्रीकृष्ण कैसा भी गीत गाते, उनके मुख से वह अत्यन्त ही सुखद प्रतीत होता। बड़े-बड़े गोपों ने उन्हें कुछ गीत कठस्थ करा दिये थे। उन्हीं को वे सबके सामने बिना समझे बूझे गा देते। उनका अर्थ क्या है इसे वे नहीं जानते थे। यह भी कैसे कहें—"वे नहीं जानते थे।" जानकर भी अनजान बने हुए थे। अर्थ के वे पीछे नहीं पड़ते। वे तो भावग्राही हैं। अर्थ तो शब्दों के अनेक हैं। एक ही शब्द के बहुत अर्थ हो जाते हैं, वे तो हृदय के पारखी हैं, यह भाव से कहा गया है, इतना ही प्रयोजन वे रखते हैं।"

गोपिकायें उन्हें बात-बात पर फुसला लेतीं। भोरे ही जो ठहरे। आ जाते गोपिकाओं के चक्कर में। कोई कहतीं—"लाला-जी ! तुम नाच दोगे, तब मक्खन दूँगी।" आप नाच देते। तब यह कहतीं—"लालाजी ! तुम्हारा नाच अच्छा नहीं हुआ।" तब आप फिर नाचते। तब भी वह माखन न देतीं, तो आप रो पड़ते उसके वस्त्रों को पकड़ लेते। ऊपर चढ़ जाते। गोपिकायें हँस जातीं। निहाल हो जातीं।

एक दिन आप कहीं अकेले जा रहे थे। एक भावमती गोपिका

गोबर डाल रही थी। उसके मन में तो सदा वे ही मनमोहन बसे रहते थे। उसने जब श्याम को सामने से ही जाते देखा तो पुकारा—"लालाजी! कहाँ जा रहे हो ?"

आप मुड पडे और बोले—"भाभी! तेरे ही घर तो जा रहा था।"

गोपी मानो निहाल हो गयी। उसने पूछा—"किसलिये जा रहे थे ?"

आप बोले—"कल तैंने कहा नहीं था, कि मैं टटका माखन निकालकर रखूँगी। तुम आना।"

गोपी बोली—"माखन लालाजी! सेंत मेंत ही मिलता है क्या ? कुछ परिश्रम करो तब मिलेगा।"

आप बोले—"भाभी तू, जो कहेगी वही मैं करूँगा।"

गोपी ने कहा—"अच्छा, गोबर के भरे छबरे को मुझे उठवाओ। जितने छबरे उठवाओगे उतनी ही माखन की गोली तुम्हें दूँगी।"

आप बोले—"अच्छी बात है, रूँगट मत करना।"

गोपी ने कहा—"रूँगट की क्या बात है, तुम जितने छबरे उठाते जाओगे, उतने चिह्न तुम्हारे गालों पर मैं लगाती जाऊँगी।"

आप कुछ पढ़े लिखे तो थे ही नहीं। स्वीकार किया। अब गोपी गोबर को छबरा में भरती आप अपने छोटे छोटे हाथों से सम्पूर्ण बल लगाकर उठाते। उस समय उनके छोटे-छोटे अरुण वर्ण के कपोल और भी अरुण हो जाते। गोपी जब गोबर को डाल आती, तो एक सींक से पतले गोबर की एक रेखा उनके कपोल पर अंकित कर देती। मानों उन पर पत्रावली अंकित कर रही है। अब वह अधिक गोबर न उठवा सकी। चित चोर ने उसका चित्त जो चुरा लिया था। कुछ काल के पश्चात् गोपी बोली—"अब लालाजी! बस करो।"

आप बोले—"अब माखन दे !"

सखी बोली—"कितनी गोली हुई ?" यह उँगली से कपोल की रेखाओं को गिनने लगी। उसने बताया दश हैं।"

आप बोले—"मैं कब से गोबर उठवा रहा हूँ, दश ही हुए।'

वह बोली—"चाहे जिससे गिनवा लो, दश ही हैं। बस फिर क्या था आप झगड़ा करने पर उतारू हो गये और भी इधर-उधर से गोपियाँ जुट आयीं। वे तो इस ताड़ में ही रहती थीं। आपने अपना अभियोग सब गोपियों के सामने सुनाया। एक गोपी ने कहा—"लाओ मैं गिनूँ।" बस गिनने का ही खेल हो गया। श्रीकृष्ण बड़ी उमङ्ग से मुख कर देते। गोपी निहाल हो जातीं और उनके सुन्दर सुचिक्कण भरे हुए गोल-गोल कपोलों में उँगली गड़ाकर गिनतीं। इस प्रकार बड़ी देर तक यही खेल होता रहा। अन्त में श्रीकृष्ण ने जितना बताया उतना ही सबने माना और गोपियों ने मनमाना माखन देकर उन्हें प्रसन्न कर दिया।

श्रीकृष्ण को ये गोपियाँ कठपुतली की भाँति नचाती थीं, भगवान् तो सदा से भक्तों के वश में होते ही आये हैं। गोपियाँ जैसे भी उन्हें नचातीं वैसे ही नाचते। ब्रज में सभी बातें अटपटी हैं कहाँ तो ईश्वर जीव को नचाता है, किन्तु ब्रजवासी ईश्वर को ही नचकैया बनाकर नचाते हैं। वहाँ वह सर्वेश्वर ऐसा भोरा बन जाता है, कि मोर का मुकुट लगाकर, घूँघट बाँधकर जामा पहिन कर जहाँ चाहता है, वहीं नाचने खड़ा हो जाता है। ब्रज में उसे न लज्जा है न संकोच। अपने नृत्य गायन से ब्रजवासियों को प्रसन्न करने में अपना अहोभाग्य समझता है। उसकी समस्त चेष्टायें ब्रजवासियों को रिझाने के ही निमित्त होती हैं।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार भगवान् ब्रज में बालक बनकर प्राकृत शिशुओं के सदृश एक से एक अद्भुत

एक से एक चित्ताकर्षक मनोहर लीलाएँ करने लगे। वे लीलाएँ अनन्त हैं, निरन्तर गाते रहने पर भी शेष शारदा उनका पार नहीं पा सकते। फिर हम जैसे अल्पमति तो उनका पार पा ही क्या सकते हैं।"

छप्पय

कबहूँ नाचें नाच गान कबहूँ वर गावें।
माँगे माखन कबहुँ कबहुँ हठि रार मचावें॥
कबहूँ माँगे भीख भिखारी वेष बनाई।
कबहूँ घर घर जाइ दिखावें स्वाँग कन्हाई॥
कबहू आँगन लीपके, चौक पूरि ज्योनार करि।
ब्याह करें दुलहा बने, मोरपख शिर मौर धरि॥

भृत्यवश्य भगवान्

[८८७]

बिभर्ति क्वचिदाज्ञप्तः पीठकोन्मानपादुकम् ।
बाहुक्षेपं च कुरुते स्वानां च प्रीतिमावहन् ॥
दर्शयंस्तद्विदांलोक आत्मनो भृत्यवश्यताम् ।
व्रजस्योवाह वै हर्षं भगवान् बालचेष्टितैः ॥*

(श्री भा० १० स्क० ११ अ० ८, ९ श्लो०)

छप्पय

काम बतावें मातु पिता ततछिन करि लावें ।
माँगे माता वस्तु दौरिकें ताहि उठावें ॥
बाट तराजू लाइ घरें आगे मैया के ।
कपड़ा लावें दौरि बड़े हलधर भैया के ॥
धोवें पग नँदराय जब, लाइ खड़ाऊँ प्रभु धरें ।
भक्तवश्य श्रीजगत्पति, सेवक सम कारज करें ॥

बालक जब चलने लगते हैं, तो उन्हें चलने में बड़ा आनन्द

---

* शुकदेवजी कहते हैं—"राजन ! भगवान श्रीकृष्ण लोक में ज्ञानी पुरुषों को अपनी भक्तवश्यता दिखाते हुए व्रजवासियों को आनन्दित करते हुए विविध भाँति की बाल चेष्टाएँ करने लगे। कभी स्वजनों के आज्ञा देने पर पीढ़ा बटखरा तराजू तथा पादुकाओं को उठा लाते। कभी ताल ठोक्कर मल्लयुद्ध करते, इस प्रकार अपने बन्धु बान्धवों को सुखी करने लगे।"

आता है। जब वे बोलने लगते हैं, तो इधर-उधर की बातें करने में उन्हें सुख होता है। जब उनकी वस्तु की जानकारी की जिज्ञासा बढ़ जाती है, तो सम्मुख जो भी वस्तु आती है, उसी के विषय में जानने को लालायित रहते हैं, और जब उन्हें काम करने की योग्यता हो जाती है तो इधर उधर के काम करने में चटपटी दिखाते हैं, चलते हैं, तो दौड़कर चलते हैं। खेलने लगते हैं तो उसी में तन्मय हो जाते हैं। बाल्यावस्था बड़ी ही सुख की अवस्था है। यदि बालक संस्कारी हुआ, वह माता पिता के प्रति बाल्यकाल से ही भक्ति प्रदर्शित करने वाला हुआ, उनकी आज्ञानुसार बर्ताव करने वाला हुआ, तब तो माता पिता उस पर प्राण दे देते हैं। उनका ऐसे बालक के प्रति अत्यधिक अनुराग हो जाता है। यह तो उन संस्कारी योगभ्रष्ट बालकों के सम्बन्ध की है, जो किसी साधन में तनिक सी भूल होने पर पवित्र श्रीमानों के यहाँ अथवा योगियों के कुल में उत्पन्न होते हैं, उनके गुणों के कारण माता पिता उन्हें आँखों की पुतलियों के सदृश रखते हैं। यदि समस्त सद्गुणों की खानि सर्वेश्वर जगत्पति ही जिनके पुत्र बन जायँ और उनकी छोटी मोटी सेवा करें, तो उन्हें कितना आनन्द होता होगा, इसकी कल्पना मर्त्यलोक का मर्त्यधर्मा प्राणी कैसे कर सकता है। ऐसे माता पिता की जितनी भी प्रशंसा की जाय उतनी ही थोड़ी है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! श्रीकृष्ण अब ऐसी ऐसी सरल लीलाएँ करने लगे, जिन्हें देखकर सभी को परम सुख होता था। वे बुढ़िया को मार्ग में देखते तो पकड़कर घर पहुँचा देते, किसी का गोबर उठवा देते, किसी की गया दूध न देती लात मारती तो उसके बछड़े को पकड़े रहते। अपनी छोटी छोटी बाहुओं से घास उठा लाते बछड़ों को खिलाते। अब वे बड़ी बड़ी वस्तुओं को इधर उधर उठाकर रखने लगे थे।"

माता कहती—"कनुआ ! वहाँ से तराजू तो उठा ला। तुरन्त वहाँ दौड़कर जाते और तराजू को उठा लाते।"

मैया कहती—"उस पँसेरी को तो ले आ।"

आप पँसेरी को उठाते तो पूरा बल लगाते, गोपिकाएँ हँसने लगतीं—"लालाजी ! तुम्हारी मैया ने तुम्हे भर पेट दूध नहीं पिलाया, तभी तो तुमसे पसेरी नहीं उठती।"

तब तो आप पेट के बल उसे उठाकर माता के पास लाते और कहते—"देख, मैया ! मैं अपने आप पँसेरी को उठा लाया हूँ।"

मैया कहती—"तू राजा बेटा है।"

तब रोहिणीजी कहतीं—"अच्छा कनुआ, उस चौकी को तो उठा ला।"

तब आप जाते उसे जैसे तैसे अपने सिर पर रखते और डगमगाते पैरों से चौका तक लाते। मैया दौड़कर चौकी को ले लेतीं और कहतीं—"अब तो कनुआ सब काम करने लगा, देखो वहाँ से अपने आप चौकी को उठा लाया।"

नन्दबाबा जब बाहर से घर में रसोई जीमने आते, तो मैया यशोदा स्वयं उनके पैरों को धुलातीं। पैर धोकर वे खड़ाऊँ पहिनते और खड़ाऊँ पहिनकर चौका में जाते। कभी-कभी मैया कहतीं—"कनुआ ! देख, सामने खड़ाऊँ रखे हैं उन्हें उठा तो ला।" तब आप दौड़कर जाते और बाबा के खड़ाऊओं को सिर पर रख कर ले आते। तब बाबा कहते—"कनुआ तो अब बड़ा चतुर हो गया।" यह सुनकर आप अत्यन्त ही प्रसन्न हो जाते। अब जब भी बाबा को पैर धोते देखते, बिना कहे ही खड़ाऊओं को उनके सम्मुख रख देते।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जिनके चरणों की वन्दना बड़े-बड़े लोकपाल करते हैं। जिनकी चरण पादुकाओं के स्पर्श के लिये ब्रह्मादिक तरसते रहते हैं, वे ही भगवान् नन्दजी की चरणपादु-

काओं को सिर पर रखकर लाते हैं, यह उनकी भक्तवत्सलता है। सब लीलाओं से वे यह दिखाते हैं, कि मैं भक्तों के सर्वथा अधीन हूँ जो मेरे अनुगत हैं, उनके लिये मैं सब कुछ कर सकता हूँ। उनकी सेवा करने में मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ, भगवान् तो अपने भक्तों का–निजजनों का–सबसे अधिक आदर करते हैं। वे तो उनके क्रीतदास के सदृश बन जाते हैं और इस लोभ से उनके पीछे घूमते हैं, कि इनके चरणों की धूलि मेरे अङ्ग पर पड जाय, तो मैं कृतार्थ हो जाऊँ। ऐसे भगवान् नन्दजी की पादुकाओं को शिर पर रखते हैं, तो इसमें आश्चर्य करने की ही कौन सी बात है। वे इन ललित लीलाओं से ज्ञानी पुरुषों को अपनी भक्तवत्सलता दिखा रहे हैं। वे इन सरस लीलाओं द्वारा अपने सगे सम्बन्धी तथा अन्यान्य गोपों को अत्यधिक आनन्दित कर रहे हैं।"

कभी कोई गोपी कहती—"श्यामसुन्दर देखें तो सही तुमने अपनी माँ का कितना दूध पिया है। तुम कुश्ती तो दिखाओ।"

यह सुनते ही भगवान् कछनी काछकर अखाडे में खडे हो जाते और मल्लों की भाँति ताल ठोकने लगे। अपने बराबर वालों से कुश्ती करने लगते। वे अपने बराबर के गोपकुमारों को द्वन्द्व युद्ध में ऐसा पछाड़ते, ऐसा दाँव लगाते कि देखने वालों के मुख से स्वतः ही साधु साधु निकल पडता।

एक दिन एक बुढिया आयी वह बडी बातूनी थी। जो बुढियाएँ बातून होती हैं, वे जिसके घर में पहुँच जाती हैं, उसे काम धन्धा नहीं करने देतीं। ससार भर की बातें हाथ मटका-मटकाकर कहती हैं। इसने ऐसा किया उसने वैसा किया, यह ऐसा है, वह वैसा है। श्रीकृष्ण को ऐसी परचर्चा की कोई बातें अच्छी नहीं लगतीं। उन्हीं के सम्बन्ध की कोई बातें करे तो उन्हें सुहाती हैं। दूसरों की इधर-उधर की बातों से वे चिढ जाते

हैं। वे बुढ़िया के स्वभाव को जानते थे। जिस दिन वह घर में आ जाय, नन्दरानी का सब काम रुक जाय।

एक दिन वह आयी। यशोदा मैया ने कहा—"कनुआ! देख दादी आयी हैं। इनके लिये पीढ़ा तो ले आ।"

श्रीकृष्ण रस्सी के बुने पुराने पीढ़ा को उठा लाये। जिसमें इधर-उधर टूटी रस्सियाँ लटक रही थीं।"

मैया ने कहा—"अरे, लल्लू! कैसा पुराना पीढ़ा ले आया।"

आप बोले—"मैया! दादी को इसी में सुख मिलेगा। दादी इसमें बैठ जायगी, तो बात करते-करते इधर-उधर गिरेगी नहीं।"

बुढिया ने कहा—"नये पुराने की क्या बात है मुझे तनिक देर तो बैठना ही है।"

श्रीकृष्ण तो जानते थे, इसकी तनिक देर कितनी लम्बी होती है, अतः आपने पीढ़ा डाल दिया। बुढ़िया बातें करने लगी। श्रीकृष्ण चुपके से उसके पीछे बैठ गये। बुढ़िया को कुछ कम भी दीखता था, अतः श्रीकृष्ण ने पीढ़ा मे लटकती हुई जेवरियों से बुढ़िया के वस्त्रों को बाँध दिया। उसी समय घर में एक गौ व्याय पड़ी। मैया उसे देखने गयी।

श्रीकृष्ण ने कहा—"दादी! तू भी देख, जो बछड़ा कैसा सुन्दर है।"

यह सुनकर बुढिया उठी। उसके पीछे पीढ़ा भी लटकता हुआ आ रहा था। गोपियाँ यह देखकर ठठाका मारकर हँसने लगीं। श्रीकृष्ण गम्भीर होकर बोले—"इसमें हँसने की कौन-सी बात है। दादी को यह पीढा अच्छा लगा, बाँधकर साथ ले चलीं, सब दादी के ही जीवन का तो जमूडा है, नहीं तो सब घास कूड़ा ही कूड़ा है।"

इस पर लोग और हँसने लगे। बुढ़िया गालियाँ देने लगी।

उस दिन से उसने कान पकड़ा, कि अब नन्दभवन में आऊँगी तो श्रीकृष्ण को देखकर ही चली जाऊँगी, इधर-उधर की व्यर्थ बातें न बनाऊँगी।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार सर्वसमर्थ प्रभु आज गँवार गोप बालों को अधीन होकर प्राकृत शिशु के सदृश ही समस्त क्रियाएँ करते हैं। वे स्वयं हँसते हैं, वे स्वयं खाते हैं, साथियों को खिलाते हैं। जो जिस इच्छा से इनके समीप आते हैं। उनकी उस इच्छा की पूर्ति ये भक्तवत्सल भगवान् करते ही हैं। यह ध्रुव सत्य है, इसमें अणुमात्र सन्देह करने का अवसर नहीं।"

छप्पय

जगमहँ भटके जीव प्रेम बिनु शान्ति न आवे।
क्षणभंगुर जगभोग भोगिके सुख नहिँ पावे॥
प्रेमधाम हैं श्याम हिये महँ यदि बसि जावें।
होवे जीव कृतार्थ दुःख सन्ताप नसावें॥
प्रेम पन्थ अति अटपटो, बिन बोले दिन दिन बढ़े।
चाहे वह यह फेरि मुख, जाय रङ्ग गहरो चढ़े॥

इसके आगे की कथा अगले खंड में पढ़िये।

श्री भागवत-चरित सटीक

टीकाकार

'भागवत चरित व्यास' प० रामानुज पाण्डेय,
बी० ए० विशारद

'भागवत चरित' विशेषकर व्रजभाषा की छप्पय छन्दों मे लिखा गया है। जो लोग व्रजभाषा को कम समझते हैं, उन लोगों को छप्पय समझने मे कठिनाई होती है। उनके लिये लोगों की माँग हुई कि छप्पयो की सरल हिन्दी मे भाषा-टीका की जाय। सवत् २०२२ विक्रमी मे इसका पूर्वार्द्ध प्रकाशित हुआ। उसकी दो हजार प्रतियाँ छपायीं। छपते ही वे सब-की-सब निकल गईं। अब उत्तरार्द्ध की माँग होने लगी। जो लोग पूर्वार्द्ध ले गये थे, वे चाहते थे पूरी पुस्तक मिले किन्तु अनेक कठिनाइयों के कारण छपने में विलम्ब हुआ साथ ही लोगो की यह भी माँग थी, कि कुछ मोटे अक्षरों में छापा जाय। प्रभु कृपा से अब के रामायण की भाँति बड़े आकार मे मोटे अक्षरों मे (२० पा०) अर्थ सहित प्रकाशित की गई हैं। प्रत्येक खंड मे ८५० से अधिक पृष्ठ हैं मजबूत एवं सुन्दर कपडे की जिल्द, चार-चार तिरगे चित्र और लगभग ३५० एकरंगे चित्र हैं। मूल्य लागत मात्र से भी कम ४२) रु० रखी गयी है। एक खंड का मूल्य २१) रु०। डाक खर्च अलग। आज ही पत्र लिखकर अपनी प्रति मँगा लें।

—व्यवस्थापक